स्वाधीन या भाग्याधीन?

# स्वाधीन
# या भाग्याधीन ?

लेखकः
मेजर रामचंद्र सालवी,
आई. ए. एस.

अनुवादकः
रामचंद्र रघुनाथ सर्वटे

औरंगाबाद

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

अण्णा—
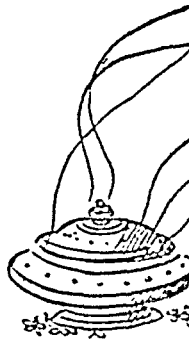
आपके सान्निध्य में आपके स्वप्न भी मेरे लिए आशीर्वाद लेकर आते थे। आप चले गए पर आपके आशीर्वादों के छत्र सदैव मेरे मस्तक पर रहे और आज—

आज उसी आशीर्वाद की छाया में आपके उन स्वप्नों को जो आपने मेरे विषय में देखे थे, मैं पूरे कर रहा हूँ। यह सब देखने को आप यद्यपि आज मेरे पास नहीं हैं फिर भी मुझे लगता है कि आपका स्नेहसिक्त हाथ मेरी पीठ सहला रहा है। वह हाथ मुझे अर्जुन का बल देता है और आपके आशीर्वाद आपके शुभस्वप्न के समान श्रीलक्ष्मीकेशव के ही लगते हैं।

इसीलिए मुझे लगता है कि आपके आलोक-चित्र के नीचे लिखा श्रीमद्भगवद्गीता का श्लोक मेरे अपने जीवन की टेक है।
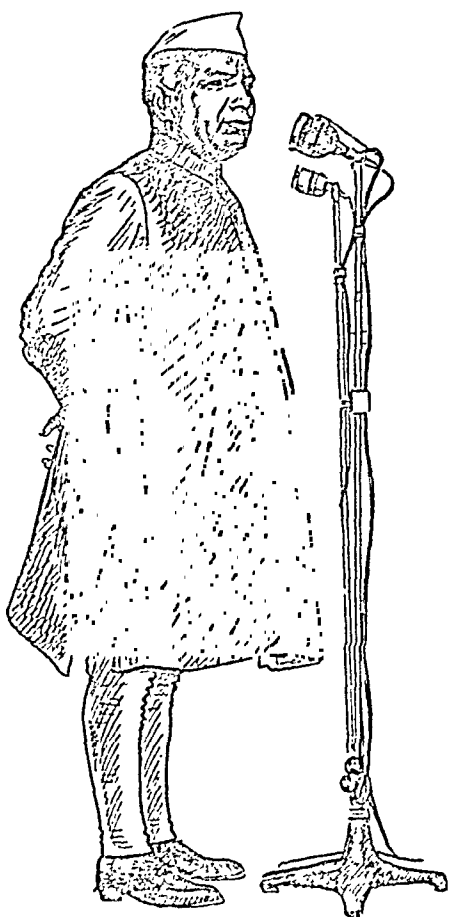
रक्षा मंत्री
नई दिल्ली
दिनांक ६ अप्रेल १९६५

श्री रामचंद्र सालवी की मूल पुस्तक 'स्वाधीन या भाग्याधीन' मराठी में है। अब उसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। इस अनुवाद में न्यूनाधिक रूप से मूल पुस्तक के सभी गुण विद्यमान हैं।

इस पुस्तक में श्री. सालवी ने द्वितीय महायुद्ध के अपने सैनिक-जीवन के अनुभवों और आपबीती घटनाओं को लेखबद्ध किया है। उन्होंने युद्धक्षेत्र का वर्णन बहुत ही रोचक तरीके से प्रस्तुत किया है। अन्य वर्णन भी बहुत सजीव हैं। इसलिए पुस्तक पढ़ते समय कई बार हमें ऐसा प्रतीत होता है कि श्री सालवीजी

की जीवन-कहानी का हम चित्रपट ही देख रहे हों साथ ही उपन्यास का-स कौतूहल और आनंद भी मिलता है।

खुशहाल मध्यवर्ग से आए हुए श्री सालवीजी ने जान बूझकर खतरनाक जीवन स्वीकार किया। युद्धक्षेत्र में सच्चे सिपाही की हैसियत से उनका कार्य बहुत ही प्रशंसनीय रहा है। *अपने अधिकारियों के आदेशों का पालन करना उनका कर्तव्य* रहा; और इसीलिए न वे आँधी-तूफ़ान से डरे न कभी मृत्यु का भय उन्हें पीछे लौटा सका। अपने सैनिक-जीवन में अनेक बार श्री सालवीजी प्राण-संकट में पड़ गए थे, परंतु उन्होंने जिस साहस, सूझ-बूझ तथा दृढ़ निश्चय से काम लेकर अपनी प्राण रक्षा की, वह आनेवाली पीढ़ियों को घोर संकट के समय साहस और आत्म-विश्वास न खोने की प्रेरणा देता रहेगा। मेरा विश्वास है कि श्री सालवी के जीवन की यह कहानी जब देश के कोने-कोने में पढ़ी जाएगी, तब, जाने अनजाने, क्षात्र-धर्म का बीज बोया जाएगा।

उनके इटली के अनुभवों ने उस जीवन के हृदयद्रावक चित्र खींचे हैं जो दूसरे महायुद्ध के दौरान वहाँ के लाखों परिवारों को जीना पड़ा था। 'विला सान सवास्तिआनो' नामक गाँव में श्री रोमानो तथा श्रीमती अदलीना ने अपना जीवन जोखिम में डालकर जिस सहृदयता से श्री सालवी की समय-समय पर सहायता की उससे सिद्ध होता है कि मनुष्य की पारस्परिक सहानुभूति का प्रादुर्भाव उस ऊँचे धरातल पर होता है, जहाँ जाति, धर्म भाषा तथा देश-काल की सीमाएँ टूट जाती हैं।

मुझे विश्वास है कि पाठक-वर्ग इस पुस्तक में वर्णित साहसिक जीवन-घटनाओं से प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन प्राप्त करेगा। आशा है, इस पुस्तक का समुचित आदर होगा।

मेरी शुभकामनाएँ।

## पाठकों से

अपनी "स्वाधीन या भाग्याधीन," यह पुस्तक आज मैं आपकी सेवा में उपस्थित कर रहा हूँ। पिछले महायुद्ध में मैंने जो देखा, अनुभव किया और जिन संकटों से मैं गुज़रा उनकी स्मृतियाँ पिछले कई वर्षों से लगातार मेरे साथ रही हैं। आज भी वे सब घटनाएँ इतनी ताज़ा लगती हैं, जैसे कल-परसों ही घटित हुई हों। वे सब घटनाएँ मैंने इस पुस्तक में आपके लिए एकत्र कर दी हैं। परंतु इसके पहले कि आप पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ करें; मैं निवेदन करना चाहता हूँ उन यादों की जिन्होंने इस पुस्तक का रूप प्राप्त कर ही तो लिया।

बाईस साल पहले रणभूमि से लौटने पर घर के लोगों के बाद सब से पहले मैंने ये घटनाएँ यदि किसी को सुनाई तो प्राचार्य भूपणजी को। उन्होंने बड़ी उत्सुकता से सुनीं और मेरा कथन समाप्त होने पर वे बड़े जोश से बोले, 'सालवी इन स्मृतियों की एक पुस्तक लिखनी चाहिए।' उनके इन उद्‌गारों से मेरे मन में इस विचार को गति मिली। परंतु समय के अभाव में यह कार्य तुरंत शुरू न हो सका। इसके बाद सन १९५१ में जब मैं सौराष्ट्र के अमरेली ज़िले का कलेक्टर था, उस समय अमरेली के तत्कालीन समाज-सेवक और मेरे एक घनिष्ट मित्र डॉक्टर हरिप्रसाद भट जो आज इस संसार में नहीं हैं, के आग्रह से मैंने अपने ये अनुभव उन्हींके द्वारा आयोजित सार्वजनिक भाषणों के रूप में हिंदी में

सुनाए। उस समय मेरे सामने बैठे हुए और बड़ी तन्मयता और अधीरता से सुननेवाले विद्यार्थियों के चेहरे मुझे आज भी याद आते हैं। इसके बाद जब मैं नासिक में कलेक्टर था-उस समय लोकहितवादी मंडल के लिए मैंने यही अनुभव मराठी में पाँच भाषणों के रूप में सुनाए। उन श्रोताओं में भी विद्यार्थियों की संख्या ही अधिक थी। रोज़ शाम साढ़े छः बजे से करीब साढ़े दस बजे तक याने चार-चार घंटे चित्र लिखे-से रहकर उत्कंठा से वे मेरा एक-एक शब्द सुना करते। सन १९५२ के अगस्त में दिए गए इन भाषणों का विद्यार्थियों ने जो स्वागत किया उसने मुझे प्रेरणा दी कि इन संस्मरणों को विद्यार्थियों के लिए ही लिखा जाए। आज ठीक दस वर्षों के बाद याने १९६२ के मार्च में मैंने उन्हें लिखना शुरू किया।

उन सबका आपसे परिचय करा दूँ जिनके आग्रह के कारण लिखने का यह काम प्रत्यक्ष रूप से शुरू हुआ और जिनकी प्रेरणा से मेरे संस्मरणों को धीरे-धीरे पुस्तक का रूप प्राप्त हुआ। सबसे पहले मेरी प्रिय पत्नी श्रीमती हंसाजी। लड़ाई पर जाने से पहले कॉलेज-जीवन में जिसके स्नेहपूर्ण सहवास में मेरी महत्त्वाकांक्षा के सपने पले और फूले और लड़ाई से लौटने पर विवाह-बंधन के कारण मैं जिसका जीवन-साथी बना उसीकी प्रेरणा और आग्रह ने स्मृतियों को आज यह रूप दिया है। जब यह पुस्तक लिखी जा रही थी, उस समय उसने सामने बैठकर एक-एक वाक्य और एक-एक अक्षर ध्यान से देखा है, परखा है और इस पुस्तक को वर्तमान रूप देने में मुझे अनमोल सहायता दी है।

श्रीमती हंसा की तरह मेरे चार हँस-मुख बच्चे शुभलक्ष्मी, रणजित, मोहिनी और गौरी—इनकी कुतूहलपूर्ण उत्सुक आँखें इन स्मृतियों के आसपास लट्टू की तरह लगातार घूम रही थीं। रणभूमि के मेरे इन संस्मरणों को यदि कहीं सुगंध का स्पर्श हुआ हो तो वह परिमल मेरे इन्हीं चार पुष्पों से ही महक रहा है जिनसे मैं घिरा हुआ हूँ।

इन स्मृतियों के पहले चार अध्यायों को लिखते समय मुझे लग रहा था कि मैं जैसे अपनी विद्यार्थी-दशा में और अपने पिताजी के कृपा-छत्र में पहुँच गया हूँ। उस समय की सारी भावनाएँ फिर से जीवित हो उठी थीं। उन तमाम प्रसंगों को लिखते समय मुझे लग रहा था कि जैसे पिताजी के इस कथन से कि बिना बी० ए० पास हुए सेना में मत जाओ, मैं निराश हो गया हूँ; मित्र खेल के मैदान पर खेल का यथेच्छ आनंद लूट रहे हैं और मुझे

प्राध्यापक भूषणजी के सामने बैठकर तीन-तीन घंटे अंग्रेज़ी पढ़नी पड़ रही है। और मन बेचैन हो रहा है। पर उसी समय पिताजी की उस सलाह का और प्राध्यापक भूषणजी और प्राध्यापक पाठकजी के उस मार्गदर्शन का सच्चा मूल्य भी महसूस हुआ। पिताजी की सलाह यदि मैं न मानता और प्राचार्य भूषणजी तथा प्रा० पाठकजी के मार्गदर्शन से लाभ न उठाता तो आज महाराष्ट्र की सेवा करने के लिए जो अधिकार-पद मुझे मिला है वह कदाचित कभी न मिल पाता।

उसके बाद के रणभूमि के संस्मरण लिखते समय तो तोपों, बंदूकों और टॉमीगनों के धमाकों तथा टैंकों की आवाज़ें मेरे कानों में लगातार गूँज रही थीं; और नज़दीक बैठा हुआ रणजित आश्चर्य से पूछ रहा था—"पपा, जब आपके नज़दीक बैठा ड्राइवर गोली खाकर गिर पड़ा और आपके सामने से गोलियाँ लगातार चली आ रही थीं तब भी आपको डर नहीं लगा? आप घबड़ाए नहीं, पापा?" "नहीं बेटा! उस समय रणभूमि में डर के लिए मन में बिलकुल जगह ही नहीं थी। मन में, आँखों में और आँखों के सामने एक ही लक्ष्य था : कर्नल का हुक्म—कि दुश्मन को पीछे खदेड़ देना है। न मुझे छूकर जानेवाली गोलियों की आवाज़ें सुनाई पड़ती थीं और न नज़दीक मरे हुए या मरनेवाले जवान दिखाई देते थे। दिखाई पड़ रही थी सामने दुश्मन की सेना। महाभारत की अर्जुन की वह कथा तुम्हें मालूम है न? उसे पेड़ नहीं दिखता था, पेड़ के पत्ते नहीं दिखते थे। उसे दिखती थी सिर्फ एक ही चीज़ कि जिसका निशाना उसने साधा था और वह थी पक्षी की एक आँख। उसी तरह—"

युद्ध के घमासान वर्णन पीछे छोड़कर मैं आगे लिखता गया और धीरे-धीरे विला सान सबास्तिआनो के चर्च के घंटे की आवाज़ें मेरे कानों में गूँजने लगीं। उन आवाज़ों में, मैं अपने अज्ञातवास के अध्याय लिख रहा था, तभी एकदम मेरे कानों से शुभलक्ष्मी और मोहिनी के प्रश्न आकर टकराए—"पर पपा, अदलीना ने तुम्हारी इतनी सारी मदद क्यों की? तुम्हारी मदद करने के लिए जर्मन उसे जान से मार सकते थे फिर भी उसने तुम्हें अपने घर में सहारा क्यों दिया?' मैंने उनके प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया। सिर्फ इतना ही कहा—"तुम जब बड़ी हो जाओगी और तुमपर यदि किसी की मदद करने का ऐसा ही प्रसंग आएगा तो तुम्हारे मन में भी मानवता की भावना जाग उठेगी और तुम भी अदलीना जैसा ही वर्ताव करोगी। और तब तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें मिल जाएगा।"

ऐसे वातावरण में जब मैं इन स्मृतियों को लिख रहा था, उस समय दो दक्ष प्रहरी मुझपर पहरा दे रहे थे। एक मेरी पत्नी श्रीमती हंसाजी और दूसरे, विद्यार्थियों के मन को जाननेवाले और उनसे एकरस हो जानेवाले हमारे हितचिंतक श्री पुरोहितजी। श्रीमती हंसाजी जगह-जगह सुझाव देतीं, भूली हुई घटनाओं का स्मरण दिला देतीं और शिक्षा-क्षेत्र का दीर्घ अनुभव रखनेवाले श्री पुरोहितजी इन संस्मरणों को विद्यार्थियों के सामने किस ढंग से उपस्थित करना चाहिए इस बारे में मार्गदर्शन करते।

और अंत में मुझे अपने एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण साथी का निर्देश करना है जो रणभूमि पर, कैद और अज्ञातवास में सदैव मेरे साथ रहा। जब सुरंग के विस्फोट से उड़ा हुआ पैना टुकड़ा मेरे टोप की धज्जियाँ उड़ाने के बावजूद सिर्फ मेरे सिर को छूकर ही निकल गया था उस समय वह साथी मेरे साथ था। जिस समय उस इटालियन की गोली मेरे हाफ-पैंट के आरपार दो छेद करके, मगर मेरे बदन को ज़रा भी स्पर्श न कर ज़मीन में घुस गई थी, उस समय भी वह साथी मेरे साथ था। मुझे ही लक्ष्य कर चलाई गई शत्रु की गोली जब मुझे न लगकर, मेरे नज़दीक बैठे ड्राइवर को लगी उस समय भी वह साथी मेरे साथ था। मैं जिस चट्टान की पोल में छिपा बैठा था उसी चट्टान पर आकर खड़े होनेवाले उस जर्मन हथियारबंद सैनिक का ध्यान मेरी ओर नहीं गया उस समय और ऐसे कितने ही प्रसंगों में उस साथी ने मेरा साथ दिया। पूज्य पिताजी को दिखे स्वप्न के अनुसार वह साथी मेरे कुलदेवता लक्ष्मीकेशव का मेरे आसपास निरंतर घूमने-वाला सुदर्शनचक्र था। अब कोई इसे चाहे संयोग कहे या सौभाग्य कहकर पुकारे! पर एक बात सच है कि जर्मन कैद से चल निकलने के लिए और उसके पश्चात अपने साथ ही अपने चार साथियों की सुरक्षा के लिए रात-दिन अविरत प्रयत्न करते समय मुझे उस अपौरुषेय साथी की पग-पग पर सहायता मिलती गई। इसीलिए तो हमारे श्रद्धेय पूर्वजों ने कहा है कि यशःप्राप्ति के लिए पौरुष के साथ ही भाग्य का साथ भी आवश्यक है। और इसीलिए मैंने भी अपने इन संस्मरणों को "स्वाधीन या भाग्याधीन?" यह प्रश्नार्थक शीर्षक दिया है। इस प्रश्न का उत्तर अब आपको ही खोजना है।

और अंत में, जब आप इस पुस्तक का पहला सफा खोलें तो उससे पहले छुटकी गौरी का एक प्रश्न पुनः मेरे मन में आ रहा है। अदलीना द्वारा दिए गए तौलिए पर अपना नन्हा हाथ फेरते हुए उसने कहा था—"पपा, मैं अदलीना को

देखना चाहती हूँ। हम उसके घर कब चलेंगे?" जिस स्वाभाविकता से उसने प्रश्न पूछा, उससे मुझे ज़रा हँसी आ गई। पर सच पूछा जाए तो मेरे भी मन में वही प्रश्न था और आज भी है। जिसकी प्रेरणा और आग्रह के कारण इन स्मृतियों ने पुस्तक का रूप धारण किया, उन्हींकी प्रेरणा और आग्रह के कारण और मेरे 'उस' साथी की सहायता से शायद पुनर्मिलन भी हो सकेगा। तब तक अदलीना, सीरिओ, रोमानो इन सबकी माता को—इटली की भूमि को मेरे यहाँ से कोटि-कोटि प्रणाम।

* * *

इस पुस्तक के संकल्प से लेकर परिपूर्ति तक की यात्रा में जिन व्यक्तियों का बहुमूल्य आधार मैंने पाया है, उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन मैं अपने प्रारंभिक निवेदन में कर ही चुका हूँ; फिर भी कुछ व्यक्तियों का उल्लेख यहाँ अलग से करना मुझे आवश्यक जान पड़ता है।

जिन्होंने मूल मराठी पुस्तक के प्रारंभिक अध्याय बड़ी आस्था से पढ़वाकर सुने और शेष कथा मुझसे बड़े स्नेह से जान ली, उन तब के महाराष्ट्र के प्रिय मुख्यमंत्री और आज समस्त भारत की आशाओं के केन्द्र बने गृह-मंत्री, माननीय यशवंत-रावजी चव्हाण ने इस पुस्तक का जो पुरस्करण किया है, उसे मैं इसका विजय-तिलक मानता हूँ। उनके औपचारिक आभार मानना अनुपयुक्त होगा, यह जानते हुए भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना मुझे अपना कर्तव्य जान पड़ता है।

मराठी पाठकों का स्नेह पानेवाले ये संस्मरण आज हिन्दी में जा रहे हैं तो उसका समस्त श्रेय मेरे पितृतुल्य स्वर्गीय मामासाहेब वरेरकर को है जो स्नेह-शील पिता की भाँति मेरी साहित्यिक गति को निरखते रहे हैं। यदि वे अधिकारी वाणी से आग्रह न करते कि पुस्तक हिन्दी के रसिक पाठकों के समक्ष जानी ही चाहिए तो इसमें सन्देह नहीं कि मेरी व्यस्तता में हिन्दी अनुवाद का कार्य नौ दिन में अढ़ाई कोस भी मुश्किल से चल पाता! आज स्वर्गीय मामासाहेब के आशीर्वाद का बल प्राप्त कर हिन्दी के पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हूँ।

मैं आभारी हूँ श्री सर्वटे के प्रति जिन्होंने मराठी पुस्तक का अनुवाद उसके आशय एवम् भाषा तथा हिन्दी की प्रकृति आदि व्यवधानों के बीच रहते हुए भी बड़ी सहजता से किया है। प्रा. वसन्त देव ने यह अनुवाद स्वयम् देखकर आवश्यक हेर-फेरसहित प्रस्तुत किया है जिससे वह और भी सुखद बन पड़ा है, इसलिए उनके प्रति भी आभारी हूँ।

मौज प्रिंटिंग ब्यूरो के श्री. वि. पु. भागवत ने इस पुस्तक का मुद्रण जिस कलात्मकता से किया है, उसके उपलक्ष्य में उनका जितना आभार मानूँ, उतना कम ही रहेगा।

अन्त में मराठवाडा सांस्कृतिक मंडल ने पुस्तक का प्रकाशन करना स्वीकार किया; अतः उनके आभार मानना मेरा कर्तव्य है।

—रामचंद्र सालवी
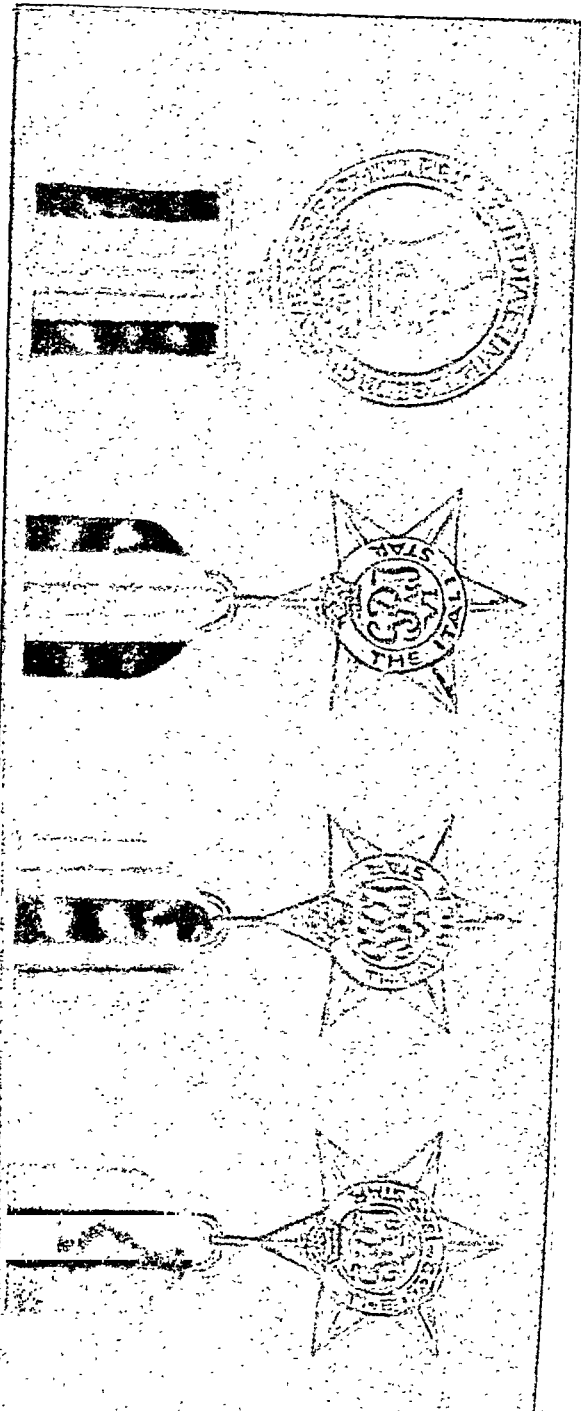
मेरे आभूषण

व्हिला सान सवास्तिआनो

"अद्लीना, सीरिओ, रोमानो इन सब की माता—
इटली की भूमि को यहाँसे मेरे अनंत प्रणाम"

# १

# रणभूमि या परीक्षा ?

*दिसंबर १९३९—अक्तूबर १९४०*

९३९ का सितंबर महीना था। इधर आकाश में बदलियाँ धीरे-धीरे छँट चुकी थीं और आकाश निरभ्र हो रहा था और उधर संसार के आकाश में दूसरे महायुद्ध के घनघोर काले बादल गहराते जा रहे थे। मैं उस समय पूना के वाडिया कॉलेज में सीनियर बी. ए. में पढ़ रहा था। 'पढ़ रहा था' कहने के बदले यदि कहूँ कि वाडिया कॉलेज के खेल के मैदान में खेल रहा था तब भी कोई हर्ज नहीं; क्योंकि कॉलेज की पढ़ाई और किताबों की अपेक्षा खेल के मैदान से ही मुझे अधिक दिलचस्पी थी। क्रिकेट, टेनिस, ॲथेलेटिक्स, सभी खेलों में और यू. टी. सी. (यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर) में, पूना के सब कॉलेजों में मैं एक मशहूर विद्यार्थी था। कुल मिलाकर, कॉलेज में मेरा समय चार दीवारों से घिरी कक्षा की अपेक्षा खेल के खुले मैदान पर ही अधिक व्यतीत होता था। इसलिए कॉलेज की किसी परीक्षा के लिए मुझे 'पुनः करो उद्योग' करना पड़ा हो तो आश्चर्य ही क्या ?

ऐसे खिलाड़ी वातावरण में मेरा कॉलेज-जीवन बीत रहा था। सितंबर की एक दोपहर। बम्बई के 'हिंदू जिमखाना' के मैदान पर 'पी. जे. हिन्दू जिमखाना' और 'महाराष्ट्र क्रिकेट असोसिएशन' इन दो टीमों के बीच हो रहा

मैच बड़ा रंग ला रहा था। 'पी. जे. हिन्दू जिमखाना' के कप्तान थे श्री. एल. पी. जय और डॉ. गुट्टे तथा विजय मर्चेंट जैसे चोटी के खिलाड़ी उस टीम में खेल रहे थे और हेरिस, मोहनी, और जाधव जैसे अत्यंत निष्णात खिलाड़ियों के साथ मैं भी महाराष्ट्र टीम में खेल रहा था। आसार थे कि मैच हमारे हाथ से गया और प्रतिपक्षी की टीम जीती। इसी समय मैंने और जाधव ने ७० रन बनाकर महाराष्ट्र टीम को मज़बूत बनाया। उन ७० रनों में मेरे अपने रन ४९ थे जिन में डा. गुट्टे जैसे अत्यंत तेज़ गेंद फेंकनेवाले बोलर की एक वेगवती गेंद पर फटकारा हुआ सब को आश्चर्यचकित कर देनेवाला छक्का भी था। हम दोनों के खेल के कारण हमारी टीम हारने से बाल-बाल बच गई थी और कुछ ऐसे विजयोन्माद में कि जैसे हमने कोई लड़ाई जीत ली हो, विश्राम के समय, जब हम पेविलियन में बैठे हुए थे कि कान फाड़ता हुआ समाचार मिला : 'दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया!'

कहते हैं, असाढ़ में जब बादल गरजना शुरू करते हैं तो सिंह अपनी गुफा से बाहर निकलकर उनकी आवाज़ों का जवाब देता है। मेरे भी अंतर्मन की गुफा से मेरी एक महत्त्वाकांक्षा युद्ध के बादलों की गर्जना के कारण एकदम जागकर बाहर निकल-पड़ी। बचपन से मुझे बहादुरी और पराक्रम के कामों के प्रति बड़ा आकर्षण था। मेरे दादा पुलिस महकमे में अपने कमाल के ज़ोर पर मामूली कान्सटेबिल से इन्सपेक्टर के ओहदे तक पहुँच गए थे। मैं जब छोटा था तब वे मुझे अपने पास बिठा लेते और कलेजे को कँपा देनेवाले अपने अनुभव मुझे सुनाते। उन्हें सुनते हुए मेरा मन कल्पना के चित्र रँगने लगता कि मैं बड़ा हो गया हूँ और एक अच्छा पुलिस अफसर बन गया हूँ। कभी-कभी कल्पनाराज्य के इस अफसर के बदन पर सैनिक की वर्दी होती। सेना में भरती होने की मेरी महत्त्वाकांक्षा का दूसरा कारण है मेरे नाना, बड़ौदा के जनरल नानासाहब शिंदे का आदर्श। वे भी मामूली फौजी अफसर से बढ़ते-बढ़ते सेनापति के पद पर पहुँच गए थे। बचपन के ये सारे सपने, उसके बाद कॉलेज-जीवन के खेल-कूद और उनके प्रति असाधारण रुचि, और यू. टी. सी. की प्रगति, इन सब की पृष्ठभूमि पर युद्ध शुरू होने का समाचार सुनते ही सेना में भरती होने की महत्त्वाकांक्षा मेरे मन में लहर की तरह ज़ोर से उमड़ उठी।

मैच खतम हुआ और मैं पूना लौट आया। पूना आते ही मैं अपने

प्रोफेसर कर्कपेट्रिक से मिला और सेना में भरती होने की अपनी इच्छा सब से पहले मैंने उन्हें बताई। वे एक अच्छे स्कॉच सज्जन थे। कॉलेज में इतिहास के प्रोफेसर थे। पर इसके अलावा वे कॉलेज के क्रीड़ा-मंडल के सदस्य थे और यू. टी. सी. में लेफ्टिनेंट थे। विद्यार्थियों से वे बड़े प्रेम का बर्ताव करते थे। उनके स्वभाव के कारण और खेल-कूद के प्रति मेरी रुचि तथा यू. टी. सी. में मेरी प्रगति के कारण उनसे मेरा निकट परिचय था। मेरी इच्छा का उन्होंने हृदय से समर्थन किया। मेरी इच्छा का केवल स्वागत करके ही वे नहीं रुके, बल्कि सेना में भरती होने के लिए जिन कागज़ों और आवेदनपत्रों आदि की ज़रूरत होती है वे सब-के-सब मेरे लिए स्वयं जाकर ले आए और मुझसे ठीक से भरवा भी लिए। इतना सब हो जाने के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी पिताजी की अनुमति। उनके अनुमति-दर्शक हस्ताक्षर के बिना मेरा आवेदनपत्र स्वीकृत भी न किया जाता और उनसे अनुमति लिए बिना मैं एक कदम भी नहीं उठाना चाहता था। मेरे पिताजी उस वक्त सातारा में ज़िला न्यायाधीश थे। सेना में भरती होने के उत्साह में मैंने पिताजी को तुरंत एक एक्सप्रेस तार ठोंक दिया—'ज़रूरी काम के लिए आ रहा हूँ।' और सातारा जानेवाली गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी की चाल के साथ मेरा मन कल्पना के चित्र रँगने लगा कि सेना में मैं एक बड़ा अफ़सर हो गया हूँ। मैं कॉलेज का विद्यार्थी हूँ, अपनी शिक्षा पूरी करने की ज़िम्मेदारी अभी मैंने पूरी नहीं की है, इन सब बातों का ख्याल उस वक्त मेरे मन से बिल्कुल पुँछ गया था। अपने भावी जीवन के, फौजी ज़िंदगी के उन उमंग भरे सपनों को देखता हुआ मैं सातारा कब पहुँच गया इसका पता तक न चला।

इसमें शक न था कि मेरा तार पिताजी को मिल गया था क्योंकि उन्होंने सातारारोड स्टेशन पर मुझे लेने गाड़ी भेजी थी। मैं मोटर से घर पहुँचा। उस समय रात के करीब साढ़े-बारह बजे थे। मोटर ने घर के अहाते में प्रवेश किया। उसकी आवाज़ सुनते ही पिताजी और माताजी, दोनों बड़ी उत्कंठा से बाहर आकर खड़े हो गए थे। पिताजी के बदन पर रात के भोजन की खास पोशाक (डिनर-जॅकेट) ज्यों-की-त्यों थी। शायद बाहर कहीं डिनर का निमंत्रण रहा होगा। वहाँ से भोजन करके लौटते ही मेरा तार मिला होगा और मैं घर क्यों आ रहा हूँ इसका कुछ भी स्पष्टीकरण न हो पाने के कारण अभी तक वही पोशाक पहने हुए वे मेरी राह देख रहे थे।

मोटर से उतरते ही मैंने पिताजी और माताजी के चरण छुए। पिताजी ने मुझे हाथ पकड़कर उठाया और वे मुझे भीतर के बैठकखाने में ले गए। बैठकखाने में कदम रखते ही मेरा मन भय और उत्सुकता से भर उठा। भय यह था कि पिताजी मुझे कहीं रोक तो नहीं देंगे और यदि उन्होंने अनुमति दे दी तो उत्सुकता थी आगे आनेवाले अपने साहसी सैनिक जीवन के प्रति। ऐसी मनस्थिति में ही मैंने बैठकखाने में प्रवेश किया। माँ और पिताजी बैठ गए। मैं अभी खड़ा ही था कि पिताजी ने पूछा—

"क्यों भाऊ, किस ज़रूरी काम के लिए इतनी जल्दी तार करके आए हो?"

मैंने पिताजी को सेना में भरती होने की इच्छा कह सुनाई। आवेदनपत्र तथा अन्य कागज़ात जिन्हें भरकर मैं अपने साथ ले आया था, सब उन्हें दे दिए। मेरी इच्छा सुनकर और उन सब कागज़ों को देखकर पिताजी बोले—

"हूँ—तो तुम सेना में भरती होना चाहते हो? ठीक है। मैं समझ गया। पर अब रात काफी हो गई है। हम लोग अभी आराम करें। कल सुबह इस विषय पर बातें करेंगे।"

पिताजी की आज्ञानुसार मैं अपने बिस्तर पर जा लेटा। पूना से सातारा तक का वह सफर और बाद में आधी रात की वह विलक्षण भेंट। मेरा शरीर भले ही थोड़ा थक गया हो फिर भी मन में एक विलक्षण तनाव था। बिस्तर से अनंत आकाश दिख रहा था। उसमें वर्षा समाप्त होने के बाद का कालापन बीच-बीच में नज़र आ रहा था। किसी दूर के निगूढ़ प्रदेश की तरह वह आकाश मुझे लगा। मन में एक ही विचार घूम रहा था। क्या पिताजी मुझे लड़ाई पर जाने देंगे? वे घर के दूसरे छोर पर सोए हुए थे। उनके मन की थाह पाना संभव नहीं था। दूसरा दिन निकलने तक अपने भविष्य की प्रतीक्षा करने के लिए मैं मजबूर था। मन की उस स्थिति में ही जाने कब मैं निद्रा के अधीन हो गया। उस नींद में भी मन उस अद्भुत भविष्य के सपने रँगने में व्यस्त था। आखिरकार सुबह हुई और हम चाय पर एकत्र बैठे।

चाय पीते समय पिताजी मुझ से बोले—"भाऊ, तुम्हारा विचार मुझे पसंद है। तुम सेना में जाओ इसके मैं बिलकुल खिलाफ नहीं। पर यह सब करने से पहले तुम्हें एक बात सोच लेनी चाहिए। तुम बी. ए. के आखिरी वर्ष में हो। छः महीने बाद परीक्षा में बैठकर तुम बी. ए. की डिग्री हासिल कर सकते

हो। सेना की नौकरी, खेल-कूद आदि के सब विचार कम-से-कम आज तो एक ओर हटा ही दो और पहले बी. ए. पास करो। मुझे विश्वास है कि बी. ए. पास होने के बाद तुम्हें सेना में या पुलिस विभाग में कहीं भी ज़रूर अच्छी नौकरी मिल जाएगी। लेकिन आज नौकरी का विचार न करके कॉलेज में रहकर पहले अपनी शिक्षा पूरी कर लो। इसीमें तुम्हारी भलाई है।"

पिताजी की बातें मैंने सुनीं और अपनी विद्यार्थी-दशा का भान जिसे मैं भूल रहा था, एकदम फिर से हुआ। पिताजी का कहना ठीक था। एक विद्यार्थी के नाते मेरा कर्तव्य अभी पूरा नहीं हुआ था। मैं सोच रहा था। यह देख कि कोई नहीं बोल रहा है, पिताजी ने मुझ से प्रश्न किया—

"क्यों, क्या ख्याल है तुम्हारा?"

"आपका ही कहना ठीक है पिताजी। मैं उसके खिलाफ नहीं। बी. ए. पास होने के बाद ही मैं सेना में जाने का विचार करूँगा।"

और अंत में इस तरह अपनेराम हृदय में कुछ निराशा दबाए सातारा छोड़कर फिर पूना के कॉलेज में आकर हाज़िर हुए। तत्क्षण सेना में भर्ती होने के मेरे उत्साह पर पानी फिर गया था। इसलिए मैं निराश तो हो ही गया था परंतु दूसरी ओर पिताजी के प्रति अगाध श्रद्धा होने के कारण मुझे यह विश्वास भी था कि उनकी सलाह मेरे लिए निश्चित ही लाभदायक सिद्ध होगी। पूना आने के बाद आदत से लाचार हम फिर खेल-कूद की ओर मुड़ पड़े। मैं फिर से पहले की तरह कॉलेज के खिलाडी वातावरण से एकरूप हो गया और जब परीक्षा के लिए जैसे-तैसे एक ही महीना बचा, तब कहीं ज़ाकर मेरी नींद खुली। भान हुआ, बी. ए. के परीक्षा-फल पर ही सैनिक जीवन के मेरे भावी सपनों का साकार होना अवलंबित है। परंतु बी. ए. की परीक्षा पास करना बल्ला उठाकर छक्का मारना तो था नहीं; न वह सौ गज़ की दौड़ जीतना ही था। परीक्षा का फल क्या होगा बहुत-कुछ जान चुका था।

मई की छुट्टियों में मैं अपने घर सातारा गया। परीक्षा का फल मेरे प्रतिकूल रहा। फेल हो गया। बहुत बुरा लगा। परंतु पिताजी ने हिम्मत बँधाई। बोले—"बेटे, असफलता तो जीवन में आती ही है। तुम इतने निरुत्साहित क्यों होते हो? तुम चाहो तो पुनः पूना जाकर छात्रालय में रहो। अगर यहीं घर में पढ़ना चाहते हो तब भी कोई हर्ज़ नहीं। पर नौकरी का ख्याल मत छोडो। फिर से कोशिश करो।"

पिताजी के समझाने से हिम्मत बँधी। मैं पूना गया और एक अलग कमरा लेकर रहने लगा। जान गया था कि बी. ए. पास किए बिना मैं सेना में भरती होने की महत्त्वाकांक्षा साकार नहीं कर पाऊँगा। और तब मैंने कसकर पढ़ाई शुरू कर दी। 'There's always a second inning' इस कहावत के अनुसार क्या क्रिकेट में और क्या जीवन में, दूसरा दाँव हमेशा मिलता ही है। अपनी परीक्षा का दूसरा दाँव अधिक सावधानी से खेलने का मैंने निश्चय किया और उसके लिए ज़ोरों से तैयारी करने लगा। परंतु सेना-भरती के लिए आवश्यक आवेदनपत्र आदि भेजने की तारीख परीक्षा से पहले पड़ती थी। प्रो. कर्कपेट्रिक ने मुझे आवश्यक कागज़ात फिर ला दिए और सातारा जाकर पिताजी से हस्ताक्षर लेकर उन्हें भेज देने को कहा।

मैं सातारा गया। साथ में जो कागज़ात ले गया था उन्हें पिताजी के सामने रखा। तनिक सोचकर पिताजी बोले—"पर भाऊ, मुझे इसमें एक अड़चन दिख रही है। मान लो, अगर परीक्षा का फल आने से पहले ही तुम सेना के लिए चुन लिए गए, तो?"

मैंने उन्हें तुरंत उत्तर दिया—"पिताजी, मेरी परीक्षा का फल यदि मेरे अनुकूल न हुआ तो मैं चुन लिए जाने पर भी भरती होने से इंकार कर दूँगा। कुछ भी हो, पर बी. ए. पास किए बिना मैं फौज में नहीं जाऊँगा, यह सुनिश्चित है। पर पिताजी, परीक्षा का फल चुनाव होने से पहले ही आ जाएगा। इन कागज़ों को भेजने की तारीख निश्चित है। उस तारीख से पहले ही ये कागज़ अगर वहाँ नहीं पहुँचे तो फिर छः महीने और रुकना पड़ेगा।"

मेरे उत्तर से पिताजी को संतोष हो गया। उन्होंने उन कागज़ों पर हस्ताक्षर कर दिए। मैंने कागज़ भेज दिए और पूना जाकर पिताजी को दिए वचनानुसार बी. ए. की पढ़ाई में लग गया। जमकर पढ़ाई की; पूरे आत्मविश्वास से अक्तूबर की परीक्षा में बैठा और रिज़ल्ट का इंतजार करता रहा।

# २

# भावी जीवन का सूत्रपात

*अगस्त १९४०–जुलाई १९४१*

डी. ए. की परीक्षा में बैठने से पहले मुझे अपने सैनिक-जीवन की एक पूर्व-परीक्षा, इंटरव्यू (साक्षात्कार) देना पड़ा था। यह इंटरव्यू सन १९४० के अगस्त महीने में पूना में हुआ। अपने जीवन का पहला इंटरव्यू देने के लिए मैं उन २५० उम्मीदवारों के दल में उत्सुक और धड़कते हुए दिल से जाकर शामिल हुआ। इस साक्षात्कार में विशेष ज़ोर शारीरिक जाँच पर था। उम्मीदवार शारीरिक दृष्टि से सेना के कठिन जीवन के लिए योग्य हैं अथवा नहीं, इसकी जाँच की जा रही थी। जाँच करनेवाले डॉक्टर भी फौजी-अफसर ही थे। उनमें कॅप्टन वाल्टर्स आई. एम. एस. भी थे। मेरे क्रिकेट के शौक के कारण उनसे मेरा काफी परिचय था। वे पूना क्लब की क्रिकेट टीम के भी कप्तान थे और मैं उस टीम में खेला करता था। मेरी जानकारी रखनेवालों में से एक व्यक्ति की हैसियत से मैंने उनका नाम भी आवेदनपत्र में दिया था। इसी कारण पक्षपात से अलग रहने की इच्छा से उन्होंने खुद होकर मेरी जाँच करने से इन्कार कर दिया और दूसरे डॉक्टरों से मेरी जाँच करने को कहा। इस परीक्षा में २५० उम्मीदवारों में से करीब १०० उम्मीदवार फेल हो गए और १५० उम्मीदवार

चुने गए। इन १५० उम्मीदवारों में मैं भी था। पहला मोर्चा जीत लेने की मुझे खुशी हुई।

पर पहला मोर्चा जीत लेने के बाद दूसरे मोर्चे का भी सामना करना था। पहली जाँच में पास हुए हम १५० उम्मीदवारों को दक्षिण हैदराबाद की बोलारम नाम की एक फौजी छावनी में दूसरे साक्षात्कार के लिए हाज़िर होने का हुक्म मिला। यह साक्षात्कार मेरी बी. ए. की परीक्षा हो जाने के बाद ११ नवंबर को हुआ। इस साक्षात्कार में तीन फौजी अफसरों की समिति के आगे हमें खड़ा होना पड़ा। अपने विषय की जानकारी के जो कागज़ात हमने भरकर भेजे थे, उन के स्तंभों को लक्ष्य कर हमसे प्रश्न पूछे गए। इस साक्षात्कार में १५० उम्मीदवारों में से करीब १०० फेल हो गए और फिल्टर की इन दो चलनियों में से जैसे छनकर निकले हुए हम पचास उम्मीदवार तीसरी छलनी में से छाने जाने के लिए दिल्ली में होनेवाले अंतिम साक्षात्कार के लिए बच रहे। दिल्ली में ५ दिसंबर को हमारा यह अंतिम साक्षात्कार हुआ। यहाँ भी तीन उच्च सैनिक अधिकारी हमारा साक्षात्कार ले रहे थे। हर उम्मीदवार के फार्म्स, पहले दो साक्षात्कारों में हर उम्मीदवार को मिले अभिप्राय इत्यादि सारे कागज़ात अपने सामने रखकर ही ये अधिकारी हमसे प्रश्न पूछ रहे थे। इस साक्षात्कार में पूछे गए प्रश्न अधिक कठिन और सैनिकों की कठिनाइयों और अड़चनों को लक्ष्य कर थे। सेना में भरती होने पर ये तरुण कहाँ तक कार्य-कुशल साबित होंगे इसीका जैसे वे अधिकारी अंदाज़ बाँध रहे थे। मैंने प्रश्नों के उत्तर बड़े आत्म-विश्वास से दिए और अपना साक्षात्कार संतोषपूर्वक समाप्त कर मैं बाहर निकला।

दिल्ली से लौटते समय मैं सेना की अपनी महत्त्वाकांक्षा के आदर्श-स्वरूप अपने नानाजी जनरल नानासाहब शिंदे से मिलने बड़ौदा गया। वहाँ मैं एक ही दिन था। इस मुकाम में साहब ने याने मेरे नानाजी ने मुझसे सारा हाल बड़ी आस्था से पूछा। साहब को इस बात का सानंद अभिमान था कि मैं सेना में भरती हो रहा हूँ। उन्होंने मुझे प्रोत्साहन देकर बड़े प्रेम से आशीर्वाद दिया। एक सेनानी के उस आशीर्वाद से मेरा उत्साह और भी बढ़ गया।

मैं बड़ौदा से निकला और सातारा जाने से पहले घोलवड़ उतरकर बोर्डी गया। जिस पाठशाला ने विद्यार्थी-दशा में मुझे गढ़ा, जिसके गुरुजनों ने मुझे देश का एक कर्मवीर नागरिक बनाने के लिए आवश्यक शिक्षा दी,

उस पाठशाला की ओर मेरे क़दम, मेरे मन में उसके प्रति आदर और प्रेम के कारण आप-ही-आप मुड़ पड़े थे। मेरी एक महत्त्वाकांक्षा साकार होने की देहलीज तक आ चुकी थी। ऐसे समय मैं जैसे अपनी स्नेहमयी माँ का आशीर्वाद लेने के लिए ही यहाँ आया हूँ ऐसा मुझे लग रहा था। पाठशाला के प्रांगण में जब मैंने पग रखा तो शाम हो गई थी। पक्षी नीड़ों की ओर लौट रहे थे और मैं अपने पुराने छात्रावास 'शारदाश्रम' की तरफ जा रहा था। वहाँ मेरे गुरुजी आचार्य भिसे के कमरे में मैं गया। वे कुछ पढ़ रहे थे। मैंने जाकर उनके चरण छुए।

बहुत वर्षों के बाद मुझे देखकर उन्हें बड़ा आनंद हुआ। उन्होंने मेरा स्वागत किया और हाल जाने। मैंने उनसे कहा कि मैं सेना में भरती हो रहा हूँ और अभी-अभी ही अंतिम इंटरव्यू देकर दिल्ली से आ रहा हूँ। हम बातें कर रहे थे कि इसी समय प्रार्थना की घंटी हुई। इतने वर्षों के बाद भी मन पर छाए संस्कारों के कारण मैं एकदम उठकर खड़ा हो गया। आचार्य हँसकर बोले—"प्रार्थना में चलोगे? चलो; पर हाँ, टोपी नहीं होगी तुम्हारे पास?" आश्रम का नियम था कि प्रार्थना में बिना टोपी पहने नहीं जाना चाहिए। आचार्य ने मेरे लिए टोपी मँगवा दी और मैं उनके साथ प्रार्थना में गया। आचार्य ने मुझे अपने पास बिठा लिया। उस दिन की प्रार्थना समाप्त होने पर उन्होंने सब विद्यार्थियों से मेरा परिचय कराया और मेरी सारी जानकारी उन्हें दी। मैं उनकी ही पाठशाला का एक ख्यातनाम विद्यार्थी हूँ और सेना में भरती होने की कोशिश कर रहा हूँ, यह भी उन्होंने सबको बताया।

भोजन के बाद अन्य शिक्षकों के साथ समकालीन विद्यार्थियों के बारे में बातें हुई। पाठशाला के भूतपूर्व विद्यार्थियों से मिले दान से बनाया गया नया सभा-भवन मुझे दिखाया गया। इस सभा-भवन को उन्होंने 'गुरु-दक्षिणा' यह बड़ा उचित नाम दिया था। रात भर मैं आश्रम में रहा और सुबह आचार्य के आशीर्वाद लेकर सातारा के लिए रवाना हुआ।

घर आने पर मेरे दिन दुहरी उत्कंठापूर्ण प्रतीक्षा में बीतने लगे। मेरी बी. ए. की परीक्षा का रिज़ल्ट और इन तीन इंटरव्यूज़ की अग्नि-परीक्षा से निकलने के बाद आनेवाला रिज़ल्ट! इनमें से पहले कौनसा रिज़ल्ट मालूम होगा, मैं बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। इसीमें एक डर भी मन को

लग रहा था। मान लो, मैं सेना के लिए चुन लिया गया और इधर बी. ए. में फेल हो गया तो? याने फिर वही संकट! लेकिन सौभाग्य से ऐसा नहीं हुआ। मेरी बी. ए. की परीक्षा का रिज़ल्ट पहले आया और वह मेरे अनुकूल था। मेरी इस सफलता का बहुत बड़ा श्रेय मेरे अंग्रेज़ी के प्रोफेसर श्री भूषणजी को और मराठी के प्रोफेसर श्री पाठकजी को ही देना चाहिए। प्रोफेसर भूषणजी रोज़ शाम को दो-दो, तीन-तीन घंटे मुझसे अंग्रेज़ी का अध्ययन करा लिया करते। इस अध्ययन के लिए उन्होंने मुझसे कोई फीस तो कभी ली ही नहीं, उल्टे मेरी पढ़ाई में कोई बाधा न आए इसलिए कितनी ही बार वे मुझे रात का भोजन अपने साथ ही कराकर फिर पढ़ाने लगते। मेरे मराठी के प्रोफेसर श्री पाठकजी कॉलेज में, जब-जब उन्हें अवकाश मिलता तब-तब मुझे बुलवा लेते और बड़ी आत्मीयता से मेरा मार्गदर्शन करते। उन्होंने भी वह मार्गदर्शन निःशुल्क ही किया। इन दो प्रोफेसरों ने मेरा मन पढ़ाई की तरफ मोड़कर मुझे यदि खेल के मैदान से दूर न रखा होता तो मैं सहज ही पुनः खेल की ओर आकर्षित हो जाता और फिर मेरी बी. ए. की पढ़ाई का, उसके रिज़ल्ट का, उस रिज़ल्ट पर निर्भर मेरे फौजी-जीवन के स्वप्न का क्या होता इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है। इन दो प्रोफेसरों ने मेरे लिए जो किया वह ऐसा है जिसे मैं ज़िंदगी भर नहीं भूल सकूँगा। मेरे मन में उनके प्रति जो कृतज्ञता है वह शब्दों से व्यक्त नहीं की जा सकती। आज मैं जिस अधिकार-पद पर हूँ उसकी नींव भी इन दो गुरुजनों ने ही डाली इसमें संदेह नहीं। मेरा तो यह ख्याल है कि समय रहते अपने गुरुजनों के मार्गदर्शन से अधिकाधिक लाभ उठाया जा सके तो प्रत्येक विद्यार्थी अपने-अपने कार्य-क्षेत्र में अपना ध्येय निश्चित रूप से प्राप्त कर सकेगा। मैं कम-से-कम इतना तो निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि मेरे आज के यश का सारा श्रेय इन्हीं गुरुजनों का है और यह कहते हुए मुझे गर्व है।

जिस समय बी. ए. का रिज़ल्ट आया, उस समय मैं अपने घर सातारा में था। पास होने के बाद एक ही प्रश्न रह गया था। देखना था कि दिल्ली के साक्षात्कार का रिज़ल्ट क्या आता है। पिताजी की राय थी कि दिल्ली का फैसला यदि मेरे प्रतिकूल रहा तो मैं एम. ए. या एलएल. बी. पढ़ने के लिए पुनः कॉलेज में दाखिल हो जाऊँ। मैंने एम. ए. करना तय

किया क्योंकि उसके कारण मेरा खेलने का शौक यथावत् जारी रहता। बी. ए. के रिज़ल्ट के बाद मैं पूना जाकर रहा। यदि मैं सेना के लिए चुन लिया गया तो उसके लिए आवश्यक पोशाक आदि की तैयारी करना भी ज़रूरी था।

पूना आकर मैं फैसले का इंतज़ार करने लगा। वह दिसंबर का महीना था। मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। मैं अपने कमरे में ही पड़ा रहता था। ऐसी स्थिति में एक दिन सेना के लिए चुने गए उम्मीदवारों के नाम अखबारों में प्रकाशित हुए। मैंने बड़ी उत्कंठा से वह सूची देखी। सब नाम मैंने एक बार पढ़ डाले और फिर दुबारा भी पढ़े। पर मेरा नाम उस सूची में नहीं था। पूना के मेरे एक-दो मित्रों ने जो चुन लिए गए थे, उनके अपने सूचना-पत्र जो दिल्ली से उनके व्यक्तिगत पते पर आए थे, मुझे लाकर दिखाए। मुझे घोर निराशा हुई। ऐसा क्योंकर हुआ यह मैं समझ नहीं पा रहा था। जब प्रोफेसर भूषणजी मेरे स्वास्थ्य की पूछताछ करने मेरे कमरे में आए तो मैंने अपने दिल की सारी बेचैनी उनसे कही। सब कुछ सुन लेने के बाद प्रोफेसर साहब मुझसे बोले—"तुम निराश मत हो। जब कि तुम्हें पास या फेल ऐसी कोई भी सूचना नहीं मिली है तब निश्चित ही इसमें कहीं कुछ घुटाला है। तुम दिल्ली तार भेजकर इसकी छानबीन कर लो।" इतना कहकर ही वे नहीं रुके बल्कि तार का मज़मून भी उन्होंने बताया। तदनुसार मैंने दिल्ली तार भेजा और दो ही दिनों के बाद २१ दिसंबर को तार का उत्तर आ गया। तार पाते ही उसे लेकर मैं प्रोफेसर भूषण को दिखाने गया। मज़मून पढ़कर उन्हें अत्यानंद हुआ। उनका अनुमान सत्य साबित हुआ था। मैं चुन लिया गया था। आगे चलकर ता. २६ दिसम्बर को मुझे ब्यौरेवार सूचनाएँ मिलीं कि मुझे अब क्या-क्या करना होगा। आगामी सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए २६ जनवरी १९४१ को महू पहुँचकर हाज़िर होने का आदेश भी मुझे मिला।

अपने जीवन की इस महत्त्वपूर्ण घटना के घटित होते ही मैंने बड़ी खुशी में पिताजी को सातारा, एक्स्प्रेस तार भेजकर सूचित किया कि मैं सेना में चुन लिया गया हूँ। उन्होंने मुझे तुरंत सातारा बुलाया। पिताजी के हर व्यवहार से यह दिख रहा था कि मेरी सफलता पर उन्हें बड़ा आनंद हुआ है। वे मुझे अपने साथ सातारा के तत्कालीन कलेक्टर मि. हुलंड के यहाँ ले गए। उस ज़माने में कलेक्टर एक बहुत बड़ा व्यक्ति माना जाता था। यह बतलाते हुए कि मैं

सेना में चुन लिया गया हूँ, उन्होंने कलेक्टर से मेरा परिचय कराया। इसके बाद वे मुझे एक अवकाश-प्राप्त कलेक्टर मि. पियर्सन के घर ले गए जो सातारा में ही रहते थे। वे फिर मुझे अपने क्लब में ले गए और सभी बड़े-बड़े सदस्यों से उन्होंने मेरा परिचय कराया। पिताजी के साथ उनके क्लब में जाने का मेरा वह पहला ही मौका था। क्लब के दो सभासदों ने तो मेरे इस चुनाव पर मेरा अभिनंदन करने के लिए दावतें दीं। पिताजी ने बड़े गर्व से मेरी जो यह प्रेमपूर्वक सराहना की उसके कारण मुझे आनंद तो हुआ ही परंतु मेरे मन में यह ज्ञान भी पैदा हुआ कि आज से एक अत्यंत जिम्मेदारी से भरा व्यक्तित्व मुझे प्राप्त हुआ है। सातारा में दो दिन रहकर मैं पूना लौट आया।

सातारा छोड़ते समय पिताजी ने मुझसे कह दिया था कि वे और माताजी दोनों दिसंबर के अंतिम सप्ताह में पूना आएँगे। तदनुसार वे पूना आए और उसी सप्ताह में वे प्रो. भूषणजी से मिले। मेरे पिताजी ने भी यह महसूस किया कि मेरे यश का श्रेय भूषणजी को देना होगा। अतएव उन्होंने प्रोफेसर साहब के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की। मेरे कॉलेज के प्रिंसिपल श्री खाडये पिताजी के सहपाठी थे जब कि दोनों विल्सन कॉलेज में पढ़ते थे। मुझे साथ लेकर पिताजी उनसे भी मिले। प्रि. खाडये को यह देखकर कि उनके मित्र का लड़का और उनके अपने कॉलेज का एक विद्यार्थी सेना में चुन लिया गया है, बड़ा आनंद हुआ।

इस समय पिताजी ने मेरे भावी जीवन की दृष्टि से मेरा जो अनमोल मार्गदर्शन किया उसके कारण ही आज मैं इस अधिकार-पद पर हूँ। वे बोले—"फौज की नौकरी को स्थायी न मानो। युद्ध समाप्त होने पर तुम आई. सी. एस. में ही काम करोगे ऐसा मन में निश्चय कर लो। मैं तुमसे बी. ए. पास करने को जो कह रहा था वह सिर्फ इसीलिए। तुम अपने सामने आज से ही यह आदर्श रख लो कि लड़ाई के बाद नौकरी करोगे तो सिर्फ आई. सी. एस. अथवा आई. पी. में ही।" पिताजी के इन शब्दों के कारण ही मेरे जीवन को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ मिला।

दिसंबर के उस सप्ताह में ही महू जाने की पूरी तैयारी करके मैं प्राप्त हुए आदेश के अनुसार ६ जनवरी की शाम को पूना से निकल पड़ा। मुझे विदा करने के लिए मेरे पिताजी, माताजी, प्रो. भूषण, श्रीमती भूषण तथा अन्य कई मित्र स्टेशन आए थे। प्रो. भूषण एक हार ले आए थे जो श्रीमती

स्नेहसिक्त नेत्रों से मेरी आरती उतारनेवाली माई की मूर्ति

भूषण ने मुझे पहनाया। मेरे मित्रों के मुख पर मेरे प्रति प्रेम और अभिमान झलक रहा था। मैंने उन सबसे विदा ली और गाड़ी ने पूना स्टेशन छोड़ा।

गाड़ी बदलने के लिए मैं कल्याण स्टेशन पर उतरा। वहाँ बंबई में रहनेवाली मेरी बड़ी बहिन श्रीमती माई और उसके पति श्री भाऊसाहब सुर्वे मुझसे मिलने और मुझे विदा करने आए थे। मेरा सत्कार करने के लिए वे भी एक हार लाए थे जो माई ने मुझे पहनाया। उनके साथ मेरे चचेरे चाचाजी, दत्तूनाना भी आए थे। उन्होंने भी मुझे हार पहनाया। माई को मेरे सेना में जाने की बहुत ही ज़्यादा खुशी थी। उसकी आँखों से सराहना के भाव झलक रहे थे। उसने मुझसे कहा—'भाऊ, तुम बहुत बड़े अफसर बनोगे।' हम लोग डिब्बे में बैठकर ही बातें कर रहे थे कि इसी समय गाड़ी खुलने का वक्त हो गया। मिलनेवाले नीचे उतर पड़े। मैं दरवाज़े में खड़ा

होकर सब से विदा ले रहा था। गाड़ी चली और स्नेहसिक्त नेत्रों से मेरी आरती उतारनेवाली माई की मूर्ति धीरे-धीरे दूर होती हुई दृष्टि से ओझल हो गई।

मैं ८ जनवरी की सुबह महू पहुँचा। हमें लेने के लिए फौजी गाड़ियाँ आई थीं। उनमें बैठकर हम अपने रहने के स्थान पर पहुँचे। हमारे रहने का इंतज़ाम बैरकों में किया गया था। बैरक के एक-एक कमरे में दो-दो विद्यार्थी रहते थे। सैनिकी-जीवन के अपने सपने नज़रों के सामने रखकर मैंने अपनी सैनिक शिक्षा बड़े उत्साह से शुरू की।

और ऐसे में ही मार्च महीने के एक दिन पिताजी का खत मुझे मिला। उसमें मेरी स्नेहशीला प्रिय बहिन श्रीमती माई की मृत्यु का दुखद समाचार था। वाई के मिशन-अस्पताल में वह प्रसूति के लिए गई हुई थी और वहीं एक दुर्घटना घटी। प्रसूति तो कुशलपूर्वक हो गई थी। परंतु उसके कुछ ही दिनों बाद उसे बुखार आने लगा और दुर्भाग्य से उसीमें उसका अंत हो गया। मेरी डबडबाई आँखों के सामने मुझे आशीर्वाद देनेवाली मेरी स्नेहशीला बहन की मूर्ति खड़ी हो गई। कल्याण के स्टेशन पर बेचारी ने मुझे विदा किया था; बलवान काल ने उसे अन्तिम विदाई सिद्ध कर दिया था। 'ईश्वर के खेल अजीब हैं' कहकर छलछलाई आँखें पोंछने के सिवा मैं कर ही क्या सकता था?

धीरे-धीरे फिर से दैनिक कार्य का चक्र घूमने लगा और कुछ दिनों के बाद हमारे परिवार में, माई के रहते निश्चित हुआ एक विवाह-समारोह सम्पन्न हुआ। मेरी छोटी बहिन कृष्णा उर्फ बेबी का विवाह श्री शंकररावजी मोहिते से हुआ। पिताजी ने मुझे लिखा था कि अगर संभव हो तो मैं भी उस विवाह में शरीक हो जाऊँ। परंतु मैं अपनी पढ़ाई छोड़कर जा नहीं पाया।

महू का सात महीने का शिक्षा-क्रम काफी कठिन था। सुबह पाँच बजे बिगुल के बजते ही हम उठ जाते और हमारा दिन शुरू हो जाता। साढ़े छः से डेढ़ बजे तक परेड और अन्य सैनिकी व्यवसायों की शिक्षा दी जाती। बीच में नौ से पौने दस तक नाश्ता मिलता। डेढ़ के बाद भोजन और फिर थोड़ा विश्राम। पुनः दोपहर को ४ से ६ तक खेल रहा करते। छः बजे बैरकों में वापिस आकर हम स्नान करते। ठीक साढ़े सात को भोजन की पोशाक में मेस (भोजन-गृह) में हाजिर रहना पड़ता। साढ़े आठ, पौने नौ तक बैरक में

वापिस आकर हम दूसरे दिन का सबक याद करते। रात ठीक साढ़े दस बजे रोशनी गुल कर देने के लिए बिगुल बजता और बिगुल से सवेरे प्रारंभ हुआ हमारा दिन-क्रम बिगुल से हर रात को समाप्त होता। फिर सवेरे पाँच बजे का बिगुल होने तक रात को आराम करने के लिए हम बिस्तर पर जाकर सो जाते। हमारी शिक्षा में जैसे-जैसे प्रगति होती थी वैसे-वैसे भिन्न-भिन्न प्रकार की लड़ाइयों के प्रात्यक्षिक वगैरह कार्य-क्रम भी किए जाते थे। कभी-कभी आठ-आठ दिन के शिविर भी रहते। यद्यपि यह जीवन-क्रम शारीरिक और मानसिक शक्तियों पर काफी बोझ डालनेवाला लगता था फिर भी मैं बड़े उत्साह से उसमें भाग ले रहा था; क्योंकि मेरे भावी जीवन का वह सूत्रपात ही था।

# ३

# चाँदी की तश्तरी में रखे दो लिफाफे

*अगस्त १९४१–मार्च १९४२*

दिन के बाद दिन और महीने के बाद महीने गुज़रे। महू की सैनिकी शिक्षा धीरे-धीरे समाप्त हुई। अंत में हमारी परीक्षा हुई। परंतु हमारा परीक्षा-फल इस आखिरी परीक्षा पर ही अवलंबित नहीं था। रोज़ की पढ़ाई में प्रगति, परेड और खेलों में दिखाया गया साहस और जोश, माहवारी परीक्षा में प्राप्त हुए गुण, तथा अन्य जाँच, इन सबमें प्राप्त हुए गुणों का औसत निकालकर ही इस अंतिम परीक्षा का फल निश्चित होता था। इस कारण अंतिम परीक्षा में विशेष गुण प्राप्त न कर सकनेवाला, परंतु साल भर हर बात में अच्छी प्रगति दिखानेवाला केडेट (फौजी शिक्षा प्राप्त करनेवाला विद्यार्थी) अनुत्तीर्ण नहीं किया जाता था। यह परीक्षा-प्रणाली अन्य स्थानों में प्रचलित परीक्षा-प्रणालियों से अलग और मेरे ख्याल से अधिक अच्छी है।

आठ अगस्त को "फौजी शिक्षा सफलतापूर्वक पूरी करनेवाले केडेट" शीर्षक से केडेटों के नाम दिए गए। नीचे यह सूचना भी थी कि सफल केडेटों को उनकी नियुक्ति के हुक्म शीघ्र मिलेंगे। तदनुसार १५ अगस्त १९४१ को मुझे मेरा आदेश मिला। बेलगाँव में मराठा लाइट इनफेन्ट्री में सेकेंड

लेफ्टिनेंट की हैसियत से मुझे नियुक्त किया गया। जिस सपने को मैं बचपन से सँजोता आया था, वह इस आदेश के रूप में साकार हो गया था। मेरे सारे प्रयत्न सफल हो गए थे। गुरुजनों और जेठे-सयानों के आशीर्वाद तथा आतजनों एवं सुहृदों की शुभेच्छाएँ फलीभूत हो गई थीं। सूरमापन दिखाने की साध खुले मैदान में उतरने को ललक रही थी। मेरा मन संतोष से भर उठा।

मुझे प्राप्त हुए आदेश के अनुसार एक सप्ताह के भीतर ही मैं वेलगाँव पहुँचकर अपने काम पर हाज़िर हो गया। यहाँ की हमारी मराठा पैदल सेना को 'लाइट' विशेषण इसलिए लगाया जाता था कि उस दल के सैनिकों की गति बहुत तेज़ थी। एक मिनट में १४० कदम के हिसाब से हमारे दल के जवान चलते थे। फुर्तीले और चपलगति हिरन की तरह हमारे दल की हलचलें वेगवान रहा करतीं, इस लिए वह 'लाइट इनफेन्ट्री' कहलाती थी। इस विशेषण 'लाइट' का भी एक इतिहास है। 'लाइट इनफेन्ट्री' एक सम्मानसूचक उपाधि भी मानी जाती थी। सन १८४१ में हुए पहले अफ़गान युद्ध में हमारी दूसरी बटालियन ने बिलोचिस्तान के कहुन और दादर के घेरे में अपूर्व शूरता प्रदर्शित की थी और यह सम्मान अर्जित किया था।

महू में मेरी जो दिन-चर्या थी उससे यहाँ का दिन-क्रम अलग था। महू में मैं एक केडेट था और यहाँ एक फौजी अफसर था। यहाँ मेरे अधिकार में एक प्लेटून याने ४०-५० जवानों की एक टुकड़ी थी। मेरे जवानों को सैनिकी शिक्षा ठीक से दी जा रही है या नहीं और उसे वे ठीक से सीख रहे हैं या नहीं, यह देखना उनके अफसर के नाते मेरा कर्तव्य था। सैनिकी अधिकारी का यह पद सम्मानपूर्ण तो था ही, परंतु सम्मान की अपेक्षा कितनी ही बड़ी ज़िम्मेदारी का भी था। सेना के अधिकारियों की ज़िम्मेदारियाँ मुल्की अधिकारियों की ज़िम्मेदारियों से काफी अलग होती हैं। यहाँ अधिकारियों की आज्ञा का पालन करने को अपने प्राणों की भी परवाह न करनेवाले; बल्कि घर-द्वार के साथ प्राणों की चिंता तक पीछे छोड़कर आए हुए साहसी जवान अधिकारियों के सामने खड़े होते हैं। और इसीलिए यह ज्ञान भी अधिकारियों को रखना अत्यंत आवश्यक होता है। अधिकारियों को उनके साथ मित्रता और आत्मीयता के संबंध रखने पड़ते हैं। अपने मातहत हर जवान की, उनके गुणों और दोषों की भीतरी और बाहरी जानकारी रखना ज़रूरी है। यदि अफसर को ऐसी जानकारी न हो तो फिर कैसा ही बहादुर सेनाधिकारी हो, वह अपने

जवान लेकर दुश्मन की एक छोटी-सी पहाड़ी भी नहीं जीत सकता। इसलिए हमारा यह कर्तव्य माना जाता था कि हम बेलगाँव के अपने जवानों के साथ कभी-कभी खाना खाएँ, उनकी मानसिक या शारीरिक शिकायतों की तहकीकात करें और अगर शिकायतें हों तो उनके उचित डाक्टरी इलाज या मार्गदर्शन का इन्तज़ाम करें। कभी-कभी हम अपने जवानों के साथ उनके खेल-कूदों में भाग लेते थे। सैनिकी अधिकारी और सैनिकों में भावनात्मक एकता प्रस्थापित करने का आदर्श हमेशा सामने रखा जाता था। सभी लोग सेना के अनुशासन की सराहना करते हैं और चाहते हैं कि नागरिक जीवन में भी वह अनुशासन आए। इस अनुशासन को नागरिक जीवन में लाने के लिए कम-से-कम मेरे ख्याल से सबसे पहले मुल्की अधिकारियों और उनके मातहतों के बीच ऊपर लिखे अनुसार एकता प्रस्थापित होना आवश्यक है।

छः महीने हम बेलगाँव में रहे और हमारे रेजिमेंटल सेंटर में कानाफूसी होने लगी कि युद्ध के मोर्चे पर सैनिक अधिकारियों की ज़रूरत है। कौन भेजा जायगा इसकी किसीको कोई कल्पना नहीं थी। परंतु शायद पहले से आगाह करने के इरादे से हम तीन अफसरों को अहमदनगर भेजा गया। वहाँ एक जाट रेजिमेंट लड़ाई के प्रात्यक्षिक करके दिखा रही थी। हमारे वहाँ जाने पर चाँदमारी की एक योजना बनाई गई। हमें युद्ध-क्षेत्र के नक्शे दिए गए थे। उन्हें सामने रखकर, दिन-रात होशियार रहकर, मिलनेवाले संदेशों के अनुसार हमें हलचलें करनी पड़तीं। हम लोग कुछ ऐसे भाव से और जागरूकता से हर काम कर रहे थे मानो प्रत्यक्ष रणभूमि पर हों। करीब एक महीने की उस शिक्षा से हमें युद्धशास्त्र का बहुत कुछ अनुभव प्राप्त हो गया। एक महीने के बाद हम फिर बेलगाँव वापिस आए।

अहमदनगर में पाई यह शिक्षा मोर्चे पर जाने की पूर्व-सूचना ही सिद्ध हुई, क्योंकि तुरंत ही फरवरी में एक सुबह मेरी नियुक्ति का सीलबंद लिफाफा मुझे मिला। इन नियुक्तियों के बारे में एक अलिखित नियम का बराबर पालन किया जाता था। इंग्लैंड से शिक्षा लेकर आए हुए गोरे अधिकारियों को हिंदुस्तान के बाहर न भेजकर हिंदुस्तान में ही कहीं पर नियुक्त कर दिया जाता था। इंग्लैंड उनकी मातृभूमि होने के कारण जब उसे छोड़ वे हिंदुस्तान आते तो इसका यह सुविधाजनक मतलब लगाया जाता था कि वे विदेश में युद्ध पर गए हैं। यदि चार अफसर भेजने होते तो उनमें तीन हिंदुस्तानी

और शायद एकाध ही अंग्रेज़ अफ़सर रहता। सच पूछा जाए तो यह खुल्लम-खुल्ला पक्षपात था। पर वह समय ऐसा था कि कोई भी उसके खिलाफ आवाज़ नहीं उठा सकता था और यह बात इस तरीके से की जाती थी कि कानून के विरुद्ध न जान पड़े।

फरवरी के महीने की वह ठंडी और आल्हाददायिनी प्रात थी। हम अफ़सर लोग नाश्ता कर रहे थे। इसी समय एक बैरे (नौकर) ने चाँदी की चौकोर तश्तरी में रखा हुआ एक सीलबंद लिफाफा मेरे आगे पेश किया। वह लिफाफा मोर्चे पर जाने की सूचना है, यह हम सबको मालूम हो गया था। मेरे दोनों तरफ दो गोरे अफ़सर बैठे हुए थे। उनमें एक तरुण था और दूसरा वृद्ध था। लिफाफे के बारे में चर्चा शुरू हुई और मैंने लिफाफा खोला। उसमें एक अधिकारी के नाते मुझे नीचे लिखी सूचना दी गई थी—"इस सूचना के मिलने के थोड़े ही दिनों बाद तुम्हें कुमक लेकर मोर्चे पर जाना होगा। कब निकलना होगा यह आदेश उचित समय पर दिया जायगा। यह पूर्व-सूचना है।" यह सूचना सुन लेने पर मेरी बगल में बैठा हुआ तरुण अंग्रेज़ अधिकारी बोला—"आज १३ तारीख है और ऊपर से शुक्रवार है। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।" अंग्रेज़ लोगों की जो अंध-श्रद्धाएँ हैं, उनमें तेरह की संख्या अशुभ और दिनांक १३ को शुक्रवार हो तो वह उससे भी अधिक अशुभ माना जाता है। इसी दृष्टि से उस अफ़सर ने अपनी चिंता व्यक्त की थी। मेरी दूसरी बगल में बैठे हुए वयोवृद्ध कर्नल ने उसकी बात सुनकर मुझसे कहा—"तुम कोई चिंता मत करो। ऐसे संकेतों के भी अपवाद होते हैं।" मुझे हिम्मत बँधाने के लिए ही उसने कहा होगा। मैंने धन्यवाद दिये और नाश्ता खत्म कर आगे की तैयारी में लग गया।

रणभूमि पर जाने का आदेश देनेवाले दो लिफाफे आया करते थे। उनके बारे में अत्यंत गोपनीयता रखनी पड़ती थी। घर के लोगों को या अन्य किसीको भी उसकी खबर देने की अनुमति नहीं रहती थी। हम घर जो पत्र भेजते थे उनपर भी सख्त नज़र रखी जाती थी। पर दूसरा लिफाफा मिलने से पहले छुट्टी मिल सकती थी। इस इरादे से कि दूसरा लिफाफा मिलने से पहले सातारा जाकर माताजी और पिताजी से मिल आऊँ, मैं छुट्टी माँगने कर्नल के पास गया और उसने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। छुट्टी लेकर मैं पिताजी से मिलने सातारा रवाना हुआ। इतना ही मज़मून एक कार्ड पर

लिखकर पिताजी को मैंने खबर दी कि मिलने आ रहा हूँ। पत्र के अनुसार स्टेशन पर मुझे लेने गाड़ी आई थी। मैं घर पहुँचा उस समय पिताजी ऑफिस गए हुए थे। घर के लोगों को मुझे मिली सूचना के बारे में सब हाल बताया। शाम को पिताजी के घर आने पर उनसे भी इस विषय में चर्चा की और यह भी उन्हें बताया कि दूसरा हुक्म आते ही चौबीस घंटे के भीतर मुझे मोर्चे पर कूच कर देना होगा।

पिताजी ने मेरे द्वारा बताए गए समाचार पर काफी गंभीरता से विचार किया होगा। दूसरे दिन मुझे बुलाकर वे बोले—"भाऊ, हमारा खयाल है कि तुम्हारे मोर्चे पर जाने से पहले तुम्हारा विवाह हो जाना चाहिए; कम-से-कम सगाई तो हो ही जानी चाहिए!" मैं समझ गया कि 'हमारा' का अर्थ मात्र पिताजी नहीं था; उसमें मेरी वृद्ध दादी का खयाल भी शामिल था। मेरी दादी की उम्र काफी हो गई थी इसलिए अपने नातियों को अपनी आँखों विवाहित देखने की प्रबल इच्छा होना स्वाभाविक ही था। परंतु मैंने पिताजी से कहा कि रणभूमि पर जानेवाला मनुष्य वापिस आएगा या नहीं, और आया भी तो किस जख्मी हालत में आएगा इसका कोई ठिकाना नहीं। ऐसी अनिश्चित स्थिति में विवाह अथवा सगाई करना कम-से-कम मुझे तो अविचार-सा लगता है। मेरी बात पिताजी को जँच गई और फिर उन्होंने भी कोई आग्रह नहीं किया।

अगले तीन-चार दिनों में पिताजी ने एक दिन अपने एक स्वप्न के बारे में बताया। हमारे कुलदेवता लक्ष्मी और केशव एक रथ में बैठकर आकाश से जा रहे थे और आशीर्वाद दे रहे थे कि "घबड़ाओ मत, सब कुछ ठीक होगा।" यह उन्होंने स्वप्न में देखा था। इस शुभ स्वप्न का ज़िक्र कर वे बोले—"भाऊ, कुछ भी हो, पर मुझे विश्वास है कि तुम युद्ध से कुशलपूर्वक लौट आओगे। लक्ष्मी-केशव का आशीर्वाद है तुम्हें। वे तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

तीन-चार दिन सातारा में रहकर मैं बेलगाँव लौट गया। थोड़े ही दिनों में याने पहला लिफाफा मिलने के तीन सप्ताह बाद ८ मार्च १९४२ को दूसरा लिफाफा मुझे मिला। २४ घंटे के भीतर मोर्चे पर कूच करना था। किस रणभूमि पर जाना है, कब जाना है, यह सब जहाज़ पर चढ़ने के बाद मालूम होनेवाला था। मुझे ८०० सैनिक लेकर स्पेशल ट्रेन से पहले बंबई जाना था। उस गाड़ी का पूरा नियंत्रण मेरे ज़िम्मे था। छावनी से स्टेशन तक

आठ सौ सैनिक और मैं फौजी तरीके से मार्च करते हुए गए। आगे फौजी बैंड बज रहा था। हर सैनिक के गले में हार था। मेरे गले में तो उनके द्वारा पहनाए गए हारों का एक भारी वज़न ही हो गया था। परंतु उनके प्रेम के अनुग्रह के कारण मुझे उन सब हारों को पहनना ही पड़ा था।

हम बेलगाँव स्टेशन पहुँचे। सारा स्टेशन स्त्री-पुरुषों और बच्चों से भर गया था। सैनिकों से मिलने और उन्हें विदा कराने उनके रिश्तेदार, स्त्रियाँ और बच्चे, मित्र आदि सभी आए थे। कहीं कोई भाई अपने भाई का हाथ अपने हाथ में लिए उससे विदा ले रहा था; कहीं कोई स्नेहशील पिता आँसू भरी आँखों से रणभूमि पर जानेवाले अपने बेटे को आशीर्वाद दे रहा था। और कहीं किसी कोने में गर्दन झुकाए अपने पति के सामने खड़ी हुई हलदी-चढ़ी नई नवेली दुलहिन आँखों के पानी को रोकने में निष्फल हो रही थी। विदा लेनेवाले सैनिकों को नहीं मालूम था कि कहाँ जाना है और विदा देनेवालों को यह भी नहीं मालूम था कि अपने से विदा लेकर जा रहा सैनिक फिर हमें दीखेगा भी या नहीं।

विदा देनेवालों को वहीं छोड़कर हमारी गाड़ी स्टेशन से चल पड़ी। मैंने घर पिताजी को पहले ही खत से खबर दे दी थी कि १० मार्च को वे मुझसे मिलने कोरेगाँव-रोड-स्टेशन पर आ जाएँ, पर आते वक्त सब लोग अपने दिल को मज़बूत करके आएँ। हमारी गाड़ी कोरेगाँव-रोड सुबह १० बजे पहुँची। मैं प्लेटफॉर्म पर उतरा। वहाँ मुझे बताया गया कि मेरे पिताजी आए हैं, परंतु कुछ बीमार होने के कारण स्टेशन के बाहर मोटर में ही बैठे हैं। हमारी गाड़ी कोरेगाँव आध घंटा रुकनेवाली थी। मैं स्टेशन के बाहर जाकर पिताजी से मिला। मेरी माँ और दादी भी उनके साथ थीं। पिताजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उन्हें थोड़ा ज्वर था। फ्लू जैसी ही कुछ तकलीफ रही होगी। यों, बीमारी कोई बड़ी गंभीर नहीं थी, फिर भी उन्हें रक्तचाप की बीमारी होने के कारण डाक्टरों ने उनसे कह दिया था कि मिलने के लिए जाने का कष्ट न करो तो अच्छा हो। मेरी माँ और दादी भी उन्हें घर ही रहने का आग्रह कर रही थीं। परंतु पिताजी से बिना आए रहा नहीं गया। उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या मैं बंबई चलूँ?" मैंने उनसे कहा कि वहाँ हमारी गाड़ी सीधी बंदरगाह के भीतर जाकर रुकेगी और वहाँ किसी भी असैनिक व्यक्ति को प्रवेश नहीं मिलेगा। इसलिए पहले तो वहाँ जाने का कष्ट

उठाएँ और बाद में निराश हों, इससे तो न जाना ही अच्छा। धीरे-धीरे गाड़ी खुलने का वक्त आया। मैंने पिताजी, माताजी और दादीजी के चरण छुए। पिताजी ने मेरी ओर आँख भरकर देखा और उस बीमारी की हालत में ही मुझे विदा दी, आशीर्वाद दिया। मैं गाड़ी में बैठ गया। माता-पिता और दादी के आशीर्वाद का छत्र सिर पर धारण किए मैं दूर देश की अज्ञात समरभूमि में युद्ध के लिए रवाना हुआ। मन भारी हो गया था, भर आया था, परंतु उसी समय वह रणभूमि के पराक्रम के चित्र भी रँग रहा था। मैं विचारों में खोया हुआ था कि गाड़ी ने कोरेगाँव स्टेशन छोड़ा।

पूना के स्टेशन पर हमारी गाड़ी शाम को पहुँची। मेरी छोटी बहन श्रीमती बेबी और बहनोई श्री मोहिते मुझसे मिलने आए थे। मैंने उनके घर जाकर खाना खाया और आधी रात के करीब वापिस स्टेशन आया। रात १ बजे पूना से निकलकर हम सुबह बंबई पहुँचे। गाड़ी सीधी एलैक्ज़ैन्ड्रा डॉक में जाकर रुकी।

बंदरगाह में आने के बाद मैंने अपने साथ के सैनिकों की गिनती की। जहाज़ सैनिकों को ले जाने के लिए तैयार था। हमारे ८०० सैनिकों के अतिरिक्त कुछ और सैनिक पहले से ही आए हुए थे और कुछ आ रहे थे। सैनिक और उनका सामान ले जाने के लिए जहाज़ बंदरगाह पर बहुत देर तक खड़ा था। इसके बाद समुद्र में एक मील जाकर जहाज़ ने लंगर डाला। वहाँ उसमें कोयला आदि भरा जा रहा था। दूसरे दिन, १२ मार्च को, दोपहर ठीक ४ बजे जहाज़ ने बंदरगाह छोड़ा। वह धीरे-धीरे किनारे से दूर जाने लगा। किनारा धुँधला-सा दीखने लगा। हमारा जहाज़ समुद्र में चलने लगा। हम सब लोग डेक पर खड़े होकर अस्पष्ट-सी होती जा रही मातृभूमि की ओर देखते रहे। मन उदास हो आया। क्या पता, पुनः हमारे पैर इस भूमि से लगते भी हैं या नहीं। यह भी नहीं जानते कि जहाज़ कहाँ ले जा रहा है। हममेंसे कोई भी नहीं जानता था। सफेद घोड़े पर सवार होकर, सफर पर निकले कहानी के किसी राजकुमार की तरह सात समन्दर, सात पहाड़ों के उस पार—पर ठीक कहाँ, इसका किसी को भी पता नहीं था। अथाह सागर को चीरते हुए बढ़े जा रहे थे हम लोग किसी अज्ञात मंज़िल की तरफ़, जो उतनी ही गूढ़ थी जितना मेरा भविष्य।

## ४

# मेरे मनोबल की परीक्षा

*मार्च-अप्रैल १९४१*

स्० एस्० इस्लामिया जहाज़ से हमारा सफर शुरू हुआ। सफर शुरू हो जाने के बाद दूसरे ही दिन जहाज़ के नोटिस-बोर्ड पर लगी सूचना से हमें पता चला कि हम अदन जा रहे हैं और इससे समझ गए कि हमें [illegible] की रणभूमि में भेजा जा रहा है।

युद्ध के दिनों में फौजों को ले जानेवाले जहाज़ [illegible] के लिए बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती थी। शाम को सूर्यास्त [illegible] निकलने के बाद एक घंटे तक किसी भी प्रकार की [illegible] दे सकती थी। सख्त हुक्म था कि न बीड़ी-सिगरेट [illegible] एक तीली तक जला सकते हैं। हम लोग [illegible] कि समुद्र पर यदि किसी चीज़ का छोर तक [illegible] मील के फासले तक बराबर दिखाई पड़ते हैं [illegible] वह अच्छा साधन हो जाता है। [illegible]

जहाज़ पर हमारा दैनिक [illegible] जवानों की जाँच करना, कोई [illegible] भेजना, उसके खाने-पीने का [illegible]

[illegible]

में करता था। हम सैनिक अधिकारी नाश्ता और भोजन करने के वक्त एकत्र होते थे। ताश खेलना, गप्पें लगाना और डेक पर घूमना हमारा निश्चित कार्यक्रम रहता था। सैनिकों के कार्यक्रम में रोज़ कवायद और बारूद-गोला तथा हथियारों पर कड़ा पहरा रखना, ये काम रहते थे।

ऊपर नीले आकाश और नीचे अथाह पानी के बीच हम सफर करते-करते अंत में अदन पहुँचे। ६-७ दिनों के बाद जब धरती दिखाई पड़ती है तो कैसा लगता है यह वे नहीं जान सकते जिन्होंने जलयात्रा कभी की ही नहीं। हमारा जहाज़ बंदरगाह से कुछ फासले पर खड़ा था। पानी, कोयला आदि भरा जा रहा था। हम डेक पर खड़े-खड़े अदन शहर देख रहे थे। अदन शिमला की तरह एक काली ऊँची शिला के उतार पर बसा है। खपरैलों से ढके सफेद मकान दीख रहे थे। शहर चाहे बहुत बड़ा न हो फिर भी फौजी हलचलों का मर्म-स्थल होने के कारण उसका असाधारण महत्त्व माना जाता है। लालसागर और भूमध्यसागर की ओर जानेवाले मार्ग पर अंग्रेज़ों ने यह चौकी बसाई है। जहाँ अरबसागर और लालसागर का संगम होता है, वह स्थान अत्यंत सँकरा है। वहाँ से गुज़रते समय हमारा जहाज़ बहुत हिल रहा था। यह स्थान पार कर स्वेज़ नहर तक पहुँचते-पहुँचते तीन-चार दिन लग गए थे; और हमारा जहाज़ भी बहुत धीरे-धीरे चल रहा था। स्वेज़ की नहर सँकरी होने के कारण उसमें से एक समय दो ही जहाज़ आ-जा सकते थे। नहर के दोनों किनारों पर खड़े मनुष्य और जानवर स्पष्ट दीख रहे थे। बीच ही में कोई अरब अथवा ऊँची गर्दन मोड़कर जहाज़ की ओर कुतूहल से देखनेवाला उसका ऊँट दीख पड़ता। नहर के दोनों किनारे पक्के बँधे हुए थे। नहर धीरे-धीरे गावदुम होती गई थी। आखिर हम दूसरे छोर पर याने जहाँ से भूमध्यसागर शुरू होता है, पोर्ट सईद जा पहुँचे। एशिया खंड के पश्चिमी किनारे पर है अदन और अफ्रीका के पूर्वी किनारे पर है पोर्ट सईद। यहाँ हमारे जहाज़ ने बंदरगाह के भीतर लंगर डाला।

लालसागर में प्रवेश करने के बाद से ही हमें ऐसे दृश्य दिखने लगे थे कि महसूस होने लगा था कि हम रणभूमि के निकट आ गए हैं। फौजी गाड़ियाँ, सैनिक, उनके भिन्न-भिन्न प्रकार के हथियार यह सब हमें नज़र आ रहे थे। पोर्ट सईद में हमारे स्वागत के लिए कितने ही भारतीय सैनिक

और अधिकारी आए थे। हमें देखकर उन्हें बड़ी खुशी हुई क्योंकि हम हाल ही में भारत से, मातृभूमि से, आ रहे थे। हमारी चाय और नाश्ते का इंतज़ाम बंदरगाह में किया गया था। बंदरगाह में उतरते ही हमारे साथ जितने सैनिक आए थे, उनकी संख्या हमने रजिस्टर में दर्ज़ की तथा अन्य कागज़ात की खानापूरी की। फिर हम लोगों ने खाना खाया। खाने के बाद जहाज़ से अपना सब सामान उतारकर कैरो जानेवाली रेलगाड़ी में चढ़ाने का महत्त्वपूर्ण काम था। वहाँ की सेना के कुछ सैनिक और हमारे कुछ सैनिक, दोनों ने मिलकर यह काम शुरू किया। इस काम के समाप्त होते-होते शाम के चार-साढ़े चार बज गए।

हमें कैरो ले जानेवाली रेलगाड़ी शाम ५-३० को खुली। सफ़र में दोनों तरफ़ दूर तक मरुभूमि ही नज़र आ रही थी। बीच ही में कभी ऊँटों का काफ़िला और उसके साथ अरब मुसाफिर दिख जाते। कैरो से करीब पहले ५० मील तक न कहीं गाँव दिखा और न संस्कृति के चिह्न ही दिखाई दिए। जब कैरो सिर्फ़ ५० मील रह गया तब अलबत्ता बड़े-बड़े गाँव दिखने लगे। उन गाँवों में इस्लामी संस्कृति के स्त्री-पुरुष दिखते थे। पुरुषों की पोशाक थी, सिर पर लाल तुर्की टोपी, बदन में मुसलमानी ढंग के ढीले कपड़े और पैरों में जूते। स्त्रियाँ संपूर्ण जिस्म ढक देनेवाले बुरके में बंद थीं। पर, इस बुरके में ऐसी योजना होती कि जिससे आँखें और नाक खुली रहे।

इन गाँवों को पीछे छोड़कर अंत में हमारी गाड़ी जब कैरो स्टेशन पहुँची तब अँधेरा हो गया था। कैरो में ब्लैक आउट होने के कारण रात के उस अंधकार में शहर के विस्तार की हम कोई कल्पना न कर सके। पोर्ट सईद की तरह यहाँ भी स्टेशन पर हमें लेने के लिए जो लोग आए थे उनमें हिंदुस्तानी अफसरों के साथ ब्रिटिश अफसर भी थे। स्टेशन पर उन्होंने हमारे चाय-नाश्ते का प्रबंध किया था। इसके बाद गाड़ी से सारा सामान निकालकर ट्रकों में चढ़ाने का मेहनत और समय लेनेवाला काम फिर एक मर्तबा पूरा हुआ। बाद में कैरो से १२ मील, मीना छावनी (कैम्प) में पहुँचने के बाद हमने खाना खाया और रात के आराम के लिए अपने-अपने खेमों में चल दिए।

मीना कैम्प का स्वरूप संमिश्र था। पिरामिड के नीचे मिस्र पर राज्य करनेवाले अंग्रेज़ों की एक छावनी थी ही। उसी छावनी से जोड़कर हमारा

यह मीना कैम्प खड़ा कर दिया गया था। पहले की बनी बैरकों में पानी और बिजली का सुभीता था। छावनी खेमों की थी। छोटे-बड़े सैकड़ों खेमे खड़े थे जिन में अफसर और सैनिक अपने-अपने ठाठ के अनुसार रहते थे। शहर में रास्तों को जिस प्रकार नाम दिए जाते हैं, उसी तरह मीना कैम्प में भी 'मराठा लाइन,' 'राजपूत लाइन' 'पंजाब लाइन' आदि नाम दिए गए थे। अधिकारियों और सैनिकों के खेमों की रचना में थोड़ा फर्क था। अधिकारियों के खेमे रास्ते की सतह से नीचे ढाई तीन फुट खोदकर पक्के चबूतरे बनाकर उनपर खड़े किए गए थे। बमवर्षा से सुरक्षित रहने के लिए यह सावधानी बरती गई थी। सैनिकों की सुरक्षा के लिए उनके खेमों के नज़दीक खंदक खोद दिए गए थे जिससे खतरे के समय वे झटपट आश्रय ले सकें। हमारे खेमों की ज़मीन सीमेंट से प्लास्टर करके अधिक सुखदायी कर दी गई थी।

बेलगाँव की तरह मीना कैम्प में भी हमारा जीवन संपूर्ण रूप से फौजी ढंग का ही था। सुबह निश्चित समय पर उठने के बाद रोज़ की परेड लेना और अपने मातहत सैनिकों को किस्म-किस्म की रेगिस्तानी लड़ाई के ढंग सिखाना। ये काम मुझे करने पड़ते थे। एक और महत्त्वपूर्ण काम हमारे ज़िम्मे था। गोला-बारूदके गुदाम, हथियार रखने की जगह और कैरो शहर में लड़ाई की दृष्टि से कुछ बड़े मौके के स्थान, इन सब जगहों पर प्रहरी तैनात थे। हमें आधी रात के बाद उन-उन स्थानों पर जाकर प्रहरियों की जाँच (चैकिंग ऑफ दि गार्ड्स) करनी पड़ती थी। मीना कैंप से चलकर इस काम के लिए हमें रात को कैरो शहर में जाकर लौटना पड़ता था।

मीना कैम्प में मुझे मेरे एक पुराने मित्र मिल गए। देवास के तत्कालीन महाराज और कोल्हापुर के वर्तमानकालीन छत्रपति महाराज विक्रमसिंह से महू की छावनी में सहपाठी के नाते मेरा परिचय था। वे पहली ही टुकड़ी के साथ अफ्रीका आ पहुँचे थे। इस बात को अब एक वर्ष हो गया था। आज हम फिर एकत्र हो गए थे। जैसे-जैसे हमारा सहवास बढ़ने लगा, वैसे-वैसे मुझे एक बात की चिंता सताने लगी। विक्रमसिंह बहुत ज्यादा शराब पीने लगे थे। अंत में एक दिन मैंने उनसे इस विषय में बातें कीं और हम दोनों के बीच जो स्नेह था उसका आवाहन करके मैंने उन्हें अपना एक विचार बताया। मैंने उनके लिए एक परिमाण निश्चित कर दिया और शर्त रखी

महाराज विक्रमसिंह

कि यदि उससे अधिक शराब उन्होंने पी तो निश्चित परिमाण के बाद के हर पेग के लिए वे मुझे दण्ड के रूप में ५ पौंड देंगे। उन्होंने भी शर्त कुछ यों मंजूर कर ली कि जैसे चुनौती हो। इस एक ही बात से हम दोनों एक-दूसरे के बहुत ही निकट आ गए। इसके बाद एक बार ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ जब हम दोनों ही कसौटी पर कसे गए। उस प्रसंग की छाप मेरे मन पर दीर्घ काल तक रही—नहीं, आज भी वह कायम है।

लड़ाई के मोर्चे पर के हमारे मुख्य अधिकारी कर्नल लेंकेस्टर मीना कैम्प के नज़दीक स्थित मीना होटल में आए थे। कर्नलसाहब हम दोनों से उम्र में काफी बड़े थे। विक्रमसिंह पहले आ चुके थे, इस कारण उनका कर्नलसाहब से मेरी अपेक्षा अधिक परिचय था। उन्होंने विक्रमसिंह को रात को अपने

कर्नल लैंकेस्टर

साथ होटल में खाना खाने का निमंत्रण भेजा और खबर दी कि सालवी को भी साथ ले आना। तदनुसार हम दोनों शाम को मीना होटल गए।

हमारा स्वागत करने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा—"तुम क्या पियोगे?" मैंने उनसे कहा—"मैं शरबत लूँगा।" उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले—"नॉनसेन्स! पागल हो! मैं पूछ रहा हूँ ब्रैंडी, विस्की या जिन, इनमें से क्या लोगे?" मैंने उनसे विनम्रतापूर्वक किंतु निश्चयात्मक स्वर में कहा—"सर, मैं शराब नहीं पीता और न कभी पिऊँगा।" उनका आश्चर्य अब बहुत अधिक बढ़ गया। "अजी, तुम लड़ाई पर आए हो न?"—वे बोले—"फिर बिना 'मराठा पेग' लिए लड़ोगे कैसे?" (मराठा पेग याने साधारण माप के पेग का तिगुना!) मैंने जब पुनः इंकार किया तो वे विक्रमसिंह से बोले—"विक्रम, तुमने अभी

तक इसे मराठा पेग लेना नहीं सिखाया ? छि! छि! ऐसे काम नहीं चलेगा।" परंतु विक्रमसिंह ने उन्हें आश्चर्य का एक धक्का और दिया। उन्होंने स्वयं तो मराठा पेग लिया ही नहीं पर दो पेग पी लेने के बाद अधिक पीने से इंकार तक कर दिया। कर्नलसाहब का आश्चर्य अब तो चरम सीमा पर पहुँच गया था। उन्होंने विक्रमसिंह से इसका कारण पूछा तब विक्रमसिंह ने हम दोनों की शर्त बताई और बोले-"अगर एक पेग और लूँगा तो मैं सालवी का ५ पौंड का देनदार हो जाऊँगा।" कर्नलसाहब मुझसे बोले-"विक्रम को एक पेग और ले लेने दो।" मैंने विक्रमसिंह को एक पेग और लेने की इजाज़त दे दी।

भोजन के बाद कर्नलसाहब ने मेरा हार्दिक अभिनंदन किया। बोले-"मुझे तुम पर गर्व है, सालवी। अपने वरिष्ठ अफसर के शराब पीने का आग्रह करने पर-उसके करीब-करीब आज्ञा देने पर भी उसे न माननेवाले तुम पहले ही भारतीय अफसर हो। मैं तुम्हारे मनोबल की सराहना करता हूँ। इसी तरह अपने निश्चय पर तुम अटल रहो। मेरी शुभेच्छाएँ तुम्हारे साथ हैं। मेरा अनुभव रहा है कि कितने ही भारतीय अधिकारी अपने वरिष्ठों को खुश करने के लिए इस व्यसन में पड़ जाते हैं और बाद में अपने आपको अयोग्य बना लेते हैं।"

जाने से पहले कर्नलसाहब ने मुझे नज़दीक बुलाया और मेरे कंधे पर से मेरे गले में बाँह डालकर मुझसे पूछा—"तुम मोर्चे पर कब जाओगे?" मैंने उनसे कहा—"आपका हुक्म पाते ही मैं रवाना हो जाऊँगा।" हम दोनों ने उन्हें फौजी अभिवादन किया और वे चल दिए। अगली घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि उनका वह प्रश्न और मेरा उत्तर मेरे मोर्चे पर जाने की प्रस्तावना ही थी।

कर्नलसाहब चल दिए और विक्रमसिंह और मैं, दोनों वहाँ से लौटे। विक्रमसिंह बोले—"क्यों सालवी, तुम क्या यह समझ रहे थे कि मैं अपने निश्चय से टल जाऊँगा? देख लिया न?" मैंने भी बड़े आनंद से उनकी मनोविजय स्वीकार की। सच पूछा जाए तो पाँच क्या, प्रत्येक पेग के लिए पचास पौंड देकर भी विक्रमसिंह अधिक शराब पी सकते थे पर उन्होंने वैसा नहीं किया। रणभूमि की तरह मनोभूमि पर भी एक शूर सैनिक की तरह उन्होंने बर्ताव किया। वे व्यसनाधीन नहीं हुए, उलटे व्यसन को ही उन्होंने अपने अधीन कर लिया था। मैंने उनका हार्दिक अभिनंदन किया। उन्हें भी मुझपर अभिमान हो रहा था क्योंकि मैं भी अपने निश्चय पर अटल रहा था। इस खुशी में ही गप्पें लड़ाते हुए हम लोग अपनी छावनी लौट आए।

# ५

# पिताजी का स्वर्गवास और तत्पश्चात

*अप्रैल–जून १९४२*

क्रमसिंह जैसे एक अज़ीज़ दोस्त के साथ मीना कैम्प में दिन मज़े में गुज़र रहे थे। एक दिन वे मुझे घुड़-दौड़ देखने के लिए कैरो ले गए। उस घुड़-दौड़ में उत्तम जाति के अरबी घोड़े दौड़ रहे थे। अपने जीवन में मैं प्रथम बार ही घुड़-दौड़ देख रहा था। परंतु वहाँ जाते वक्त विक्रमसिंह ने पहले से ही बता दिया था–"तुम सिर्फ घुड़-दौड़ देखोगे। दाँव नहीं लगाओगे। दाँव लगाएँगे हम।" तदनुसार मैं एक बालक की उत्सुकता से सिर्फ यही देख रहा था कि कौनसा घोड़ा सबसे आगे दौड़ता है। किसी भी घोड़े पर मैंने दाँव नहीं लगाया था। इसलिए अन्य लोगों की तरह मुझे किसी भी खास घोड़े के प्रति विशेष दिलचस्पी रहने का कोई कारण नहीं था। विक्रमसिंह घुड़-दौड़ की होड़ की कुछ खूबियाँ मुझे बता रहे थे। आसपास के दर्शकों को देखने से ऐसा लग रहा था जैसे कोई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ही हो। फौजी अफसर, मिस्र के संभ्रान्त घरों के स्त्री-पुरुष, साधारण मिस्री आदि अनेक किस्म के लोग उस समुदाय में थे। जहाँ देखिए वहाँ काले फुनगोंवाली लाल तुर्की टोपियाँ नज़र आ रही थीं। ऑस्ट्रेलियन, न्यूज़ीलैन्डर्स, मिस्री, हिंदुस्तानी, इन सबकी अलग-अलग फौजी

वर्दियाँ दिख रही थीं। आशा, निराशा, उत्साह, अपेक्षा-भंग, इन सारी भावनाओं के बादल उस समुदाय पर साया डालकर जल्दी-जल्दी दौड़ रहे थे। परंतु उत्सुकता सभीके चेहरों पर एक समान नाच रही थी। यह सारा मेला जिस स्थान पर लगा था उससे थोड़ी ही दूर रणभूमि थी जो दिन-रात तोपों के गोलों और बमों के धमाकों से काँप रही थी। यद्यपि इसका खयाल वहाँ एकत्र हुए उस रंगबिरंगे समुदाय के लोगों के चेहरों पर कम-से-कम उस समय नहीं रहा था फिर भी वह उन सभी के मनों में अलबत्ता जाग रहा था। अत्यंत निराशा और दुख के समय भी आनंद लूटने के लिए हो रही इस कोशिश को देखकर मनुष्य स्वभाव पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं जब-जब विक्रमसिंह के स्वभाव पर विचार करता हूँ, तब-तब मुझे एहसास हुआ है कि मित्रता को ईमानदारी से निभानेवाले उस दिल्दार सैनिक को हृदय से लगता था कि वह अपने मित्र को भी अपने आनंद में शरीक करे। शराब मैं छूता तक नहीं था; इसलिए वे चाहते थे कि मैं कम-से-कम उनके दूसरे शौक का मज़ा तो लूटूँ—पर सिर्फ मज़ा ही। उन्होंने पूरी सावधानी बरती थी कि मेरी आर्थिक हानि न हो इसीलिए उन्होंने मुझे घुड़-दौड़ सिर्फ देखने भर को कहा था और दाँव लगाने की मनाही कर दी थी। स्वयं विक्रमसिंह ने उस होड़ में पैसे नहीं खोए इतना मुझे निश्चित याद है। होड़ समाप्त होने पर शाम को हम मीना कैम्प लौट आए।

फौजी छावनी का वह जीवन यद्यपि ऊपर-ऊपर से मज़ेदार और निश्चित-सा लगता था, फिर भी प्रत्येक सैनिक और अधिकारी को हमेशा अत्यंत सतर्क और सावधान रहना पड़ता था। हमारी हलचलों का पता लगाने के लिए शत्रु की तरफ से अनेक उपाय काम में लाए जाते थे। हमें हमेशा के लिए एक पुख्ता इशारा दे दिया गया था कि हम जब किसी से कोई बात करें तो बात शुरू करने से पहले हमें अपने आगे-पीछे और आसपास ठीक से देख लेना चाहिए कि कौन खड़ा है और इसके बाद ही बोलना चाहिए। अनेक बार जानकारी प्राप्त करने के लिए स्त्रियों का भी उपयोग किया जाता था। जो सैनिक अपना देश, घर-द्वार, स्त्री-बच्चे छोड़कर रणभूमि जाते हैं, उन्हें यदि स्त्री के प्रति ज़बरदस्त आकर्षण लगे तो आश्चर्य क्या! पहले मामूली परिचय, बाद में शराब, और शराब के हेतुपूर्ण अतिरेक से बेहोशी की हालत में बकझक—इस तरीके से शत्रु जानकारी प्राप्त करने का प्रयास जारी रखता।

फौजी छावनी का जीवन जैसा बाहर से लगता है, उतना सीधा और सरल नहीं। हर छावनी के जवानों और अधिकारियों के शील और हिम्मत पर आखिरी फैसला निर्भर करता है। इस दृष्टि से फौजी अफसरों की ज़िम्मेदारी बड़ी उलझनभरी और महत्त्वपूर्ण होती है।

इस तरह हमारा दैनिक कार्य-क्रम चल रहा था। हमारी डाक सुबह नौ बजे के लगभग हमें मिला करती थी। अप्रैल के अंतिम सप्ताह में मुझे पहला पत्र मिला। पत्र मेरे बहनोई श्री मोहितेजी का था। मैंने लिफाफा खोला और पत्र पढ़ने लगा। पत्र पढ़कर मैं सन्न हो गया। ऐसा कुछ हो जाएगा इसकी मुझे स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी। पहले तो मुझे पत्र के उन अक्षरों पर विश्वास ही नहीं हो पा रहा था। पत्र में तारीख १२ मार्च को, दोपहर ४ बजे, मेरे परमप्रिय पिताजी का सातारा में, उनके घर में देहान्त हो जाने का समाचार था। मैंने जिस दिन और जिस समय हिंदुस्तान का किनारा छोड़ा था, उसी दिन और ठीक उसी समय हृदय की धड़कन एकाएक बंद होकर मेरे पिताजी चल बसे थे, यह घटना ही धक्का देनेवाली थी। इसके दो ही दिन पहले याने १० मार्च को कोरेगाँव-रोड स्टेशन के बाहर मोटर में मेरी उनसे हुई मुलाकात मुझे याद हो आई। आज वह आखिरी मुलाकात ही साबित हुई। झलक उठा स्मृति-पटल पर पिताजी का चेहरा जो ज्वर के कारण झुँझलाया-सा हो रहा था; हाथ जो गर्म हो रहे थे और स्नेह भरी आँखें जो एकटक मुझे निहार रही थीं। याद हो आया वह सश्रद्ध स्वर जो मुझे बतला रहा था कि कुलदेवता तुम्हारे रक्षक हैं। आँख के सामने खिंच गई वह सचिंत मुद्रा से पोर्च में मेरी प्रतीक्षा में खड़ी उनकी मूर्ति। और—आज वे चल दिए थे। मैं संज्ञाशून्य हो बैठा था। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। नज़दीक के खेमे में रहनेवाले विक्रमसिंह के नौकर को मैंने पुकारा—"केशव।" वह मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मेरे विलक्षण चेहरे को देखकर वह भी कुछ न समझ पाया। मैंने पत्र उसके हाथ में दिया और कहा—"यह महाराज को दे दो।"

मेरा पत्र पढ़ते ही विक्रमसिंह मेरे खेमे में आए। उन्होंने अनेक प्रकार से मुझे सांत्वना देने का प्रयत्न किया। मेरे पास बहुत देर तक वे बैठे रहे। मुझे खाने की ज़रा भी इच्छा नहीं हो रही थी। फिर भी दोपहर को विक्रमसिंह ने काफ़ी कोशिश करके मुझे चाय पीने को मजबूर किया।

मेरी सांत्वना करते समय ही विक्रमसिंह मुझसे बोले—"साल्वी, तुम

हिंदुस्तान जाकर अपने घरवालों से मिल आओ। तुम्हें भी अच्छा लगेगा और उन्हें भी थोड़ी सांत्वना मिल जायगी। मैंने अपनी छुट्टी मंजूर करा ली है। उसे मैं रद्द करा लूँगा और तुम्हारी जगह मैं मोर्चे पर चला जाऊँगा। मेरे बदले तुम छुट्टी ले लो।" विक्रमसिंह को लड़ाई पर आए डेढ़ वर्ष हो चुका था। अपने राज्य का प्रबंध रानी साहबा के ज़िम्मे छोड़कर वे आए थे। अपने राज्य के कारोबार के बारे में और प्रजा के बारे में वे चिंतित थे ही। एक राजा के नाते अपने राज्य में जाकर वहाँ का कारोबार और अपनी प्रजा को देख आना उनका कर्तव्य ही था। ऐसी स्थिति में भी हिंदुस्तान जाने का जो अवसर उन्हें प्राप्त हुआ था, उसे वे बड़ी खुशी से बिना माँगे मुझे दे रहे थे। यह उनके उदार हृदय और सच्ची मित्रता का द्योतक था। परंतु मेरे सामने प्रश्न था कि मैं हिंदुस्तान जाकर आखिर करूँगा क्या? श्री मोहिते वहाँ थे ही और उन्होंने पत्र में लिखा भी था कि वे सब ठीक कर रहे हैं। इसलिए भी मैंने अंत में निश्चय किया कि हिंदुस्तान नहीं जाऊँगा। परंतु पिताजी की मृत्यु के बाद अपने परिवार को आर्थिक सहायता पहुँचाने का इंतज़ाम करने का निश्चय कर मैंने व्यवस्था की कि वेतन में से हर महीने दो सौ रुपए का अलॉटमेंट हिंदुस्तान में माताजी को मिले।

मन की विषण्णता, निराशा और दुख पर कुछ रोक लगने की संभावना तभी थी कि जब मुझे मोर्चे पर जाने का मौका मिलता। इसलिए विक्रमसिंह के ज़रिए इस दिशा में मैंने ज़ोरदार कोशिश शुरू की। मुझे अफ्रीका भेजा गया था मुख्यतः विक्रमसिंह को छुट्टी देने के लिए ही और उनकी छुट्टी भी मंजूर हो गई थी। अंत में हमारी कोशिशें कारगर हुईं और २००-३०० सैनिकों को लेकर मैं कर्नल लेंकेस्टर के सहायक की हैसियत से स्वेज़ नहर की रक्षा करने के काम पर रवाना हो गया। जाते समय मैंने अपने प्रिय मित्र विक्रम-सिंह से विदा ली। उन्होंने मुझे कसकर बाँहों में भर लिया और मेरे लिए शुभेच्छाएँ व्यक्त कीं।

स्वेज़ नहर के किनारे मैं मुश्किल से एक सप्ताह तक था। खबरें गरम थीं कि मेरे रेजिमेंट को शीघ्र ही ईराक के शांति-विभाग में भेजा जायगा क्योंकि अफ्रीका आकर करीब-करीब तीन वर्ष हो चुके थे और विश्राम करना हमारा हक था। यहाँ एक सप्ताह रहने के बाद मुझे तांत्रिक शिक्षा के लिए फिलस्तीन जाना पड़ा। वहाँ मुझे एम. टी. (मोटर ट्रान्सपोर्ट) कोर्स याने मोटर का यांत्रिक

शिक्षा-क्रम पढ़ना पड़ा। तेलाव्हिव नामक शहर में शिक्षा की व्यवस्था थी। इस शिक्षा-क्रम में वहाँ नियुक्त किए गए अंग्रेज़ तंत्रज्ञों से मोटर इंजिन की बनावट, उसे खोलना-जमाना, प्रत्येक भाग का कार्य आदि सब प्रकार की संपूर्ण जानकारी मुझे प्राप्त हुई। तेलाव्हिव में मैं तीन सप्ताह था।

फिलस्तीन में अपनी शिक्षा समाप्त कर मैं स्वेज़ नहर वापस आया। अपनी छावनी में आकर देखा तो सारी छावनी खाली थी! मैं कुछ भी नहीं समझ पाया। बाद में पूछताछ करने पर मुझे वहाँ के स्थानीय अफसर से पता चला कि मेरे रेजिमेंट के सभी सैनिक पहले ही मोर्चे पर रवाना हो गए हैं। जाते समय उन्होंने उस अफसर से कह दिया था कि हमारा एक अफसर आएगा तो उससे भी वहाँ जाने को कह देना। मुझे उस स्थानीय अफसर ने सन्देशा दिया और कहा कि तुम कैरो जाकर अपना हुक्म हासिल करो। तदनुसार मैं कैरो गया और वहाँ के दफ्तर में जाकर मैंने मोर्चे पर जाने का हुक्म प्राप्त किया।

कैरो में यातायात का साधन प्राप्त करने के लिए मुझे एक दिन रुक जाना पड़ा। दूसरे दिन एक कॉनव्हॉय (फौजी वाहनों का काफिला) मुझे मिला और उनमें से एक वाहन से मैं टोब्रुक के मोर्चे पर जा पहुँचा।

# ६

# रणभूमि का जीवन

जून १९४२
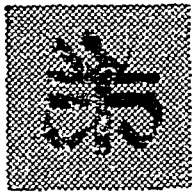
रो से टोब्रुक का सफ़र पूरा करने के लिए हमें तीन दिन लग गए। फौजी हल्चलों के लिए समुद्र किनारे के समानांतर, पर, कुछ मीलों का फ़ासला रखकर बनाई गई पक्की डामर की सड़क से हम जा रहे थे। रास्ते में तीन बड़े शहर पड़े। पहले अलेक्जेंड्रिया का बंदरगाह आया। उसके बाद सिद्दी बरानी, सोल्म और टोब्रुक इस क्रम से हम गए। यह अंतर ४५० मील से कुछ अधिक ही है। जब हम सोल्म के आसपास थे तब हमपर हवाई हमला हुआ। सौभाग्य से उसमें न कोई मरा और न जख्मी ही हुआ।

टोब्रुक भूमध्यसागर के तट पर अफ्रीका का एक छोटा-सा बंदरगाह है। कैरो और सहारा के रेगिस्तान के युद्ध की हल्चलों की दृष्टि से यह बंदरगाह अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। यदि उसपर जर्मनी का अधिकार हो जाता तो वह अपनी युद्ध-सामग्री, सैनिकों की कुमुक, गोला-बारूद और खाद्यान्न आदि समुद्र के रास्ते बड़ी आसानी से ला सकता था। इस युद्ध के खेल में टोब्रुक जैसे लाल पान का इक्का था। वह जिसके अधिकार में होता, उसे विजय पाने का अच्छा मौका मिलता इसलिए इस बंदरगाह को जर्मनी से बचाना हमारा फ़र्ज़ था। इससे पहले दो बार जर्मन और इटालियन फौजों ने टोब्रुक पर कब्ज़ा करके

कैरो की तरफ कूच करने का प्रयत्न किया था। पर दो बार हमने उन्हें खदेड़ दिया था। और अब तीसरी बार फिर वही कोशिश हो रही थी और इसी लिए हम वहाँ पहुँचे थे।

टोब्रुक को सुरक्षित रखने के लिए पूरी तैयारी की गई थी। शत्रु जिस दिशा से हमला करनेवाला था उस दिशा में पहले सुरंगें गाड़ दी गई थीं। इसके बाद एंटी टैंक ट्रेन्चेज़ (टैंक-प्रतिबंधक खंदकें) खोद कर तैयार रखी गई थीं। इन गहरी अर्धगोलाकार खंदकों पर टैंक हमला नहीं कर सकते थे। बीच में जहाँ जगह छोड़ दी थी वहाँ सुरंगें गड़ी थीं। इन खंदकों के पीछे व्यक्ति-प्रतिबंधक और टैंक-प्रतिबंधक सुरंगें गाड़ रखी थीं। इन दो प्रकार की सुरंगों में फर्क यह था कि वे नियत वज़न पड़ने पर ही फूटती थीं। टैंक-प्रतिबंधक सुरंग पर मनुष्य का पैर पड़ जाए तो वह सुरंग फूटती नहीं थी। सुरंगों का विस्फोट उनके स्प्रिंगों पर अवलंबित होता है और उनपर विशिष्ट वज़न का दबाव पड़ने पर ही वे फूटती हैं। इन सुरंगों के पीछे कान्सेंटिना वायर (कँटीले तारों की खड़ी की गई गेंडुलियाँ) लगे हुए थे।

इन तारों के पीछे पेरीमीटर याने जिस तरह के तार से अहाते को घेरते हैं उस तरह के काँटेदार तार, समानान्तर और इसके अलावा × ऐसा कट्टस बनाकर लगाए गए थे। पेरीमीटर से सुरक्षा-व्यूह शुरू होता है और वह पहली सुरंग-रेखा तक पहुँचता है। महाभारत के चक्रव्यूह, मत्स्यव्यूह के समान ही यह आधुनिक सुरक्षा-व्यूह था। इस व्यूह की हर रेखा को पार करते समय शत्रु को खतरा बना रहता है। परंतु व्यूह काटकर और पेरीमीटर तोड़कर शत्रु यदि एक बार भीतर घुस जाए तो वह सीधे आक्रमण कर सकता है।

मोर्चे पर जिन खंदकों में हम रहे थे, वे खन्दकें या डग-आउट (ज़मीन खोदकर भीतर तैयार किया गया निवास-स्थान) इटालियन सेना ने टोब्रुक की रक्षा करते समय स्वयं अपनी सुरक्षा-व्यवस्था के लिए तैयार किए थे। टोब्रुक की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी हमपर आ जाने के बाद नई खंदकें और डग-आउट बनाने के लिए हमारे पास पर्याप्त समय नहीं था। युद्ध की गति सभी तरफ बडी तेज़ थी और इसलिए हमने उसी तैयार सुरक्षा-व्यवस्था का आश्रय लिया था। वस्तुतः ऐसा करना युद्ध-शास्त्र की दृष्टि से संपूर्ण रूप से गलत था और खतरे से खाली भी नहीं था क्योंकि शत्रु को हमारे आश्रय-स्थानों की अक्षर-अक्षर जानकारी थी।
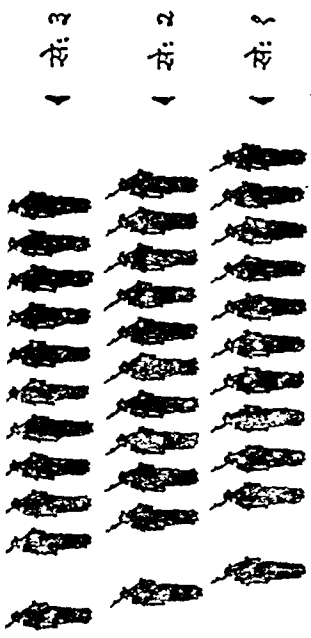
सेक्शन कमांडर
सेक्शन
से: ३
से: २
से: १
प्लॅटून
प्लॅटून कमांडर
प्लॅटून
प्लॅटून कमांडर
प्लॅटून
प्लॅटून कमांडर
प्लॅटून
प्लॅटून कमांडर
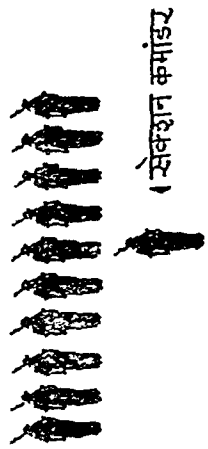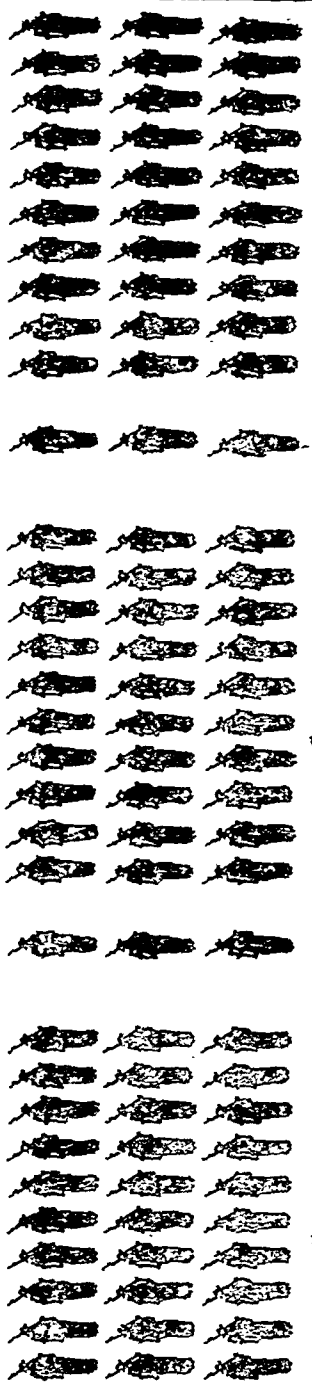
पेरीमीटर अर्ध-गोलाकार था और उसके पीछेवाली खंदकों में आश्रय लेकर सैनिक पेरीमीटर की रक्षा करते थे। इस सुरक्षा-पंक्ति के बीच में खंदक से पीछे और पंक्ति से लगा हुआ ही उस सेना का मुख्य सेनापति रहा करता। उसके सहायक अधिकारी वहीं उसके नज़दीक रहा करते। उस निवास-स्थान के पीछे करीब आध या पौन मील के फासले पर पैदल सेना और ब्रेनगन कॅरियर प्लेटून (कॅरियर याने छोटे टैंको से हमला करनेवाले सैनिकों की टोली) दो प्रकार की आरक्षित सेना रहा करती। पेरीमीटर की रक्षा करनेवाले सैनिकों को यदि किसी प्रकार कुमक की ज़रूरत होती तो वह आरक्षित विभाग से ही पहुँचाई जाती। पहले पैदल सेना और अंत में, संकटकालीन स्थिति के समय कॅरियर प्लेटून, इस तरह सहायता पहुँचाने का क्रम होता। सेना के इन सब भागों का टेलीफोन से संबंध जुड़ा रहता। इस कारण मुख्य सेनानी छावनी के सब भागों को इशारा या हुक्म दे सकता था।

इस प्रकार सुरक्षित छावनी में सेना का संगठन भी बड़ा सुव्यवस्थित रहा करता। इस संगठन की सबसे छोटी इकाई होती है सेक्शन। प्रत्येक सेक्शन में सात से ग्यारह सैनिक होते हैं। ऐसे तीन सेक्शनों का एक प्लेटून बनता है। प्रत्येक प्लेटून में २५ से ३० सैनिक होते हैं। तीन प्लेटूनों की एक कंपनी होती है। इस कंपनी में सैनिकों के अलावा न लड़नेवाले लोग भी होते हैं जो सैनिकों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रखे जाते हैं जैसे रसोइये, भिश्ती, झाडूवाले इत्यादि। इस कारण कंपनी की संख्या लड़नेवाले सैनिक और न लड़नेवाले मज़दूरों को मिलाकर गिनी जाती है। ऐसी चार कंपनियाँ और एक हेडक्वार्टर की कम्पनी मिलाकर एक बटालियन और तीन बटालियन मिलकर एक ब्रिगेड बनता है। एक ब्रिगेड में सैनिकों और मज़दूरों को मिलाकर करीब पाँच हज़ार लोग होते हैं। टोब्रुक की सुरक्षा के लिए इस तरह कुल मिलाकर तीन ब्रिगेडों का एक डिवीजन था। इनमें एक ब्रिगेड हमारा था और शेष दो दक्षिण अफ्रीकियों के थे।

मैं मोर्चे पर पहुँचा और तुरंत ही कर्नलसाहब को अपने आने की खबर दी। उन्होंने मुझे बताया कि हमारे ब्रिगेड को यहाँ थोड़े समय के लिए ही बुलाया गया है। थोड़े ही दिनों के बाद हम यहाँ से चले जाएँगे, क्योंकि हमारा ब्रिगेड पिछले तीन वर्षों से रणभूमि में था। कर्नल लेंकेस्टर ने इसी समय मुझे इस ब्रिगेड के संबंध में ध्यान में रखने योग्य एक घटना बताई। जब यह ब्रिगेड

स्वेज़ नहर में था उस समय इस ब्रिगेड के दो बटालियनों को टोब्रुक जाने की सूचना मिली और पिछले तीन वर्षों तक उसके साथ रहे तीसरे बटालियन—कॅमेरॉन्स को दूसरे ब्रिगेड से जोड़कर शान्ति-विभाग में जाने की सूचना मिली। कॅमेरॉन्स ने उस सूचना के प्रति तीव्र नापसंदगी दर्शाई। मराठा लाइट इनफॅन्ट्री और २/७ गुरखा राईफल, इन दो भारतीय बटालियनों से ये विदेशी यूरोपीय कॅमेरॉन्स कुछ इतने घुलमिल गए थे कि वे मराठों और गुरखों की भाषाएँ भी बोलने लगे थे और उन्होंने परस्पर काफी घनिष्ठ संबंध प्रस्थापित कर लिए थे। इसका विचार भी न कर कि स्वयं शांति-विभाग में जाने को मिल रहा है, उन्होंने अपने अधिकारियों से स्पष्ट कह दिया कि हम लोग पिछले तीन वर्षों से मराठों और राजपूतों के साथ एकत्र जी रहे हैं। अब हमें अगर मरना ही होगा तो हम अपने इन्हीं भाइयों के साथ मरेंगे। हमें इनसे अलग न किया जाए। प्रकट ही, उनकी बात का ख्याल रखा गया और वह ब्रिगेड ज्यों-का-त्यों टोब्रुक आया।

इस ब्रिगेड की भिन्नता में निहित एकता परस्पर-अभिवादन के भिन्न-भिन्न ढंगों से बड़ी स्पष्टतापूर्वक प्रकट होती थी। सुबह अपने डग-आउट से बाहर निकलने के बाद भिन्न-भिन्न प्रांत-वासियों के डग-आउटों के सामने जाते समय भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिवादनों का आदान-प्रदान सुनाई पड़ा करता। सिक्ख सरदार 'सत् श्री अकाल' कहकर अभिवादन करते; गुरखा जवान 'जय रामजी की' कहकर स्वागत करते। कोई परिचित जवान 'रामराम' कहता और कॅमेरॉन्स 'गुड मॉर्निंग सर' कहते; और बीच ही में किसी पंजाबी मुसल्मि जवान का 'अस्सलाम आलेकुम' कानों में पड़ जाता। इसमें भी मज़ा तब आता जब मराठा जवान सिक्ख सरदार से 'सत् श्री अकाल' कहकर अभिवादन करता और कॅमेरॉन्स गुरखों को देखकर यथासंभव स्पष्ट शब्दों में सही उच्चारण कर 'जय रामजी की' कहने की कोशिश करते।

फौजी ज़िंदगी में जवानों की, उनके अपने नागरिक जीवन की धर्म, देश, भाषा, वर्ण आदि सभी दीवारें आप-ही-आप अर्राकर गिर पड़ती हैं और उनमें परस्पर उत्पन्न हुआ प्रेम-भाव स्थायी और अटूट रहता है। केवल दो-तीन वर्ष के सहजीवन से निर्मित रिश्ते को स्थायी बनाए रखने के लिए जो अपने प्राणों की भी बाज़ी लगाने को तैयार हो गए थे, उन उदार कॅमेरॉन्स की जब याद आती है तब मन आदर से भर उठता है और विचार आता है कि

इन जवानों का आदर्श सामने रखकर, हम यदि अपने नागरिक जीवन में भी ऐसा बर्ताव करें तो भाषा और प्रान्तीयता के सारे भेद-भाव दूर हो जाएँ, और एकात्मता की यह भावना कि देश के उत्कर्ष के लिए कंधे से कंधे भिड़ाकर प्राणपण से चेष्टा करनेवाले हम सब भारतीय भाई-भाई हैं, कितनी सहजता से हममें जाग उठे।

इस छावनी में मुझे कॅरियर-प्लेट्न के अधिकारी के नाते कारोबार सँभालने का हुक्म मिला। मेरे आने से पहले एक हवालदार यह काम देखता था। उससे मैंने चार्ज लिया। रोज़ सूरज निकलने से पहले एक घंटा और सूरज डूबने से पहले एक घंटा हमें युद्धविषयक संपूर्ण वर्दी पहनकर सब हथियारों से लैस होकर तैयार रहना पड़ता था। मानो दूसरे ही क्षण लड़ाई शुरू हो जाएगी और हमें प्रतिकार करना पड़ेगा—इस तैयारी के लिए रोज़ यह कवायद करनी पड़ती थी। इसके अलावा दूसरा महत्त्वपूर्ण काम था शत्रु की टोह लगाना। एक खास जगह से निकलकर किसी खास जगह की जाँच करके नियत समय पर लौट आना, और जाँच की गई जगह से शत्रु की गतिविधियों की जानकारी लाना, इस काम का स्वरूप रहा करता। इस काम में निश्चित ही खतरा था। पर करना भी उतना ही आवश्यक था। हमारा काम सुरक्षा विषयक था। इस कारण हमला करना हमारी कक्षा में नहीं आता था।

यहाँ मैं एक पत्थर को खोदकर बनाए गए डग-आउट में रहता था। ऊपर पत्थर होने के कारण बमबारी से वह स्थान सुरक्षित था। डग-आउट में मेरे दो साथी और थे। एक का नाम था कॅप्टन लेंबर्ट और दूसरे का नाम था कॅप्टन डिरोज़िन्स्की ('डिरोज़िन्स्की' नाम बड़ा लंबा-चौड़ा होने की वजह से हमने उसका संक्षिप्त रूप 'ज़ीरो' कर लिया था।)। हमारे यहाँ पानी की बड़ी गहन समस्या थी। लड़ाई मरुभूमि में हो रही थी जहाँ पानी की बेहद कमी थी। प्रत्येक अधिकारी को हर रोज़ सिर्फ एक गॅलन पानी मिलता था। अपनी सभी ज़रूरतें हमें इसी एक गॅलन पानी से पूरी कर लेनी पड़ती थीं। हम तीनों रोज़ थोड़ा-थोड़ा पानी बचा लिया करते और उस संचित जल से तीन-तीन दिन के बाद, बारी-बारी से स्नान करते। यदि रोज़ नहाना होता तो उसके लिए खारा पानी मिल सकता था।

मोर्चे पर आए मुझे कुछ दिन हो गए थे। ता. १९ जून को कर्नल लेंकेस्टर ने मुझे बुलाकर हुक्म दिया कि आज दोपहर चार बजे यहाँ से रवाना होकर

छावनी के एक तरफ से जाकर सिदी रज़ाक में हो रही शत्रु की हलचलों की, जितने नज़दीक से संभव हो, टोह लेकर एल एडम गाँव से होते हुए कल सुबह चार बजे यहाँ लौट आओ। साथ में कॅरियर्स का एक सेक्शन ले जाओ। खबरें आ रही हैं कि शत्रु की हलचलें हमारे काफी नज़दीक हो रही हैं। फिर भी खुद जाकर सारी स्थिति का पता लगाओ। मेरी तरह केप्टन लेंवर्ट को भी टोह लेने के लिए कर्नल ने पहले ही एक दूसरी दिशा में भेज दिया था।

ऊपर लिखे आशय का हुक्म मुझे मिला। फिर भी वह ऊपर दिए गए शब्दों में नहीं था। सेना में हुक्म देने का तरीका अन्य महकमों से बहुत भिन्न होता है। वरिष्ठ अधिकारी हमें बुलाकर हुक्म देता है। वह जो कुछ कहता है वह हमें नोट कर लेना पड़ता है। हुक्म की मदें निश्चित रहती हैं। मुझे कर्नल ने जो हुक्म दिया उसे मैंने नीचे लिखे अनुसार नोट किया था:

| | |
|---|---|
| **Information** . Enemy suspected digging in at Sidi Razak. Enemy strength not known. | जानकारी : सिदी रज़ाक में शत्रु खाइयाँ खोद रहे होंगे ऐसा शक है। शत्रु की सेना कितनी है इसका पता नहीं। |
| **Object** : Reconnaissance. Enemy movements at and about Sidi Razak. | उद्देश्य : टोह। सिदी रज़ाक और उसके आसपास हो रही शत्रु की हलचलें। |
| **Orders** : You will go & get information on following points:—(i) Enemy movements (ii) Enem tiength (iii) Enemy position. You will carry one section of Carriers with you. | हुक्म : जाकर नीचे लिखे विषयों की जानकारी प्राप्त करना। (१) शत्रु की हलचलें (२) शत्रु की संख्या (३) शत्रु का स्थान। साथ में कॅरियर का एक सेक्शन ले जाना। |
| **Route** : Our position–Perimeter Gate–Sidi Razak–Return via El–Adam. | रास्ता : हमारी छावनी–पेरीमीटर द्वार–सिदी रज़ाक; एल एडम होकर वापिस। |
| **Time of Departure** : 1600 Hrs. | निकलने का समय : दोपहर चार बजे। |
| **Time of Arrival** : 0400 Hrs. | वापिस आने का समय : सुबह चार बजे। |
| **Time** | समय |

वरिष्ठ के 'टाइम' कहते ही उसकी घड़ी के अनुसार हमें अपनी घड़ी मिला लेनी पड़ती है। हुक्म देनेवाला अधिकारी स्वयं अपनी घड़ी का टाइम बता देता है। घड़ी देखकर जहाँ उसने Now (अभी) कहा कि फौरन उसके टाइम से हमें अपनी घड़ी मिलानी पड़ती है। उसके अनुसार कर्नल के टाइम कहते ही मैंने अपनी घड़ी का टाइम उनके टाइम के मुताबिक (1430 Hours) दोपहर के ढाई कर लिया।

यह सब हो जाने पर वरिष्ठ को सलाम ठोंककर उसके पास से चल देना होता है। हुक्म देने का यह तरीका निश्चित और संक्षित होता है। उस हुक्म के अंत में कोई सवाल पूछा जा सकता है। पर प्रायः प्रश्न करने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। यह हुक्म केवल एक अधिकारी के लिए ही नहीं होता बल्कि उस अधिकारी को अपने मातहत अधिकारियों को उस हुक्म की जानकारी करा देनी पड़ती है और उन मातहतों को अपने मातहत लोगों से भी वह हुक्म कह देना पड़ता है। हममें से कोई दुर्घटना का शिकार हो जाए या किसीकी मृत्यु हो जाए तो आगे क्या करना है, इसकी जानकारी प्रत्येक को होती है। काम किसी भी हालत में रुकता नहीं। आखिरी आदमी और आखिरी गोली (The last man and the last round) खत्म होने तक हुक्म की तामीली जारी रहती है। यह सब इंतज़ाम कर मैं निश्चित समय पर अपने काम पर निकला।

## ७

## टोह

जून १९४२
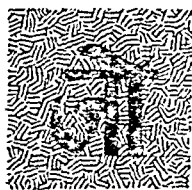
हुक्म मुझे मिला था उसकी तामीली करने के लिए मैं दोपहर ठीक चार बजे तीन अलग कॅरियर्स साथ लेकर निकल पड़ा। साथ में मैंने अपना कॅरियर भी ले लिया। मेरा कॅरियर सब से आगे और उसके पीछे एक कतार में तीन कॅरियर्स, इस तरह हम पेरीमीटर के दरवाज़े तक गए।

कॅरियर का इंजिन कॅरियर के अगले भाग में नहीं, बल्कि पिछले हिस्से में होता है। कॅरियर में ड्राइवर के पास ही, इंजिन तक ठीक से पहुँचनेवाला चार फुट लम्बा एक हॅण्डिल रखा रहता है। हॅण्डिल की सहायता से दो-तीन बार काफी ज़ोर से झटका देने पर कॅरियर का इंजिन स्टार्ट होता है। कॅरियर में कुल मिलाकर पाँच आदमी होते हैं। सामने के हिस्से में ड्राइवर और कॅरियर कमांडर बैठते हैं। पिछले हिस्से में एक एल. एम. जी. (लाइट मशीन गनर) और उसके दो सहायक बैठते हैं जो गनर को गोलियाँ देते जाते हैं और उसके जख्मी हो जाने पर अथवा उसकी मृत्यु हो जाने पर दोनों सहायकों में से एक तुरंत ही उसका स्थान ले लेता है। इन पाँचों को कॅरियर चलाने से लेकर गोलीवर्षा करने तक हर बात की जानकारी होती है।

अधिकारी के हुक्म के साथ एक और महत्त्वपूर्ण बात मुझे बता दी गई थी।

वह था 'संकेत-शब्द' (पासवर्ड)। शाम को अँधेरा हो जाने के बाद अपना परिचय देने के लिए प्रत्येक को संकेत-शब्द मालूम होना चाहिए। संकेत-शब्द बार-बार बदलता रहता है। कभी किसी फूल या फल का नाम अथवा इसी तरह का कोई शब्द संकेत के लिए तय कर लिया जाता है। ये शब्द चाहे साधारण हों पर उस रात के लिए उन्हें बड़ा महत्त्व प्राप्त हो जाता है। कभी-कभी एक ही नहीं बल्कि दो-दो संकेत-शब्द होते हैं। ब्रिगेड और डिवीजन दोनों के संकेत-शब्द अलग-अलग होते हैं। मैंने दोनों ले लिए थे और निकलने से पहले अपने तीनों कॅरियरों के जवानों को बता दिए थे। इन शब्दों को जहाँ तक संभव हो गुप्त रखना पड़ता है।

पेरीमीटर के दरवाज़े से बाहर निकलने के बाद मैंने अपने पीछे आनेवाले कॅरियरों को रोका। उन्हें 'बॉक्स फॉर्मेशन' याने (एक कॅरियर आगे, उसके पीछे एक फर्लांग की दूरी पर दोनों ओर एक-एक कॅरियर और सबसे पीछे दो फर्लांग की दूरी पर एक कॅरियर, इस तरह संदूकनुमा रचना कर हम आगे बढ़ने लगे। कॅरियरों के चलते समय भी मैं अपने कॅरियर में बैठा-बैठा अपने दूसरे कॅरियरों के जवानों से बातें कर सकूँ इसका प्रबंध वायरलेस टेलीफोन से किया गया था। इस संवाद-यंत्र को हम फौजियों की भाषा में 'वॉकीटॉकी'

बॉक्स फॉरमेशन
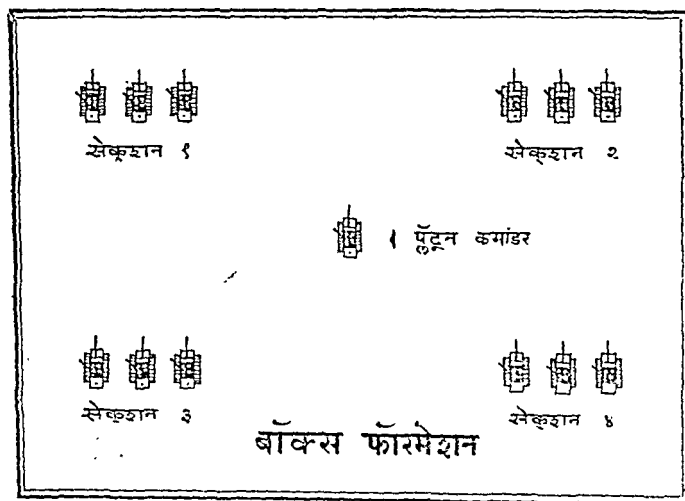
कहते हैं। मैंने अपने पीछे आनेवाले कॅरियरों के जवानों को वॉकीटॉकी से यह सूचना दी कि वे जो कुछ देखें, उसे नोट कर लें। इस तरह हम आगे बढ़ने लगे। मेरा कॅरियर सबसे आगे था।

हमारे निकलने के घंटे-डेढ़ घंटे बाद यानी करीब सूर्यास्त के समय हमें आकाश में हवाई जहाज़ों की घरघराहट सुनाई पड़ने लगी। उसके सुनाई पड़ते ही मैंने वॉकीटॉकी से सब कॅरियर्स को रुकने और सैनिकों को उनमेंसे उतरकर सुरक्षित स्थानों में जाने का हुक्म दिया। तुरंत कॅरियर रुक गए। सारे जवान एकदम कॅरियरों से बाहर कूद पड़े और सुरक्षित स्थानों में चले गए। इसी समय शत्रु की दिशा से २५-३० हवाई जहाज़ फुर्ती से हमारी छावनी की ओर गए और हमारे रहने के डग-आउटों पर बम गिराकर वायु-वेग से साँयसाँय करते हुए हमारे सिर पर से निकल गए। हवाई जहाज़ों के निकल जाने तक और यह पूर्ण विश्वास हो जाने तक कि उनकी आवाज़ अब नहीं आ रही है और अब कोई खतरा नहीं है और हम पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं, हम अपने सुरक्षित स्थानों में ही चुपचाप पड़े थे। बम गिरने के बाद जब उसका विस्फोट होता है तब उसके तीक्ष्ण विनाशकारी टुकड़े तेज़ी से ऊपर फेंके जाते हैं और ज़मीन के पास रहनेवाले को कोई चोट नहीं लगती। इसलिए बमबारी के समय ज़मीन पर पड़े रहना ही हमेशा सुरक्षित होता है। हमारे चार कॅरियर्स रेगिस्तान की बालू उड़ाते हुए दौड़ रहे थे। इससे हमने अंदाज़ बाँधा कि शत्रु को हमारा पता लग गया होगा। परंतु यह अंदाज़ सही नहीं था। इसीलिए हमपर बमबारी नहीं की गई थी। हम सब अपने-अपने कॅरियरों में जाकर बैठ गए और पहले जैसे ही वेग से अपने ध्येयस्थान की ओर चल पड़े।

पूर्ण अंधकार होने से पहले हम सिदी रज़ाक से एक मील दूर पहुँचकर रुके। खबर थी कि वहाँ शत्रु की हलचलें जारी हैं। उनका निरीक्षण करने के लिए हम वहाँ गए थे। कॅरियरों को रोकने के बाद सबसे पहला और अत्यंत महत्त्वपूर्ण काम था बालू के ढूहों के पीछे कॅरियरों को छिपाकर रखना। कॅरियरों की सुरक्षा का पूर्ण विश्वास हो जाने पर मैं काम में लग गया। मैंने अपने साथ के जवानों को कॅरियरों में बैठे-बैठे, या नीचे उतरकर, और ज़रूरत पड़े तो आसपास घूमकर, अपने को होशियारी से छिपाकर, जानकारी प्राप्त करने की सूचनाएँ दीं। मैं खुद दूरबीन की सहायता से शत्रु की हलचलों का
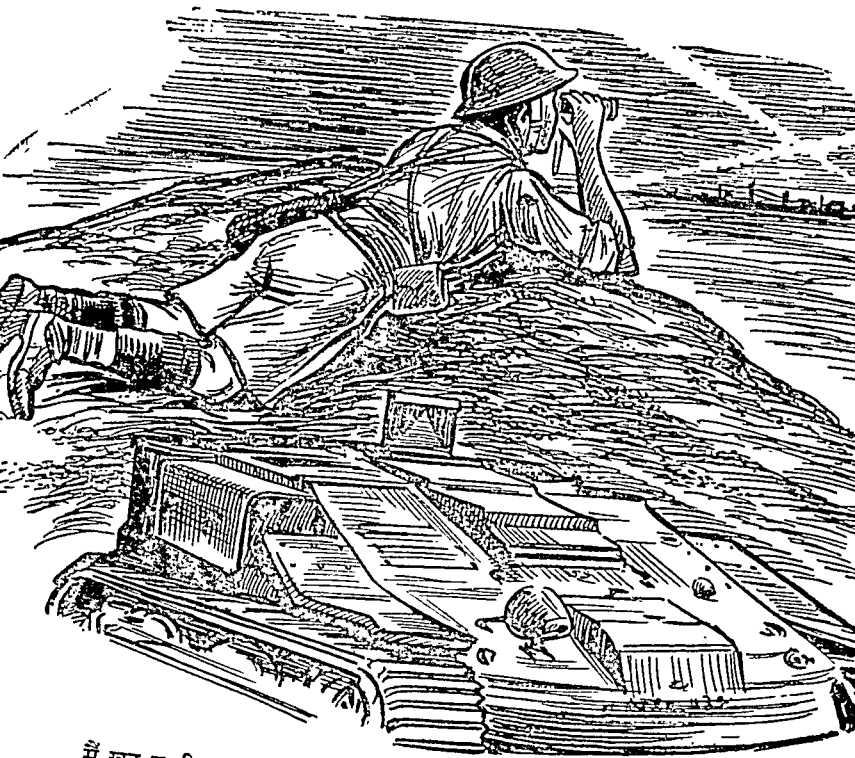
मैं खुद दूरबीन की सहायता से शत्रु की हलचलों का निरीक्षण करने लगा।

निरीक्षण करने लगा और जो बातें मुझे नज़र आ रही थीं, उन्हें नोट करने लगा। खंदकें खोदी जा रही थीं। सेना एकत्र की जा रही थी। बीच ही में वेरी लाइट पिस्तौल से फेंकी जानेवाली भिन्न-भिन्न रंगों की रोशनी से संकेतों को देने और लेने का काम भी हो रहा था। ट्रकों, जीपों तथा अन्य वाहनों की अनेक आवाज़ें कानों में पड़ रही थीं। स्पष्ट था कि वह सब लड़ाई की पूर्व तैयारी थी। करीब डेढ़ घंटे के बाद भिन्न-भिन्न दूरियों से टोह लेने का हमारा काम समाप्त हुआ। तुरन्त ही हम वहाँ से लगभग १० मील दूर स्थित एल एडम गाँव की ओर निकल पड़े। अब पूरा अंधकार हो जाने के कारण हमने कॅरियरों को अधिक नज़दीक कर लिया और चलना शुरू किया।

एल एडम से सुरक्षित अंतर पर रहकर हमने पहले जैसी ही जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की। हमने देखा कि शत्रु यहाँ सिदी रज़ाक से भी अधिक तैयारी कर रहा है। सिदी रज़ाक की अपेक्षा एल एडम हमारी छावनी से अधिक नज़दीक था। इसलिए शत्रु यहीं से हमपर हमला करने की तैयारी कर रहा होगा। यातायात के साधनों की तो वहाँ बड़ी भीड़ दिखी। करीब एक घंटे तक हम टोह लेते रहे। मेरा काम समाप्त हो ही रहा था कि इसी समय मेरे कॅरियर के जवान दौड़ते हुए वापिस आए। उन पर गोलियों की वर्षा की गई थी। रात के अँधेरे में वे जवान सुरक्षित अंतर पर न रहकर भूल से शत्रु की छावनी के बहुत नज़दीक पहुँच गए होंगे। हमारा काम पूरा हो ही चुका था। हम तुरंत एल एडम से चल पड़े।

एल एडम छोड़कर सुरक्षित स्थान पर आते ही मैंने कॅरियर रुकवाए और सब सैनिकों की, गोला बारूद की और कॅरियरों की जाँच की। अन्य तीन कॅरियरों के जवानों ने जो जानकारी प्राप्त की थी, वह मैंने एकत्र की। उनके और मेरे द्वारा प्राप्त की गई जानकारी, दोनों, अनेक बातों में समान थी। जानकारी एकत्र कर लेने के बाद कॅरियरों की पहलीवाली बाक्स फॉरमेशन रचना मैंने बदल दी और एक-के-पीछे-एक, इस तरह कतार बनाकर, अत्यंत तेज़ी से हम अपनी छावनी की ओर चल पड़े। रात करीब बारह बजे हम छावनी पहुँचे।

कर्नल लॅंकेस्टर और उनके मातहत अधिकारी हमारे भोजन के डग-आउट में मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने जो जानकारी प्राप्त की वह सब उनके हवाले कर दी। इसके बाद आध घंटा चर्चा करके उन्होंने मुझसे अधिक-से-अधिक जानकारी समझ लेने की कोशिश की। बहुधा दूसरे दिन रात को लड़ाई शुरू हो जाएगी यह अपना अंदाज़ मैंने कर्नल को बताया। पर जाने क्यों कर्नल को लग रहा था कि लड़ाई अभी आठ दिन और शुरू नहीं होगी। इसके बाद मैंने कर्नल से लॅंबर्ट के बारे में पूछा। उन्होंने कहा, "वह अभी तक लौटा नहीं है। पर उसने वायरलेस से खबर भेजी है कि उसपर और उसके साथ के जवानों पर गोलीवर्षा हुई है। पाँच-छः सैनिक कैद भी कर लिए गए हैं।"

भोजन करके में डग-आउट में गया। वहाँ मेरा साथी कॅप्टेन ज़ीरो आराम कर रहा था। मेरे आते ही वह उठ बैठा और मुझसे उसने पूछा—

"कहो, क्या हाल है?" मैंने उसे बतलाया कि अब किसी भी क्षण लड़ाई के शुरू हो जाने की संभावना है। शत्रु की तैयारी ज़ोरों से हो रही है। हमारी बातें हो जाने पर मैंने कपड़े उतारे और आराम करने के लिए लेट गया। 'लैंवर्ट अभी तक नहीं आया है। उसके पाँच-छः जवान पकड़ लिए गए हैं। उनपर गोलीवर्षा भी हुई है।'— इन सब घटनाओं का विचार करता हुआ मैं सो गया। पर वह नींद कैसी रही होगी यह तब तक मालूम नहीं हो सकता जब तक स्वयं उस स्थिति का अनुभव नहीं होता।

# ८

# कैद और रिहाई

जून १९४२

खंदक में मुश्किल से एक घंटा भी मैं आराम नहीं कर पाया था कि लैंबर्ट ने खंदक में प्रवेश किया। वह थका और डरा हुआ था। उसने हमें शत्रु की पूरी तैयारी का हाल सुनाया। मोर्चे पर जाने का मेरा तो यह पहला ही मौका था, पर लैंबर्ट इससे पहले एक बार और इसका अनुभव पा चुका था। शत्रु ने उसके जवानों पर गोलियाँ बरसाई थीं। कुछ जवानों को कैद कर लिया था। वह खुद भी थोड़ा जख्मी हो गया था। और टोह लगाते वक्त उसने शत्रु की पूरी तैयारी देख ली थी। इन सबका मेल जमाकर उसने यही मतलब निकाला था कि मौत हमारी तरफ कदम बढ़ाए चली आ रही है।

लैंबर्ट ने मेरे पास आने से पहले कर्नल लेंकेस्टर को सारी जानकारी दे दी होगी। सुबह के चार बजे थे। मैंने और कॅप्टन ज़ीरो ने मोटे गरम कपड़े पहन लिए। ठंड अपना पूरा जौहर दिखा रही थी। यह देखने के लिए कि हमारा हर जवान अपनी-अपनी जगह पर 'स्टॅंड टु' (डटा हुआ, तैयार) है या नहीं, हम एक चक्कर लगा आए। जवान तैयार थे। हम लोग डग-आउट में लौटे। सहारा मरुभूमि के उस अत्यंत विषम जलवायु के कारण रात की ठंड

से बचने के लिए हमने जो गरम कपड़े पहन रखे थे, वे उतार डाले और अब दिन की गरमी का सामना करने के लिए खाकी कपड़े पहन लिए। दाढ़ी बनाई और चाय पीकर कप नीचे रख ही रहे थे कि धड़ाम से हमारी खंदक पर तोप का पहला गोला आ गिरा। अब लड़ाई शुरू हो गई थी। उस वक्त ५-२० बजे थे। मैंने तुरंत कर्नल लेंकेस्टर को टेलीफोन से खबर दी कि हमारी खंदक पर तोप का गोला गिरा है; यद्यपि नुकसान कुछ नहीं हुआ है फिर भी यह लड़ाई शुरू होने का इशारा है। कर्नल ने फोन से मुझे सूचित किया कि ठीक है, तुम लोग अपने-अपने स्थान पर जाकर खड़े हो जाओ और तैयार रहो। शीघ्र ही तुम्हें आगे के हुक्म दिए जाएँगे। मैं फौरन कॅरियर के पास जाकर खड़ा हो गया और हुक्म का इंतजार करने लगा।

हम इधर हुक्म का इंतज़ार कर ही रहे थे कि उधर से शत्रु के तोपखाने ने गोले बरसाना शुरू कर दिया। करीब आध घंटे तोपखाना धाँय-धाँय गोले फेंक रहा था। तोपखाने के इस हमले को 'कवरिंग फायर' कहते हैं। गोलों की लगातार वर्षा इसलिए की जाती है कि पीछे से आनेवाली सेना बिना खतरा उठाए आगे बढ़ सके और शत्रु की सेना जहाँ है वहाँ से टस-से-मस न हो पाए। आक्रमण के तरीके में इसी कारण तोपखाने के लगातार हमले का प्रथम स्थान होता है। इस हमले के दौरान ही पैदल सेना और टैंक आगे बढ़ते रहते हैं। हमारी छावनी और उस तोपखाने के बीच करीब आठ-दस मील का फासला था। दूरबीन से हमारी छावनी साफ दिख सके इतने फासले पर शत्रु का (ओ. पी. आब्ज़रवेशन पोस्ट) 'निरीक्षण स्थल' था। वहाँ से सूचनाएँ दी जाती थीं कि तोपखाने से हमला ठीक किस जगह और किस कोण से किया जाए और उन सूचनाओं के अनुसार तोपखानेवाले सामने के नक्शे को देखकर अचूक गोले फेंक रहे थे।

ज़मीन पर होनेवाला तोपखाने का हमला खत्म हुआ ही था कि आसमान से हवाई जहाज़ों ने बम की आग उगलना शुरू कर दिया। ये जहाज़ एकबारगी करीब पचास-पचास का दस्ता बनाकर, एक साथ उड़कर हमारी सुरक्षा-रेखा पर लगातार आक्रमण कर रहे थे। पहला पचास का दस्ता हमला करके पूरी तरह लौट भी न पाता कि एकदम पचास का दूसरा दस्ता आ धमकता। इस तरह उनके आक्रमण का न रुकनेवाला सिलसिला ही जारी था। तोपखाने के हमले में कम-से-कम बीच-बीच में थोड़ी फुरसत भी मिल

जाती। लेकिन हवाई जहाज़ की बम-वर्षा लगातार और अधिक अचूक होती थी। इधर आध घंटे तक हवाई जहाज़ों की बम-वर्षा जारी थी और उधर शत्रु की सेना आगे बढ़ ही रही थी। शत्रु के तोपखानों और हवाई दल ने हमपर इस तरह आक्रमण करके अपनी पैदल सेना को हमारी सेना के नज़दीक लाने के लिए रास्ता साफ कर दिया था।

बड़े हवाई जहाज़ों ने इस तरह कोई आध घंटे तक बम-वर्षा की और इसके तुरंत बाद ही छोटे हवाई जहाज़ आए। ये हवाई जहाज़ झपट्टा मारकर ज़मीन से २०-३० फुट की ऊँचाई तक नीचे आते और हमारी सेना पर मशीनगनों से गोलियाँ दागते। इस हमले के वक्त हमारे सैनिकों को नीचे ही पड़ा रहना पड़ता था। हमारा प्रतिकार करीब-करीब नहीं के बराबर था। इधर हम हवाई दल की मशीनगनों की गोलियों से परेशान हो रहे थे और उधर शत्रु की पैदल सेना हमारे काँटेदार तार के पास आकर खड़ी हो गई और उसने सब तार तोड़ डाले। हमारी सुरक्षा-रेखा संपूर्ण रूप से नष्ट हो गई थी। पेरीमीटर के सामने हमने जो सुरंगें लगा रखी थीं, उन्हें शत्रु के इंजीनियरिंग दस्ते (सॅपर्स एन्ड माइनर्स) ने रातोंरात या तो उखाड़कर फेक दिया होगा या उन्हें बेकार कर दिया होगा। इस कारण शत्रु की पैदल सेना के लिए और उसके टैंकों के लिए रास्ता साफ हो गया था। खंदकों में और पेरीमीटर के पास पहुँच जानेवाले हमारे सैनिकों को यह भी दिख रहा था कि शत्रु की पैदल सेना के पीछे, थोड़ी ही दूरी पर, उसके लड़ाका टैंक इकट्ठा हो रहे हैं। हमारे कर्नल-साहब तक ये सारी खबरें पहुँच गयी होंगी। पर यह देखते हुए भी कि शत्रु की सेना आगे बढ़ रही है, हम कुछ भी नहीं कर पा रहे थे। हमारे अपर्याप्त हवाई जहाज़ कभी-कभी प्रतिकार करने का ज़ोरदार प्रयत्न करते, परंतु उन्हें सफलता न मिलती! ऐसी स्थिति में भी मेरे कॅरियर दल के बहादुर जवानों ने अपनी मशीनगनें खड़ी करके दुश्मनों के दो हवाई जहाज़ नीचे गिरा दिए। एक पायलट को भी कैद कर लिया। कॅरियर से हवाई जहाज़ों पर हमला करते वक्त दो किस्म की गोलियाँ काम में लाई जाती हैं। एक हमला करनेवाली गोली और दूसरी 'ट्रेसर बुलेट' याने हमला करते समय रोशनी फेंकती जानेवाली गोली। मशीनगन में एक सादा और एक 'ट्रेसर' ऐसी दो गोलियाँ भरी जाती हैं। हमला करते वक्त 'ट्रेसर बुलेट' के कारण खिंची प्रकाश-रेखा में यह मालूम हो जाता है कि हमारा हमला ठीक दिशा में हो रहा है या नहीं।

छोटे हवाई जहाज़ों का आक्रमण बंद होते ही दूसरा हवाई दल आ पहुँचा। इस हवाई दल ने अपनी ही सेना के पीछे कुछ बम गिराए। उन बमों को गिराते ही उनमेंसे धुआँ निकला। ज़मीन से काफी ऊँचाई तक हवा में धुएँ की एक मोटी दीवार-सी खड़ी हो गई। इस दीवार को धुएँ का परदा (स्मोक-स्क्रीन) कहते हैं। इस परदे को खड़ा करने का उद्देश्य यह था कि हमारी सेना यह न देख पाए कि परदे के पीछे शत्रु के टैंक कैसी हलचल कर रहे हैं। हवाई जहाज़ों ने इसी मतलब से बम गिराए थे। तोपखाना और हवाई दल की सहायता से हमपर हमला करनेवाली शत्रु की पैदल सेना ने हमारी सारी सुरक्षा-व्यवस्था को इस समय तक बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था। पेरीमीटर के तारों को तोड़कर वह भीतर घुस आई थी और खंदकों में घुसकर हमारे जवानों से आमने-सामने लड़ रही थी। इसी समय धुएँ के परदे के पीछे शत्रु के टैंकों ने एक अभेद्य पंक्ति खड़ी करके हमपर धावा बोलने की तैयारी कर ही ली थी।

सुबह के करीब साढ़े आठ बजे थे। मुझे कर्नल लेंकेस्टर का फोन मिला। वे मुझे अगला हुक्म देना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने मुझे बुलाया था। हुक्म मिलते ही सबसे पहले मैंने प्लेटून के हवाल्दार हंबीरराव मोहिते से सब कॅरियरों को चलाकर देख लेने और सब चीज़ों को तैयार रखकर होशियार रहने को कहा और मैं कर्नल से मिलने चल दिया। कर्नल का डग-आउट करीब पौन मील दूर था। मैं अपने रनर को लेकर दौड़ता हुआ और शत्रु के हमले से अपनेको बचाता हुआ कर्नल के डग-आउट की ओर चल पड़ा। शत्रु की तरफ से असंख्य गोलियाँ ज़न्नाटे से आ रही थीं; हमारे कानों के पास से सॉय-सॉय करती हुई गुज़र रही थीं। पर सौभाग्य से एक भी हमें नहीं लगी। इस समय कॅरियर की सुरक्षा की दृष्टि से कॅरियर से जाना मुझे खतरे से भरा जान पड़ा। इसीलिए मैं पैदल निकल पड़ा था। यदि कॅरियर से जाता तो कर्नल से हुक्म लेने तक मुझे अपना कॅरियर उनके डग-आउट के पास खड़ा करना पड़ता और उस स्थिति में शत्रु की तोपों ने उसकी धज्जियाँ उड़ा दी होतीं। मैं कर्नलसाहब से जाकर मिला। वे डग आउट के बाहर ही खड़े थे और दूरबीन से शत्रु की हलचलों का निरीक्षण कर रहे थे। उन्होंने शत्रु की पैदल सेना की हलचलों की ओर संकेत किया और उस सेना पर कॅरियरों से हमला करके उसे पीछे खदेड़ देने की विस्तारपूर्वक

सूचनाएँ दीं। उन्होंने उनका अपना सुरक्षित कॅरियर भी साथ ले जाने का सुझाव मुझे दिया। हुक्म मिलते ही मैंने वॉकीटॉकी पर हवालदार मोहिते से कहा कि वे सारे कॅरियर इकट्ठा करके 'एक्सटेंडेड फॉरमेशन' से उस जगह ले आएँ जिस जगह मैं खड़ा था। कॅरियरों के आते ही मैं अपने उन चौदह कॅरियरों को लेकर हमला करने के लिए निकल पड़ा। मैंने तीन-तीन कॅरियरों का एक-एक सेक्शन बनाया। तीन-तीन कॅरियर्स के एक सेक्शन के हिसाब से याने ९ कॅरियर 'एक्सटेंडेड फॉरमेशन से चल रहे थे। बीच में मेरे साथ मेरा कॅरियर था और मेरे पीछे तीन कॅरियरों का एक सेक्शन और कर्नलसाहब का सुरक्षित कॅरियर। इस तरह कुल चौदह कॅरियर लेकर मैंने हमला करने का हुक्म दिया। "बोलो श्री छत्रपति शिवाजी महाराज की जय!" की बुलन्द युद्ध-घोषणा चौदहों कॅरियरों से निनादित हो उठी। मराठा पल्टन के अंग्रेज़ अफ़सर भी हमारी इस घोषणा में बिला नागा अपनी आवाज़ मिला दिया करते थे।

कॅरियरों को लेकर सामने की शत्रु-सेना पर गोलियाँ बरसाते हुए, उन्हें पीछे खदेड़ने का ज़ोरदार प्रयत्न करते हुए हम आगे बढ़ रहे थे। मैं कॅरियर में ड्राइवर के नज़दीक कॅरियर कमांडर की सीट पर बैठा हुआ था और ऐंटी-टैंक राइफल चला रहा था। मेरे पीछे कॅरियर में मशीनगनर मशीनगन लेकर बैठा था और उसे मदद करनेवाले दो और जवान भी नज़दीक ही बैठे थे। मैंने ऐंटी-टैंक राइफल से पहली ही गोली दागी और राइफल के झटके के धक्के से ज़रा पीछे की ओर खिसका कि ठीक इसी समय, अचानक मेरा ड्राईवर 'साऽऽब' कहकर, ज़ोर से चीखा और मेरे बदन पर आ गिरा। उसके सिर में शत्रु की गोली घुस गई थी और तत्काल प्राण-पखेरू उड़ गए थे। पीछे जो तीन जवान बैठे थे उनमें से दो ने उसे उठाकर बाहर रखा और एक तुरंत ही कॅरियर चलाने लगा। मैं ऐंटी-टैंक राइफल चला ही रहा था। कॅरियर भी चल ही रहा था। इसी समय मेरे पीछे बैठा हुआ मशीनगनर जाधव मुझसे बोला, "साब, आपकी तकदीर बहुत बड़ी है।" मैंने उसकी ओर मुड़कर प्रश्नार्थक मुद्रा से देखा। उसने मेरे बाएँ ओर की खिड़की की तरफ अँगुली दिखाकर कहा—"साब, आपकी बाईं तरफ देखिए। यह गोली आप ही के लिए थी। मगर आपकी तकदीर में जंग के मैदान पर मौत लिखी ही नहीं है। आपके सर पर भगवान का साया है, साब।" मैंने खिड़की की ओर देखा और मुझे सचमुच ही दीख पड़ा कि जो गोली ड्राइवर को लगी थी, वह

मेरे बाएँ ओर की खिड़की का काँच फोड़कर भीतर घुसी थी। मैं ऐंटी-टैंक राइफल के धक्के से पीछे न खिसका होता तो वह सीधी मेरे सिर में ही घुसती। परंतु मैं तो बच गया और बेचारा ड्राइवर उसका शिकार हो गया। ऐंटी-टैंक राइफल से गोली दागने में मुझे एक क्षण की भी यदि देर हो जाती तो शत्रु की गोली निश्चित ही मेरे सिर में घुस जाती। इस घटना के कारण और मशीनगनर जाधव ने उसपर जो टिप्पणी की उसके कारण अपने पिताजी के स्वप्न और लक्ष्मी-केशव के आशीर्वाद आदि, सब स्मृतियाँ क्षणार्ध में मेरे स्मृति-पटल को छू गईं। मेरा आत्मविश्वास दृढ़ हो गया और उसी जोश में ज़ोरदार धावा बोलकर हमपर हमला करनेवाली शत्रु की पैदल सेना को हमने पीछे खदेड़ दिया। मैंने वायरलेस के ज़रिए हवालदार से सारे कॅरियरों को पुनः एकत्र करने को कहा और शत्रु के धुएँ के परदे के पीछे की सरगर्मी का पता लगाने का निश्चय कर और हवालदार को बताकर मैं उस धुएँ के परदे को चीरता हुआ भीतर घुस पड़ा।

मैंने देखा कि शत्रु के २५-३० टैंकों की कतार हमपर हमला करने के लिए सामने तैयार खड़ी है। टैंकों पर रखी तोपों की मार से बचने के लिए मैं फुर्ती से और आगे बढ़ गया और एक चक्कर लगाकर उस कतार के समानांतर जाकर लौट आया। इस तरह धुएँ के परदे से बाहर निकलने के उपरांत बाईं ओर जाकर मैं मुड़ा और शत्रु पर फिर आक्रमण करने के उद्देश्य से कॅरियर इकट्ठा किए। अब सिर्फ चार ही कॅरियर बचे थे। बाकी के सब शत्रु ने नष्ट कर डाले थे। वे चार और एक मेरा अपना, कुल पाँच कॅरियरों को लेकर पैदल सेना पर आक्रमण करने के लिए मैं फिर चल पड़ा। पर कुछ ही सेकंडों के भीतर शत्रु के तोपखाने के हमले से मेरे चारों कॅरियर मेरे सामने ही एक-के-बाद-एक नष्ट हो गए। अब मेरा अपना एक ही कॅरियर बचा था। इसलिए मैंने अब आक्रमण करने का विचार छोड़ दिया और जाकर कर्नल को खबर देने के इरादे से मैं मुड़ पड़ा। इसी समय कॅरियर में मेरे पीछे बैठे हुए गनर और ड्राइवर दोनों को भी गोलियाँ लगीं। मैं लपककर ड्राइवर की सीट पर जा बैठा और जो गनर गोली से बच गया था उससे मशीनगन चलाने को कहा। और इसी समय—विचित्र संकटकालीन स्थिति में मेरा कॅरियर ठप्प हो गया। हैंडिल मारकर उसे फिर से शुरू करने के इरादे से उस लंबे हैंडिल को लेकर गोलियों की वर्षा के बीच ही नीचे उतर पड़ा। वह तो किस्मत

थी जो हैंडिल को एक ही बार झटके से घुमाने पर कॅरियर स्टार्ट हो गया। नहीं तो गोलियों की वर्षा में कॅरियर को स्टार्ट करने की कोशिश करता हुआ मैं यदि कुछ क्षण ही वहाँ और खड़ा रहता तो मेरी क्या दुर्गति होती, कहा नहीं जा सकता। तुरंत ही मैं फिर कॅरियर पर सवार हुआ और पीछे मुड़ने के लिए मैंने कॅरियर घुमाया ही था कि उसपर तोपों का हमला हुआ और सीट तथा हाथ के स्टियरिंग सहित मैं ऊपर की ओर फिंका। पर जब नीचे गिरा तो सौभाग्य से बालू के टीले पर। इस कारण मुझे कहीं कोई चोट नहीं आई। मेरे साथ अकेले ही बचे हुए गनर का क्या हुआ होगा इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

मैं वहाँ से उठा और नज़दीक ही एक खंदक थी, उसमें जाकर बैठ गया। मैं शत्रु के चंगुल में फँस गया था। इसलिए खंदक में पहुँचते ही सबसे पहले मैंने यदि कुछ किया तो वह यह कि मेरे पास जितने भी कागज़ात और नक्शे आदि थे उन सबको फाड़कर बिलकुल नष्ट कर दिया। युद्धशास्त्र का यह सबसे महत्त्वपूर्ण नियम है कि अपने पास का कोई भी कागज़, नक्शा या हथियार किसी भी हालत में शत्रु के हाथ न लगने देना चाहिए। उस नियम के अनुसार सारे कागज़ों को नष्ट कर यह सोचता हुआ कि आगे क्या करूँ, मैं खंदक में बैठा था। दोपहर के करीब चार बजे होंगे। थोड़ी देर बाद एक जर्मन अफसर खंदक के पास आया। मेरी टोपी देखकर पहचान गया होगा कि मैं एक अफसर हूँ। उसने मुझसे खंदक के बाहर निकलने को कहा। मेरे बाहर आते ही उसने मेरे पास के कंपास (दिशा-दर्शक यंत्र) और बची हुई सब गोलियाँ ले लीं। यह देखने के लिए कि होल्स्टर में (पिस्तौल रखने की जगह) रिवॉल्वर है या नहीं, उसने वह हाथ से टटोलकर देखा। इधर यह जाँच चल रही थी और उधर मेरे मन में विचार उठ रहे थे—'मेरा सैनिक जीवन अब समाप्त हो गया। आज से एक युद्ध कैदी का पराधीन जीवन मुझे जीना होगा—' मैं इस तरह अपने विचारों में खोया हुआ था कि उसने पूछा—"क्या तुम्हारे पास रिव्हाल्वर नहीं है?" अपनी ही धुन में मैंने जवाब दिया—"नहीं।" उसने हुक्म दिया—"चले आओ मेरे पीछे-पीछे।" वह आगे और मैं उसके पीछे इस तरह हम दोनों चलने लगे। बीच-बीच में वह पीछे मुड़कर देख लेता और विश्वास कर लेता कि मैं उसके पीछे-पीछे आ रहा हूँ या नहीं।

चलते समय वह जर्मन अफसर मुझ से अंग्रेज़ी में बातें कर रहा था। बड़ी

सुंदर अंग्रेज़ी बोलता था वह। उसे तथा अन्य जर्मन अफसरों को हमारे अफसरों के नाम ओहदे तथा अन्य बातों की अक्षर-अक्षर जानकारी थी। यह तब सिद्ध हो गया जब उसने मुझसे पूछा—"व्हेयर इज कर्नल लेंकेस्टर?" (कर्नल लेंकेस्टर कहाँ हैं?) हमारी मराठा पल्टन के सैनिक हरे मोज़े पहनते हैं, इसका भी उसे पता था। मेरे मोज़ों के रंग से उसने जान लिया था कि मैं मराठा पल्टन में हूँ। वह बोला—"दो साल पहले तुम्हारी मराठा पल्टन से हमें बड़ा कड़ा मुकाबला करना पड़ा था। पर तुम्हारी वही पल्टन आज पाँच ही घंटों में पीछे हट रही है। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है।"

छावनी में जगह-जगह जो सुरंगें गड़ी थीं, उनसे बचते हुए मैं और वह जर्मन अफसर दोनों चल रहे थे। मेरे मन में विचारों का तूफान उठा था।

...जर्मन अफसर की पीठ का निशाना साधकर...

चलते-चलते रूमाल निकालने के लिए मैंने अपने हाफ पैंट की जेब में हाथ डाला। इसी समय एकदम मेरे ध्यान में आया कि मेरे पास भरा हुआ रिवॉल्वर रखा है। उसे गले में लटकाने का लॅन यार्ड (बुनी हुई डोरी) टूट जाने के कारण सुबह ही मैंने उसे हाफ पैंट की जेब में रख लिया था। उसके बारे में मैं बिलकुल भूल ही गया था। मैंने आसपास देखा। जहाँ-तहाँ मृत, मरणासन्न सैनिक धरती पर बिछे हुए थे। आसपास करीब एक फर्लांग तक कोई परिंदा भी पर मारता हुआ नज़र नहीं आ रहा था। यह सोचकर कि इतना अच्छा मौका फिर हाथ नहीं आएगा, मैंने रिवॉल्वर निकाला और आव देखा न ताव, उस जर्मन अफसर की पीठ का निशाना साधकर एक-के-बाद-एक सारी गोलियाँ दाग दीं। दूसरी गोली लगते ही उसका निष्प्राण शरीर भूलुंठित हो गया। वह एक सुरंग पर गिरा था। इसलिए वह सुरंग फट पड़ी और तत्काल की उस मृत अफसर के शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गए। अपनी ही दो भूलों के कारण उसने स्वयं मृत्यु को निमंत्रण दिया था। विमनस्क स्थिति में मेरे यह कहने पर कि मेरे पास रिवॉल्वर नहीं है, अधिक सावधानी से मेरी पूरी खानातलाशी न लेकर उसने मेरी बात का विश्वास कर लिया था और उसके बाद भी मुझे अपने सामने न रखकर और स्वयं आगे चलकर मुझसे अपने पीछे चलने को कहा था। रणभूमि में ऐसी भूलों का एक ही प्रायश्चित होता है और वह देहांत प्रायश्चित उसे मिल चुका था। वह मरकर मेरे पैरों के नज़दीक पड़ा था। मैंने आसपास निगाह दौड़ाई। इस डर से कि मुझे किसीने कहीं देख तो नहीं लिया, मेरा सीना धड़क रहा था। उस जर्मन अफसर पर गोली चलाते वक्त अगर मुझे कोई देख लेता तो मेरी खैरियत न थी। तत्काल गोली मारकर मुझे मौत के घाट उतार दिया जाता। परंतु सौभाग्य से आसपास कोई नज़र नहीं आ रहा था। हथेली में जान लेकर मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

भागते-भागते शाम छः बजे के करीब मैं एक खंदक के पास जा पहुँचा जो उपर्युक्त घटनास्थल से काफी दूर थी और जाकर उसमें बैठ गया। अँधेरा धरती पर उतरने लगा था। खोया हुआ था इस विचार में कि यदि हो सके तो अपने लोगों के बीच चला जाऊँ, मेरी आँख लग गई। पहले के तीन-चार दिन की जगार और अब तक की थकान, दोनों का मुझपर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि न चाहने पर भी मैं सो गया।

# १

# पच्चीस हज़ार में एक

जून १९४१
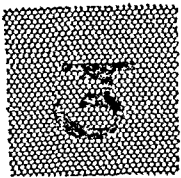
स खंदक की नींद का ढंग बड़ा अजीब था। मैं सोया हुआ था पर मेरा मन जाग रहा था। युद्ध के बोझिल बने वातावरण में मेरा मन शत्रु से लड़ रहा था। मैं कहाँ हूँ इसका मुझे कोई भान नहीं था। पता नहीं इस स्थिति में कितना समय बीत गया, परंतु आधी रात के बाद जब मुझे लगा कि मैं जाग गया हूँ, तब मैंने देखा कि एक मनुष्य चिल्लाता और कराहता हुआ खंदक की तरफ चला आ रहा है।

वह एक अंग्रेज़ सार्जंट था। खंदक के मुहाने पर खड़ा हुआ वह दोनों हाथों से अपना पेट दबाए कराह रहा था। मैं समझ गया कि वह घायल हो गया है। वह मुझसे कह रहा था—"मेरे पैक में से ब्रांडी की बोतल निकाल दो।" उसके दोनों हाथ जख्म को दबाकर रखने में उलझे होने के कारण वह बोतल निकाल नहीं सकता था। मैंने उसे खंदक में आने का इशारा किया और सहारा देकर उसे भीतर ले लिया। उस बेचारे के पेट की अँतड़ियाँ बाहर निकल रही थीं। वह उन्हें दबाकर भीतर ढकेलने का प्रयत्न कर रहा था। संकटकाल में काम आ सके इसलिए प्रत्येक सैनिक के पैंट में दवा में डुबोई हुई एक पट्टी (बैंडेज) सी दी जाती है। उसका जख्म बाँधने के

उसका संतुलन गड़बड़ हो गया और सिर गोद में आ टिका।

माजरा क्या है। खंदक के मुहाने पर एक इटालियन सैनिक खड़ा हुआ मुझे दिखाई दिया। थोड़ी देर के बाद धीरे-धीरे मैं सब कुछ समझ गया। मैं जब खंदक में सोया हुआ था उस समय उस इटालियन सैनिक ने मुझपर गोली चला दी थी जो मेरे ढीले हाफ पेंट के कपड़े को फाड़, आरपार दो छिद्र बनाकर, जमीन में घुस गई थी। मेरा टोप उड़ा देनेवाले उस सुरंग के टुकड़े की तरह इस समय चलाई गई गोली सिर्फ कपड़ा फाड़कर, पर मुझे कोई चोट न पहुँचाकर, ज़मीन में घुस गई थी। फिर एक बार मौत मेरे बिलकुल नज़दीक आकर लौट गई थी। पूज्य पिताजी के स्वप्न के अनुसार और मशीनगनर जाधव के कथनानुसार सचमुच कोई अज्ञात शक्ति ही मेरे साथ रहकर मेरी रक्षा कर रही थी।

चीज़ें मैं किसी तरह ला सकता हूँ कि नहीं, उसने मुझसे मेरे डग-आउट के बारे में प्रश्न किया था। मेरा उत्तर सुनकर वह मुझसे बोला—"मैं इस सड़क को छोड़कर भीतर के हिस्से में नहीं घुस सकता।" जीप चल ही रही थी। जीप में उस अधिकारी के कपड़े, गोला-बारूद और हथियार आदि सामान भी था।

रास्ते के दोनों ओर लड़ाई खत्म होने के बाद का भीषण दृश्य दीख रहा था। टैंक तहस-नहस होकर पड़े थे। कहीं मृत सैनिकों को दफनाने के लिए गढ़े खोदे जा रहे थे। कहीं जलकर नष्ट हुए भाग नज़र आ रहे थे। हम जिस रास्ते से जा रहे थे उसी रास्ते से सैंकड़ों कैदी जाते दिख रहे थे। जर्मन अधिकारी ने आम रास्ता छोड़ दिया और जीप एक ओर मोड़ दी। थोड़ी ही देर में टोब्रुक का विशाल हवाई-अड्डा दृष्टि-पथ में आने लगा जहाँ करीबन २५ हज़ार युद्ध-कैदी फैले हुए थे। वहाँ मुझे छोड़ते समय जर्मन अधिकारी मुझसे बोला—"अफ्रीकी मोर्चे पर पकड़े गए सब युद्ध-कैदी इटालियनों के हवाले किए जाएँगे। रूसी मोर्चे के कैदी हमारे हवाले रहेंगे। तुम्हारा दुर्भाग्य है कि तुम इटालियनों के हवाले हुए हो। ये इटालियन लोग एक नंबर के मक्कार हैं। तुम्हारे पास सोने की अँगूठी, घड़ी या फाउन्टेन पेन जैसी कोई चीज़ें होंगी तो ये लोग छीन लेंगे। उन्हें चुराने से भी बाज़ नहीं आएँगे।" और जब वह जाने लगा तो उसने मुझसे हाथ मिलाया और यह कहकर कि 'ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे' उसने मेरे प्रति अपनी शुभेच्छा व्यक्त की और जाने लगा। पता नहीं क्यों, उसने फिर जीप मोड़ी। मेरे पास आया और जीप में रखे अपने कपड़ों में से एक कम्बल निकालकर मेरी ओर फेंकता हुआ बोला—"तुम अब युद्ध-कैदी हो। इसे रख लो। तुम्हारे काम आएगा।" पुनः मुझसे हाथ मिलाकर और वही शुभेच्छा व्यक्त कर वह भलामानस चल दिया।

दूर जा रही उसकी जीप को देखता हुआ मैं वहीं खड़ा था। वह एक जर्मन अधिकारी था, मैं अंग्रेज़ फौज का एक भारतीय अधिकारी था। हम दोनों एक-दूसरे के शत्रु थे और अब तो मैं उसका युद्ध-कैदी भी हो गया था। परंतु इसके बावजूद उस अधिकारी ने मेरे साथ जो बर्ताव किया वह इंसानियत का था। मेरे जख्म के बारे में, भूख के बारे में, मेरे कपड़ों के बारे में इतनी चिंता दिखाना और यथासंभव मेरी सहायता करना, ये बातें वैसे

देखा जाए तो मामूली लगती हैं। परंतु यह देखकर कि शत्रु-दल के एक अफसर ने ये सब बातें अपने युद्ध-कैदी के साथ कीं तो मुझे लगा कि उस चिलचिलाते रेगिस्थान की रणभूमि में जैसे इन्सानियत के हरे अंकुर फूट पड़े हों।

उसकी जीप दृष्टि से ओझल हो गई और मैं अपने बारे में सोचने लगा। मैं युद्ध-भूमि में आया था क्या-क्या आकाँक्षाएँ लेकर और प्रत्यक्ष यह क्या हो गया! हमारी दल पूरी तरह-पराजित हो गया था। हमारे ७-८ सौ जवानों में से बहुत थोड़े जिंदा रह गए थे। बहादुरी दिखाने की सारी इच्छाएँ पत्थर की तरह जड़ हो गई थीं। असाढ़ के मेघों को दहाड़कर जवाब देनेवाले मन की महत्त्वाकांक्षा के छौने जर्मनों के शिकारखाने के पिंजरे में कैद हो चुके थे। मैं अब उन 'पच्चीस हज़ार में एक' था और मेरी पराधीन ज़िंदगी शुरू हो रही थी।

# १०

# टोब्रुक से बारी

*जून १९४२–अगस्त १९४२*

ब्रुक के हवाई-अड्डे पर हज़ारों कैदियों के बीच मुझे छोड़कर वह जर्मन अधिकारी चला गया। सुबह के साढ़े ग्यारह बजे थे। वह जून का महीना था। सहारा की मरुभूमि का अत्यंत विषम जलवायु—दिन में भयंकर गरमी और रात में कडाके की सर्दी—हमें वहाँ बरदाश्त करना पड़ता था। मैं पहले दिन हवाई-अड्डे पर मनमाना भटक रहा था। जो कैदी वहाँ लाए गए थे उनमें दक्षिण अफ्रीकियों की संख्या काफी बड़ी थी। उनके पास उनका सारा सामान था जैसे वे किसी पूर्व-नियोजित सफर पर ही जा रहे हों। २० जून को जब से लडाई शुरू हुई थी, तब से सिर्फ हमारा ही ब्रिगेड लड़ने की पराकाष्ठा कर रहा था। पर दक्षिण अफ्रीकियों की तीन ब्रिगेडों ने शत्रु पर हमला किया ही नहीं। इसलिए शत्रु के एक पूरे डिवीजन से याने चार ब्रिगेडों से हमारे एक ब्रिगेड को बेतरह पिटना पड़ा था; फिर भी हम लोग पाँचे घण्टे जी-तोड़ मुकाबला करते रहे। इसलिए उसके बाद हमारी जो हार हुई वह इस स्थिति में अटल ही थी। दक्षिण अफ्रीकियों में से किसीकी माता जर्मन थी, किसीका पिता; अतः उन्हें जर्मनों के प्रति सहज सहानुभूति थी और यही वजह थी कि अगर सफेद झंडे सब से पहले दिखाए थे तो इन्हीं अफ्रीकियोंने!

हवाई-अड्डे पर जब मैं आज़ादी से घूम रहा था तो उसी समय "जनरल रोमेल! जनरल रोमेल!" ये शब्द मेरे कानों में घुसे! मैं इधर-उधर देख ही रहा था कि मेरे सामने से एक जीप आराम से गुज़री। जीप के बॉनेट पर जर्मनों का 'स्वस्तिक' अंकित झंडा लहरा रहा था। भीतर मरुभूमि के युद्ध का अद्वितीय जर्मन सेनानी जनरल रोमेल बैठा था। उसके बदन पर मामूली सैनिक के कपड़े थे। पर उसकी फोरेज कैप (तह की हुई टोपी) पर लगे हुए सुवर्ण सितारों से यह मालूम हो जाता था कि वह जनरल है। जीप में पीछे दो सैनिक भरी हुई टॉमी गन्स लिए खड़े थे। नज़दीक बैठा ड्राइवर गाड़ी चला रहा था। उसे देखते समय मुझे लगा कि एक अत्यंत बुद्धिमान और असीम साहसवाले व्यक्ति को आज मैं देख रहा हूँ। उसकी पोशाक से, हरकतों से इस अभिमान की बू-बास तक नहीं आती थी कि वह एक संसार-प्रसिद्ध सेनानी है। उसकी वह सादगी मन पर बड़ा गहरा प्रभाव डालती थी। जीप रुकी और जनरल रोमेल नीचे उतरा। वह अपने युद्ध कैदियों के सामने से [illegible] परंतु उनसे प्रश्न करते समय उसने किसीके भी सामने अपनी [illegible] बघारी। जनरल रोमेल जब लौटा तो टोब्रुक की रक्षा करनेवाले हमारे [illegible] का अफ्रीकी सेनापति जनरल क्लोपर भी उसके साथ था। अपने [illegible] क्लोपर को जर्मनी के जनरल रोमेल के साथ उसीकी जीप में [illegible] बड़ा अचंभा हुआ और मैं सोचने लगा। सोचते-सोचते [illegible] अंदाज़ कि दक्षिण अफ्रीकी पंचमस्तंभी हैं, इस घटना के [illegible] दृढ़ हो गया।

सुबह साढ़े चार बजे के करीब मैंने देखा कि कुछ [illegible] बनाकर हवाई-अड्डे पर लाए जा रहे हैं। उन कैदियों में मुझे [illegible] के दो मित्र कैप्टन ज़ीरो और कैप्टन लेंबर्ट [illegible] स्थिति में भी मुझे कुछ खुशी ही हुई। [illegible] हम तीनों पुनः एकत्र हो गए थे। हम तीनों [illegible] वहाँ हमारे खाने-पीने का न कोई प्रबंध था और न [illegible] लोगों के पास टिन्ड फुड के कुछ डिब्बे थे। [illegible] हमने अपनी भूख मिटाई। वही हाल [illegible]

हमारे पास का पानी जब [illegible] रेगिस्तान की उस तेज़ धूप में [illegible]



टोब्रुक से [illegible]

हमारे सामने प्राण त्याग देने पड़े। प्यास से व्याकुल होकर कितने ही लोगों ने रेतीली ज़मीन खोदकर खारा पानी निकालकर उससे प्यास बुझाने की कोशिश की। पानी के अभाव में हमारा भी बुरा हाल था। जर्मन लोग कैरो से पीने का पानी भरकर जो ट्रक लाते थे उनको हमारी ही सेना ने नष्ट कर डाला था इसलिए उन्हें भी अपनी सेना के लिए पीने का पानी ट्रकों में ढोकर काफी दूर से लाना पड़ता था। पानी से लदे ये जर्मनों के ट्रक जब रात को यहाँ आकर रुकते तो हम उनकी तरफ दौड़ पड़ते और ट्रकों में भरे पानी के डिब्बों से छलक कर मडगार्ड से टपकने वाले पानी की बूँदों को अपने मगों में भर लेते। बूँद-बूँद से सागर तो नहीं पर मग भर जाता और हम पीने के पानी का इंतज़ाम कर लिया करते। कुछ ऐसी भ्रमर-वृत्ति हो गई थी हमारी वहाँ कि जो भी अन्न-पानी मिले उसे संचित करते जाओ। इस तरह तीन-चार दिन गुज़रे। इसके बाद एक दिन जर्मन ट्रक में बहुत-से टिन्ड फुड के डिब्बे भर कर लाए गए और प्रत्येक कैदी की ओर एक-एक डिब्बा फेंका गया। हममें से भी प्रत्येक को एक-एक डिब्बा मिला। डिब्बों को देखते ही हमने उन्हें पहचान लिया। वे हमारे ही स्टोर के थे। हमारा ही अन्न हमारी ओर इस तरह फेंका जा रहा था। भाग्य का कैसा उपहास था वह!

चार-पाँच दिनों से हम देख रहे थे कि मोर्चे पर लड़नेवाले जर्मन सैनिकों के लिए रसद ले जानेवाले जर्मन ट्रक वहाँ से खाली लौटते थे और यहाँ रुककर यहाँ के कैदियों को कैदियों की छावनी की ओर ले जाते थे। परंतु उनके इस यातायात में कोई निश्चित तरीका नहीं था—कोई योजना नहीं थी। उसे देख हमें नहीं लगता था कि हमें यहाँ से ले जाया जायगा। इसलिए अंत में एक बार एक खाली ट्रक देखते ही हम कूदकर उसपर चढ़ गए। हमारे पीछे-पीछे और भी कई कैदी उसमें कूद पड़े। थोड़ी देर में ट्रक भर गया। ट्रक के ऊपर की रॉड को पकड़े एक-के-बाद-एक, इस तरह हम खड़े हो गए। ट्रक के भर जाने पर वह स्टार्ट हुआ। कैदियों को ले जानेवाले ये ट्रक शाम को जहाँ भी पहुँचते वहीं रुककर कैदियों को उतार देते और आगे बढ़ जाते थे। कैदी वहीं पड़े रहते और सुबह जब दूसरा खाली ट्रक मिलता तो उसमें चढ़कर फिर आगे बढ़ जाते थे। ऐसा करते-करते एक शाम हम डेरना नामक देहात में जा पहुँचे। बड़ा सुंदर देहात था, हरे-भरे बागीचे, पेड़-पौधे, और सुंदर बनावटवाले घरोंसे सुशोभित। मरुभूमि में सिर्फ वही एक गाँव हमें दिखा। "मरुभूमि का इकलौता हरे रंग का टुकड़ा,"

ऐसा उसका वर्णन किया जाता है। रात के मुकाम के लिए डेरना उतर पड़े।

हमारा सफर किनारे के आसपास टोब्रुक के वायव्य में हो रहा था। युद्ध टोब्रुक के पूर्व में चल रहा था। इस सफर में हमपर पहरा देनेवाले इटालियन प्रहरियों का बर्ताव बड़ा अमानुषिक था। वे अपने पास का पानी तक बेचते थे। मामूली आधा कप पानी के लिये वे पाँच पौंड याने करीब-करीब ७०-७५ रुपये तक लिया करते थे और प्यास से व्याकुल कैदी इतने रुपए भी दे देते थे। सफर में जहाँ भी हम ठहरते, वहाँ हमारी तलाशी ली जाती थी। डेरना में उतरने पर हमारी इसी तरह तलाशी ली जा रही थी। तलाशी के समय एक इटालियन प्रहरी की लालची नज़र हमारे साथ के एक वृद्ध ब्रिटिश कर्नल के ऐनक पर पड़ गई। उसके ऐनक की डंडियाँ सोने की थीं और काँच फीके नीले रंग के थे। इटालियन प्रहरी को लगा कि वह सोने की डंडियोंवाली धूप की ऐनक ही है। प्रहरी ने कर्नल से फरमाइश की—"वह गॉगल मुझे दे दो।" कर्नल ने उसे हर तरह से समझाकर बताया कि वह गॉगल नहीं, बल्कि उसके देखने का चश्मा है। पर उस प्रहरी ने एक न सुनी और गुस्से में आकर उस बूढ़े कर्नल के गाल पर एक ज़ोर का घूँसा जमा दिया और चश्मा एकदम नीचे गिर पड़ा। उस प्रहरी ने अपने मजबूत फौजी जूते चश्मे पर रखकर उसके काँच के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। घूँसे के प्रहार से बूढ़ा कर्नल नीचे गिर पड़ा था। चश्मा फूट जाने के कारण उसकी हालत अंधे जैसी हो गई थी। हम यह सब देख रहे थे। हमारा खून खौल रहा था। मुठ्ठियाँ कस रही थीं परंतु उस वृद्ध कर्नल को सहारा देकर साथ-साथ ले जाने के सिवा हम कुछ भी नहीं कर पा रहे थे।

हमारी तलाशी हो जाने के बाद हमें चौकी के पीछेवाले एक कब्रिस्तान में जाने का हुक्म मिला। प्रकृति का वरदान प्राप्त देहात में भी हमारे हिस्से में कब्रिस्तान ही पड़ा था। हम से जताकर कह दिया गया था कि जो भी भाग जाने की कोशिश करेगा उसे तत्काल गोली मार दी जाएगी। हमपर हब्शी अबीसीनियाई प्रहरी रखे गए थे। उस रात ज़िंदा रहते हुए भी हम कब्रिस्तान में रहे। लेंबर्ट, ज़ीरो और मैं, हम तीनों दो कब्रों के बीच की जगह में सोए; जर्मन अधिकारी से मिला कम्बल बिछाया और उन दोनों के दो ग्रेट कोट हम तीनों ने मिलकर ओढ़े। सोते-ऊँघते-से थे कि मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई। हम भीगकर तर हो गए थे परंतु वहाँ से हट नहीं सकते थे। कब्रिस्तान में उसी तरह भीगी हुई स्थिति में हमने बची हुई रात गुज़ारी।

लैंबर्ट, ज़ीरो और मैं, दो कब्रों के बीच...

सूरज निकलने के कुछ देर पहले भोर के उजाले में हमारा एक सिपाही जान से मार डाला गया। उसे लघुशंका के लिए जाना था। हमने उससे कहा कि जहाँ बैठा है वहीं लघुशंका कर लो। ज़रा भी हिलो मत, न कहीं जाओ। एक तो वह पहले ही लड़ाई में ज़ख्मी हो चुका था। एक गोली उसकी जाँघ से आर-पार निकल गई थी। उसे भयानक पीड़ा हो रही थी। पर, उस स्थिति में भी जहाँ बैठा था वहीं लघुशंका करने में उसे संकोच हुआ और वह सरकते-सरकते आगे जा रहा था कि इसी समय उसकी हलचलों पर निगरानी रखनेवाले प्रहरी ने उसपर निशाना लगाकर बंदूक का घोड़ा दबा दिया और वह बेचारा कैदी एक क्षण में ढेर हो गया।

कब्रिस्तान की वह रात समाप्त हुई और दूसरे दिन हमें पश्चिम दिशा की ओर रवाना किया गया। उस समय हमें आधी कड़ी डबलरोटी और पनीर का टुकड़ा, सिर्फ इतना ही खाने को दिया गया और पीने को थोड़ा पानी भी मिला। हमने पानी पी तो लिया ही, साथ ही बोतलें भी भर लीं। इसके बाद ट्रकों से हम डेरना से बारची के लिए रवाना हुए। रास्ते में कोई देहात या शहर पड़ता तो हमारे ट्रकों को जानबूझकर उस बस्ती में ले जाया जाता। वहाँ के स्त्री-पुरुष और बच्चे हम कैदियों का अपमान करने के लिए दाहिने हाथ का अँगूठा दबाकर यह सूचित करते हुए हमें मुँह चिढ़ाया करते कि लो, तुम हार गए। चर्चिल ने अँगूठे के नज़दीक की दो अँगुलियों को खड़ा कर 'वी' का आकार बनाने और उसे विजय की सूचना 'वी फॉर विक्टरी' का चिह्न मानने को कहा था। यह उसीका प्रत्युत्तर था।

अंत में हम बारची पहुँचे। छावनी में प्रवेश करने से पहले हमारी तलाशी ली गई। छावनी में बैरकें बनी थीं। प्रत्येक बैरक में ५० से लेकर १०० कैदियों तक के रहने और सोने का इंतज़ाम था। रेलगाडी के तीसरे दर्जे में जिस प्रकार के बर्थ होते हैं, उसी तरह का प्रबंध सोने के लिए इन बैरकों में था। यहाँ रोज़ सुबह आठ बजे हमारी गिनती की जाती थी। यहाँ हम लोगों से कहा गया कि हम अपने ही उच्च अधिकारियों में से अपने प्रतिनिधि चुन लें। हम लोगों में १०-१५ उच्च अधिकारी थे। हमने अंदाज़न २५-२५ के अलग-अलग दल बनाए। एक कर्नल हमारे दल के प्रतिनिधि हुए। यहाँ हमें दिन में दो बार खाना मिलता था। गोश्त (घोडे का या गाय का), पनीर, सेवई, हरी सब्ज़ी, डबलरोटी के पतले टुकडे, भरपूर पानी और महज़ स्वाद के लिए नमक डालकर पकाई गई करीब एक बड़े कलछेभर खिचड़ी सुबह-शाम मिलती थी। इस खाने को रखने के लिए हर एक को एक-एक मग दे दिया गया। सुबह आठ बजे हमारी जाँच हो जाने के बाद हम कॅम्प के आसपास घूमा करते। बैरकों से कुछ दूरी पर काँटेदार तारों की बाड़ थी। इन तारों में बिजली भर दी गई थी जिससे यदि कोई भागने की कोशिश करे तो तार को स्पर्श करते ही बिजली का धक्का लगे। कॅम्प के चारों कोनों में १५ फुट की ऊँचाई पर बनाए गए लकड़ी के सेन्ट्री बाक्सों में फ्लड लाइट्स (अत्यंत तेज़ रोशनी के दीये) थे। वहाँ प्रहरी खड़े रहते थे। इसके अलावा गश्ती प्रहरी तो थे ही।

इस कैदी जीवन से धीरे-धीरे अभ्यस्त होने की हम कोशिश करने लगे। समय काटने के लिए हममें से कुछ कैदी अपनी-अपनी रुचि के विषयों पर भाषण देते। कुछ लोग कहानियाँ सुनाते। हमपर पहरा करनेवाले इटालियन प्रहरी उत्तम गायक थे। एक सिगरेट के बदले में वे हमें गाना सुना देते थे।

कॅम्प को साफ-सुथरा रखने की सारी ज़िम्मेदारी हमीं लोगों पर थी। कॅम्प को झाड़-बुहारकर स्वच्छ करना, कचरा एक निश्चित दूरी पर जाकर फेंकना, ये सारे काम हमें ही करने पड़ते थे। अपने पाखाने भी हमें ही साफ करने पड़ते थे। यह काम हम बारी-बारी से करते थे।

ठंडे पानी के नल पर नहाने का इंतज़ाम था। मेरे पास तो पूरे कपड़े भी नहीं थे। एक शर्ट, एक हाफ पैंट, एक तौलिया और उस जर्मन अधिकारी से मिला एक कम्बल, बस इतने ही कपड़े थे मेरे पास। इस कॅम्प में इतने पर ही मुझे गुज़र करनी पड़ी।

कॅम्प में रोमेल की गरुड़-उड़ानों के वर्णन हमारे कानों में पड़ा करते। हमपर पहरा करनेवाले सैनिक और सुबह हमारी हाज़िरी लेने आनेवाले इटालियन अधिकारी बड़े गर्व से उसके पराक्रम का वर्णन हमें सुनाया करते। नये आए कैदियों से पता चला कि रोमेल सिकन्दरिया तक पहुँच गया है। जर्मन रेडियो से रोमेल की बहादुरी के वर्णन प्रसारित किए जा रहे थे। जर्मनों का दावा था कि थोड़े ही दिनों में वे कैरो पर कब्जा कर लेंगे, अफ्रीका का युद्ध खत्म कर देंगे और फिर हिंदुस्तान की ओर मुड़ेंगे।

हमें यह भी पता चला कि जर्मन रेडियो के प्रचार का चर्चिल ने उत्तर दिया है। चर्चिल ने यह धमकी दी थी कि अफ्रीका का तमाम प्रदेश तो हम जीतेंगे ही, पर यह भी देखेंगे कि कैसे हमारे सैनिकों और अफसरों को भूमध्यसागर के पार ले जाते हो। प्रत्येक जहाज़ पर बम-वर्षा करके हम अपने सैनिकों को मुक्त करके ही रहेंगे।

चर्चिल की इस धमकी को मद्देनज़र रख शत्रु ने हमें इस कॅम्प से कहीं अन्यत्र हटा देने की एक अलग ही योजना बनाई। जहाँ तक संभव हो अधिकारियों को अपने कब्ज़े में रखना ही चाहिए ऐसा निश्चय कर सबसे पहले हम अधिकारियों को ही यहाँ से हटाना तय किया गया। हमें चौबीस घंटे का नोटिस देकर हमारी रवानगी बारची से बेंगाज़ी कर दी गई।

फिर वही सारी बातें—देहात-देहात जुलूस-सा बनाकर स्त्री-पुरुषों और बच्चों से अँगूठा दिखवाकर हमारा अपमान कराया गया; सारा नाटक खेला गया।

कुल मिलाकर चौवीस हवाई जहाज़ों ने कैदियों को हटाने का काम शुरू किया। १२ हवाई जहाज़ अफ्रीका से निकल्कर भूमध्यसागर पर से इटली के लिची हवाई-अड्डे पर हमें उतार देते। इसी समय दूसरे बारह हवाई जहाज़ बेंगाज़ी के हवाई-अड्डे पर दूसरी टोली को ले जाने के लिए तैयार रहते। हमें बेंगाज़ी हवाई-अड्डे तक पहुँचानेवाले ट्रक लौटकर पुनः बारची जाते और वहाँ से कैदियों को भरकर पुनः इस हवाई-अड्डे पर आते। इसके बाद वह दूसरी टोली इटली ले जाई जाती। इस तरह पाली-पाली से कैदियों को हटाया जा रहा था। मैं और मेरे साथ के सैनिक पहली ही पाली में चले गए। हर जहाज़ में, प्रहरियों को मिलाकर लगभग ५० आदमियों को ले जाया जाता था। दर असल ये हवाई जहाज़ टैंक ढोनेवाले जहाज़ थे। उन्हींमें कैदियों को ले जाने के लिए अस्थायी प्रबंध कर दिया गया था।

हवाई जहाज़ से जाते वक्त हमें यह दिखाई दिया कि हमपर पहरा रखनेवाले चारों प्रहरी सुध खोकर मज़े में सो रहे थे। हमारे मन में एकदम विचार आया, यदि इस हवाई जहाज़ पर कब्जा कर हम इसे मनचाहे स्थान पर उड़ाकर ले जाएँ तो बडा अच्छा हो। परंतु इस काम के लिए हममेंसे कम-से-कम किसी एक का विमान-चालक होना ज़रूरी था। यह जानने के लिए कि क्या हममेंसे कोई चालक है, हमने एक चिट्ठी लिखकर चोरी-चोरी सब लोगों में घुमाई। पर दुर्भाग्य से हममें हवाई जहाज़ का एक भी चालक नहीं था। मुक्ति का एक सुनहरा मौका हाथ आया था पर हमारी किस्मत ने हमें साथ न दिया। कुछ न बोल हताश होकर हम एक-दूसरे की ओर देखते चुपचाप बैठे रहे। दो-ढाई घंटे के भीतर ही भूमध्यसागर पार करके हम लिची के हवाई-अड्डे पर उतरे। यहाँ से हमें बारी की कैदियों की छावनी में ले जाया जानेवाला था।

# ११

# अॅल्हर्सा

*अगस्त १९४२-अगस्त १९४३*

ची आने पर हममें जो भिन्न-भिन्न देशों के कैदी थे, उन्हें युद्धकालीन अन्तर्राष्ट्रीय नियमानुसार, भिन्न-भिन्न छावनियों में भेज दिया गया। पर हमें दो-तीन घंटे हवाई-अड्डे पर ही रोक लिया गया क्योंकि हमें लानेवाले बारह हवाई जहाज़ों में से एक हवाई जहाज़ लिची पहुँचा ही नहीं था। दो-तीन घंटे के बाद हमें ट्रक से लिची हवाई-अड्डे से करीब २५-३० मील दूर स्थित बारी गाँव के कैम्प में ले गए। हम सब मिलाकर कोई १०० भारतीय कैदी थे। बारी पहुँचने पर भी पहले तीन-चार दिन हमारी टुकड़ी को सब से बिलकुल अलग रखा गया। सुबह-शाम हमसे पूछताछ की जाती थी। कसकर जानकारी पाने की कोशिश की जा रही थी कि हममें जहाज़ी बेड़े के कौन हैं, तोपखाने के कौन हैं, हवाई जहाज़ के चालक कौन हैं। जो हवाई जहाज़ लिची नहीं पहुँचा था, उसके कैदियों के मन में हमारे समान ही हवाई जहाज़ पर कब्ज़ा करके उसे कहीं अन्यत्र उड़ा ले जाने का विचार आया होगा। सौभाग्य से उन लोगों में एक विमान चालक भी था। इस कारण उसका प्रयोग सफल हो गया। उसने वह हवाई जहाज़ माल्टा पर जाकर उतारा। यही कारण था जो हमपर इतने कड़े नियंत्रण लगा दिए गए थे।

तीन-चार दिन के बाद हमें बारी के अन्य कैदियों में शामिल कर दिया गया। कॅम्प में प्रवेश करते समय फिर एक बार हमारी तलाशी आदि ली गई। यहाँ की बैरकों में रहने-सोने का इंतज़ाम, बिजली से भरी कँटीदार तारों की बाड़ इत्यादि सब बातें बारची के कॅम्प के समान ही थीं परंतु यह कॅम्प बारची के कॅम्प से बड़ा था और उस कॅम्प की अपेक्षा यहाँ कुछ अच्छी व्यवस्था थी। सुबह हमें यहाँ चाय अथवा कॉफी मिलने लगी। और जो चाहता उसे सिगरेट का एक पॅकेट भी, सप्ताह में एक के हिसाब से, मिल जाता था। व्यसनाधीन लोगों की विवशता के कुछ नमूने इस कॅम्प में मुझे देखने को मिले। धूम्रपान का तीव्र व्यसन रखनेवाले अधिकारी जो मेजर और कर्नल जैसे ज़िम्मेदार ओहदों पर थे, सिगरेट के एक पॅकेट से तलब न बुझने के कारण दूसरों द्वारा पीकर फेंक दिए गए सिगरेट के छोटे-छोटे टुकड़ों को इकट्ठा करते और उन्हें पाइप में भरकर पीते थे। उस समय वे अधिकारी नहीं रह जाते थे; अपने व्यसन के गुलाम बन जाते थे। हमें सिगरेट, चाय, कॉफी आदि चीज़ें जो यहाँ दी जाती थीं, वे मुफ्त में नहीं मिलती थीं। उनके मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार तटस्थ राष्ट्रों के ज़रिए हमारे वेतनों से वसूल किए जाते थे। हिन्दुस्तान में हमारा जो वेतन जमा होता, इन पैसों को काटकर ही जमा होता था।

बारी में तीन महीने रहने के बाद एक दिन हमें रेलगाड़ी से दूसरी जगह ले जाया गया। रेलगाड़ी के डिब्बे बहुत अच्छे थे। हर एक के लिए अलग-अलग कुर्सियाँ, उनपर मखमल की गद्दी, भीतर-ही-भीतर एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे में जाने का इंतज़ाम उस गाड़ी में किया गया था। परंतु हमारे गाड़ी में प्रवेश करते ही डिब्बों की सब खिड़कियाँ और दरवाज़े कीलें ठोंककर बंद कर दिए गए। डिब्बों के भीतर आवागमन का जो मार्ग था, उसमें हमपर पहरा करनेवाले प्रहरी जगह-जगह पर खड़े थे। कोई तीन दिन तक हमने यह सफर किया होगा। बाद में हमारी गाड़ी ॲव्हर्सा आकर खड़ी हुई। हम नीचे उतरे और हमारे प्रहरियों के आदेशानुसार पैदल चलकर स्टेशन से एक-दो मील दूर, छावनी पहुँचे। ॲव्हर्सा नेपल्स से १०-१२ मील दूर है।

ॲव्हर्सा कॅम्प की रचना और प्रबंध अब तक के सभी कॅम्पों की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित था। बैरक के एक-एक कमरे में दो-दो कैदियों के रहने-सोने का इंतज़ाम था। बैरक के सामने बरामदा था। कमरे में सोने के लिए हर एक को खाट और गद्दा मिलता था। अपनी रसोई खुद बनाने का भी प्रबंध था और इसके लिए

अलग रसोईघर और भोजनगृह की व्यवस्था थी। प्रत्येक अधिकारी को हमारे जवानों में से ही एक जवान सेवक की तौर पर दे दिया गया था। कमरों को झाड़-बुहारकर साफ रखने, बिछौना तैयार करने का काम वही नौकर किया करता था। संडास फ़्लश के होने के कारण पाखाना साफ करने की गरज नहीं रह गई थी।

अब हमें भिन्न-भिन्न देशों की रेड-क्रॉस संस्थाओं की तरफ से पार्सल भी मिलने लगे। उन पार्सलों में गोश्त, मछलियाँ, पनीर, दूध, टमाटर इत्यादि खाद्य पदार्थों के डिब्बे हमें मिलते। ये पार्सल ऑस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, अमेरिका और हिंदुस्तान आदि देशों से आया करते और उनमें हमारे लिए जो चीज़ें आतीं, वे युद्ध-काल में यूरोप और हिंदुस्तान के शहरी जीवन में नियंत्रित (रेशंड) रहा करती थीं। उसमें विटामिन युक्त चॉकलेट का बार भी रहता। अंडे की बुकनी मिलती जिसे पानी में घोल-कर और प्याज डालकर हम ऑमलेट बना सकते थे। इसके साथ ही चाय, चीनी इत्यादि अन्य भी बहुत से पदार्थ हमें उन पार्सलों में मिलते।

इस कॅम्प में हमने आपस में काम का बँटवारा कर लिया और हर एक को काम बाँट दिया गया। पढ़ाई की कक्षाएँ शुरू कीं। मैं अंग्रेज़ी पढ़ाने लगा। शाम चार बजे हाज़िरी हो जाने के बाद हम हॉकी-फुटबॉल आदि खेल भी खेला करते। इसके बाद हम तार की बाड़ के नज़दीक खड़े हो जाते और पासवाली सड़क से घूमने जानेवाले गाँव के लोगों को देखा करते। अपनेसे भिन्न लोगों को देखना भी संतोष और आनंद का विषय हो गया था; यह देखकर मानवी मन के गठन पर मुझे आश्चर्य हुआ।

कभी-कभी हम मनोरंजन के कार्यक्रम भी किया करते। हमारे कॅम्प के प्रतिनिधि हमारे सबसे वरिष्ठ अधिकारी मेजर के थे। उनका पूरा नाम कुमार-मंगलम् था। परंतु हम उन्हें मेजर 'के' के नाम से ही संबोधित किया करते। हमारे सब व्यवहार उन्हींके ज़रिए हुआ करते। रेशन लाना, डाक लाना आदि काम हम ही करते थे। हम हिंदुस्तान पत्र भी भेजते थे। परंतु पत्र में गाँव का नाम, छावनी का स्थान, सेना की हलचलें और शिकायतें आदि बातों के लिखने की सख्त मनाही थी। इस पर भी यदि किसी ने ऐसी कोई बात लिख ही दी तो सेंसर उस मज़मून को इस तरह काटकर ही कि उसे कोई पढ़ न सके, पत्र आगे रवाना करता था। इस कॅम्प में कैदी थे सही, परंतु कैद में होने के सिवा अन्य किसी भी तरह की तकलीफ या परेशानी इस बार नहीं थी।

मैं : ब्रॅव्हर्सा कॅम्प में

हमारे इस कॅम्प में रहते समय ही बड़े दिन का त्यौहार आया। इस त्यौहार को हम खूब आनंद से मना सकें इसलिए हमें कुछ सहूलियतें मिलीं। रेशन में हमेशा 'वीनो' नाम की शराब जिन्हें ज़रूरत होती, मिलती थी। बड़े दिन का त्यौहार होने के कारण रेशन में 'मर्साला' नाम की एक अधिक ऊँची किस्म की शराब हमें दी गई। रेशन में हमें शीतगृह (कोल्ड स्टोरेज) में रखा बीफ अथवा घोड़े का गोश्त मिलता था। उस गोश्त के टुकड़ों पर १९३४-१९३५ के ठप्पे रहते थे। रेशन में भी वृद्धि की गई। परंतु इन सब चीज़ों के मूल्य अलबत्ता हमसे बड़े कसकर लिए गए। महज़ एक 'टर्की' के लिए हमें लगभग ढाई सौ रुपए देने पड़ते थे।

एक बार ईसाइयों के धर्मगुरु पोप के एक प्रतिनिधि रोम से हमारा कॅम्प देखने आए। वे कॅम्प में घूमकर सब से मिले। सब को उन्होंने धीरज बँधाया। हमें उन्होंने छोटे-छोटे तमगे जिन पर प्रभु ईसा की मूर्त्ति अंकित थी, भेंट किए। मुझे बाइबिल की एक छोटी-सी—करीब दो इंच लंबी और दो इंच चौड़ी प्रति मिली। उन्होंने हम सब के नाम लिख लिए। उन्होंने हमसे कहा कि हमारे रिश्तेदारों को यह खबर देने के लिए कि हम सब यहाँ कुशलपूर्वक हैं, पोप रेडिओ से भाषण देनेवाले हैं। हमें इस संकट से छुटकारा मिले इसलिए पोप ईश्वर से प्रार्थना करते रहते हैं यह भी उन्होंने हमें बतलाया।

इस तरह इस कॅम्प में हमारे दिन मज़े से कट रहे थे। हमें यहाँ किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं था। प्रत्युत, सहूलियतें थीं। फिर भी यह भुला देने से काम नहीं चलनेवाला था कि ये सुख और सहूलियतें पिंजरे की हैं। उसी तरह हमें यह भी याद रखना था कि दुश्मन की कैद से अपने आप को स्वयं रिहा कर लेना युद्ध-नीति में युद्ध-कैदी का कर्तव्य ही माना जाता है। इसलिए जैसे-जैसे हम संगठित होने लगे वैसे-वैसे अपने आपको दुश्मन की कैद से रिहा कर लेने का रास्ता खोजने लगे। एक बार हमने बैरक से बाहर की सड़क तक ज़मीन के भीतर सुरंग खोदकर भाग जाने का प्रयत्न किया। पर बीच ही में हम पकड़ लिए गए और हमारा वह प्रयत्न असफल रहा। जब शत्रु को हमारे भाग जाने के प्रयत्न का पता चल जाता तब हमारी बड़ी दुर्दशा की जाती। आठ-आठ दिन तक हमें एकान्तवास (सॉलिटरी कन्फाइनमेंट) की सज़ा मिला करती। इस सज़ा में कैदी को एक छः फुट लंबी और चार फुट चौड़ी कोठरी में बंद कर दिया जाता। चारों तरफ ऊँची-ऊँची दीवारें रहतीं। दीवारों के बिल्कुल ऊपर एक छोटी-सी हवा आने लायक खिड़की होती। इसमें भी ऐसी सावधानी बरती जाती कि उस खिड़की में से कैदी को आकाश का छोटा-सा नीला टुकड़ा भी दिखाई न दे। सिर्फ ऊँची-ऊँची दीवारें! उसे सिर्फ एक बार सुबह बाहर निकाला जाता और दो बार कटोरा भर लपसी दी जाती। यह आतिथ्य एक बार चार दिन के लिए मुझे भी भोगना पड़ा था।

भाग जाने के प्रयत्न में जब हम पकड़ लिए जाते तो बिगुल बजाकर रात को हमें बैरक के बाहर खड़ा किया जाता। उस समय कड़ाके की ठंड होती। मेरी बड़ी ही दुर्दशा होती क्योंकि मेरे पास बहुत ही कम कपड़े थे। अन्त-र्राष्ट्रीय युद्ध-नीति के अनुसार युद्ध-कैदियों के कॅम्प में कपड़े सिर्फ सैनिकों

को दिए जाते। अधिकारियों को कपड़े देना उनके अपने देशों की ज़िम्मेवारी होती। इस कारण हमें वहाँ कपड़े नहीं मिलते थे। पर हमारे जवानों को अलबत्ता दिए जाते थे। कपड़ों के अभाव में हो रही हमारी दुर्दशा हमारे जवानों से देखी नहीं जाती थी। वे हमें बड़े आग्रह से आप कपड़े देना चाहते। कहते—"साहब हमारे पास दो-दो जोड़ी हैं। आप कृपा कर उनमें से एक रख लें।" परंतु अपने हक से प्राप्त हुए उनके कपड़े हमने कभी नहीं लिए। ॲव्हर्सा में रहते समय कड़ाके की सर्दी में भी हम ठंडे पानी से नहाया करते। पानी जम जाता। और ऊपर बर्फ की परत आ जाती। परत तोड़कर उस पानी से हमें नहाते देख हमारे इटालियन प्रहरी तो यही समझने लगे कि हम पागल हो गए हैं। पर मैंने जनवरी के प्रथम सप्ताह में नहाना बंद कर दिया था, क्योंकि ठंड अत्यंत तीव्र थी। इस पूरी अवधि में, याने करीब एक साल में, गरम पानी से हमें सिर्फ दो बार ही नहाने को मिला। स्नान करने के लिए एक ट्रक में चलता-फिरता गुसलखाना (मोबाइल बाथ यूनिट) रहा करता। उस ट्रक में कीटनाशक दवाएँ, पानी गरम करने के यांत्रिक साधन और नल से गरम पानी छोड़ने की सुविधा रहा करती। केनवस के अस्थायी रूप के कमरे भी होते जिनके भीतर जाकर स्नान कर सकते थे। स्नान करने की कैदियों को सख्ती नहीं थी। फिर भी उस कड़ाके की ठंड में गरम पानी की उस सहूलियत का सब लोग फायदा उठाते थे।

अन्तर्राष्ट्रीय नियम के अनुसार, हम लोगों में जो डाक्टर थे, वे इसी कॅम्प से, छः महीने पूरे हो जाने के कारण रिहा कर दिए गए और उन्हें उनके देश भेज दिया गया। हमारे कॅम्प के डा. वैसास के साथ अपने घर देने के लिए मैंने एक पत्र दिया। उस डाक्टर की गुरखाटोपी की एक परत मैंने खोली और उसमें वह पत्र तथा कैदी-अवस्था में खिंचवाया हुआ अपना फोटो, ये दोनों चीज़ें रखकर, उस परत को फिर से ज्यों-का-त्यों सी दिया। जानेवाले डाक्टरों को हमने विदा दी। उस समय यह देखकर कि वे तो अपनी मातृभूमि जाएँगे और हम अलबत्ता यहीं परदेश में कैदी बने पड़े रहेंगे, हमें बड़ा बुरा लगा। हमारे साथ के डाक्टर चल दिए और उनकी जगह काम करने के लिए इटालियन डाक्टर आने लगे।

इस कॅम्प में बीमार कैदियों के इलाज की भी अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध थीं। इसके लिए एक अलग कमरा था। बीमार कैदी उस कमरे में ले जाए जाते जहाँ

उनके स्वास्थ्य की पूरी जाँच की जाती और दवा दी जाती। डाक्टर की सिफारिश से बीमारों के खान-पान की व्यवस्था की हम लोग कोशिश करते। हमें रेड-क्रॉस के डिब्बों से प्राप्त होनेवाली दूध, चावल जैसी चीज़ें हम उन्हें दिया करते।

हमें जो पार्सल मिला करते, वे सप्ताह में फी कैदी एक पार्सल के हिसाब से दिए जाते थे। इधर हमारे इटालियन पहरेदारों के रेशन में काफी कटौती कर दी गई थी और हमने यह देखा कि उन्हें मिलनेवाला अन्न दिनोंदिन निकृष्ट होने लगा था। वे जब हमारा अन्न देखते और अपने अन्न से उसकी तुलना करते तो उन्हें वह फर्क बड़ी तीव्रता से महसूस होने लगता। आगे चलकर तो हमारे पहरेदार हमारे पास के अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ माँगने लगे थे। हम भी जितना संभव होता, उतना उन्हें देने लगे। चार साल तक उनकी मातृभूमि पर लड़ाई चल रही थी और दोस्त-राष्ट्रों की सेनाएँ उनकी भूमि पर आकर उतरी थीं। इसलिए उनके देश की आर्थिक स्थिति एकदम ही गिर गई थी और इसके फलस्वरूप वे इस गड़बड़ी के शिकार हो गए थे।

कुछ दिनों के बाद जहाँ हम रहे थे वहाँ से एक-दो मील दूर के एक रेल्वे-जंक्शन पर आक्रमण करने के उद्देश्य से मित्र-राष्ट्रों के हवाई जहाज़ों ने बम-वर्षा शुरू की। वह इतनी भयंकर थी कि उसके कारण कच्ची नीवों पर बनी हमारी बैरकें हिलने लगीं। एक बार हमारे बैरकों पर आसमान से परचे डाले गए। उन परचों में यह खबर थी कि मित्र-राष्ट्रों की फौजें सिसली में उतर चुकी हैं और उत्तर की तरफ बढ़ रही हैं। हमें यह आश्वासन भी दिया गया था कि बम-वर्षा करनेवालों ने तुम्हारा कॅम्प देख लिया है। इसलिए बम-वर्षा से घबराने या डरने की कोई वजह नहीं।

युद्ध के दौरान एक अन्तर्राष्ट्रीय नीति का पालन किया जाता था कि अस्पतालों और कैदियों के कॅम्पों पर बम न डाले जाएँ। इसलिए जहाँ अस्पताल होते या कैदियों के कॅम्प होते वे स्थान रात में प्रकाशित रखे जाते थे। प्रकाश के कारण हवाई जहाज़ों के चालकों को यह मालूम हो जाता था कि नीचे अस्पताल या कैदियों का कॅम्प है। परंतु हमारे इटालियन पहरेदार इस संकेत का पालन नहीं करते थे। रात को वे हमारे बैरकों में अँधेरा कर देते थे। इस कारण हमें यह डर लगा करता कि किसी दिन हम कहीं अपने ही दोस्तों की बम-वर्षा के तो शिकार नहीं हो जाएँगे।

हमारे भय की प्रतिक्रिया यह हुई कि हमारे नेता मेजर 'के' इटालियन

अधिकारी से जाकर मिले और उनसे यह माँग की कि या तो रात को हमारा कॅम्प प्रकाशित रखा जाए या फिर हमें यहाँ से हटाकर कहीं अन्यत्र ले जाया जाए। उस अधिकार ने कहा—"तुम चिंता मत करो। हम जल्द ही तुम्हें यहाँ से दूसरी जगह ले जा रहे हैं।"

कुछ ही दिनों में इटालियन अधिकारी ने हमें सूचित किया कि हमें हटाया जा रहा है। रेड-क्रॉस से आनेवाली बहुतसी चीज़ें विशेषतः खाद्य-पदार्थों के डिब्बे हमने संचित कर रखे थे। हमने इटालियन अधिकारी से यह माँग की कि उन सब डिब्बों को अपने साथ ले जाने की हमें इजाज़त दी जाए। उसने बताया कि जितनी चीज़ें तुम ख़ुद अपने साथ ले जा सकते हो, उतनी ही चीज़ों को ले जाने की तुम्हें इजाज़त है। तुम्हारा सब सामान बटोरकर ले जाने के लिए हमारे पास यातायात के उतने साधन नहीं हैं। यह कहने का उसका धूर्त उद्देश्य यह भी रहा होगा कि हमारी बची हुई सब चीज़ों पर इटालियन अफ़सर कब्ज़ा कर लें और खूब दावतें उड़ाएँ।

अगर इटालियनों को उन चीज़ों का लालच लग रहा था, तो हमें भी आगे चलकर उन चीज़ों की अत्यंत आवश्यकता थी। अपने साथ के झोलें में जितने भरे जा सकते थे उतने भिन्न-भिन्न चीज़ों के डिब्बे तो हमने साथ ले ही लिए, पर गोश्त, चॉकलेट, दूध, अंडे, पनीर, कॉर्नफ्लोअर, बिस्कुट, मक्खन, इन सब चीज़ों का एक लौंदा-सा बनाकर हमने उसकी केक बना ली। उस केक या रोटी में अधिक-से-अधिक विटामिन होने के कारण उसका एक टुकड़ा भी दिन भर के लिए काफी रहेगा; इसी इरादे से हमने यह सारा प्रयास किया और प्रत्येक को एक-एक रोटी दे दी। आवश्यकता आविष्कार की जननी है, यह उक्ति कितनी सार्थक है!

हम इस तरह तैयार हुए और एक दिन शाम को अँधेरा हो जाने के बाद हमें रेल्वे-स्टेशन पर ले जाया गया। जिस स्टेशन पर हम एक वर्ष पहले उतरे थे, उसी स्टेशन पर हमें उसी तरीके से, याने डिब्बों में ठूँसकर और उनके सारे दरवाज़े और खिड़कियाँ कील ठोंककर बंद करके हमें गाड़ी में बैठाया गया और हर डिब्बे में प्रहरी रख दिए गए। इस ठाठ से हमारा सफर शुरू हुआ। रास्ते में कभी दरारों में से हम कहीं ज़रा बाहर देखने की कोशिश करते तो प्रहरी हमपर बरस पड़ता। रवाना होने के तीन दिन बाद हम इष्ट स्थल पर पहुँचे और 'अवज्जानो' के कॅम्प में दाखिल हुए।

# १२

# अवज़्ज़ानो

*सितंबर १९४३*
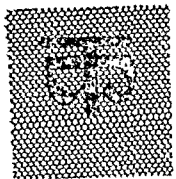
रोज ११ या १२ सितंबर को जब हम अवज्जानो कॅम्प में थे, हमें आश्चर्य का धक्का देनेवाली एक घटना हुई। रात करीब आठ या साढ़े आठ बजे, कॅम्प के बाहर नाचते-गाते आनेवाले इटालियन सैनिकों को देखकर, हमें अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हो पा रहा था। यह मालूम होने से पहले ही कि क्या माजरा है, वे इटालियन सैनिक "अमीको" "अमीको" याने "हम मित्र हैं" "हम मित्र हैं" चिल्लाते हुए हमारे कॅम्प में घुस पड़े। उन्होंने अपनी बंदूकें नीचे रख दीं और वे बड़ी खुशी से हमसे हाथ मिलाने लगे। उन सैनिकों ने हमको बतलाया कि इटालियन सेना ने मित्र-राष्ट्रों से संधि कर ली है। यह समाचार पाकर दस-पन्द्रह मिनिट भी नहीं हुए थे कि उनका एक अफसर रेडियो लेकर आ पहुँचा। उसने बी. बी. सी. स्टेशन लगाया। कैद होने के बाद हम वह स्टेशन प्रथम बार ही सुन रहे थे।

बी. बी. सी. ने ऐलान किया कि अब इटालियन हमारे शत्रु नहीं। उन्होंने संधि-पत्र लिख दिया है। हमारे प्रधान-मंत्री ने नये दोस्तों को सूचना दी है कि वे अंग्रेज़ों की सेना के युद्धकैदियों को खूब सहूलियतें दें और हर

तरह से उनकी मदद करें। खुद कैदियों को याने हमें लक्ष्य कर कहा गया कि सब मोर्चों पर हमारी जीत हो रही है। तुम लोग अपने आपको रिहा कर लेने की अधिक से अधिक कोशिश करो। इटालियन नागरिक निश्चित ही तुम्हें सहयोग और सहायता देंगे।

उपर्युक्त घोषणा सुनते ही हम दस-बारह अधिकारी एक जगह एकत्र हुए और इस नयी घटना पर विचार करने लगे। थोड़ी ही देर में हमने फैसला किया कि आज ही रात दस बजे के बाद कॅम्प से बाहर निकलकर हम एक निश्चित स्थान पर इकट्ठा हों। निकलने से पहले हमें अपने साथ इतना अन्न ले लेना होगा जो कम-से-कम एक महीने के लिए काफी हो। इस तरह सारी तैयारी करके हम दस-बारह लोग काँटेदार तार की बाड़ से बाहर निकल पड़े। हम करीब दो फर्लांग चले होंगे कि हमारे सब से वरिष्ठ अधिकारी बोले—"थोड़ी देर रुक जाओ।" और हम रुक गए। बाद में वे हमसे बोले—"मैं नहीं सोचता कि हमारे भाग जाने में कोई खास मतलब या फायदा है। आज की स्थिति में भाग जाने से खतरा ही ज्यादा है। एक तो हम अश्वेत हैं। दूसरे, इटालियन भाषा हम नहीं जानते। हमारे पास पूरे कपड़े भी नहीं हैं। ऐसी स्थिति में यदि हम पुनः पकड़ लिए गए तो हमारी दुर्दशा की सीमा न रहेगी। एक-दो सप्ताह के भीतर ही जब हमारे सैनिक आकर हमें रिहा कर देनेवाले हैं, तब इस खतरे को मोल लेने से क्या फायदा?"

हमने उनकी बात सुनी। हमारी राय उनसे अलग थी। परंतु कॅम्प से बाहर निकलते ही अपने वरिष्ठ अधिकारी का हुक्म मानने की नैतिक ज़िम्मेदारी हमपर आ पड़ी थी। हमने उन्हें समझाने की भरसक कोशिश की कि इस समय यहाँ से चल देना ही अधिक फायदेमंद है। परंतु उन्हें हमारी बात जँचती नहीं थी। वे सब में वरिष्ठ थे। युद्ध का अनुभव भी हमसे बहुत अधिक था। इस कारण हमें अंत में उनकी राय जँची और हममें से दो को छोड़कर बाकी सब लोग जो करीब आठ-दस थे, कॅम्प लौट आए। जो दो चल दिए थे उन्हें वरिष्ठ अधिकारी ने इजाज़त दे दी थी और उसके बाद ही वे गए थे। हम जब वापिस आए तब रात काफी हो गई थी। करीब एक या डेढ़ बजा होगा। बाहर बरामदे में ही सोकर हमने वह रात गुज़ारी।

मैंने बरामदे में कम्बल फैलाया। आधे हिस्से पर लेटकर आधा हिस्सा बदन पर ओढ़ "हॅवरसॅक" का सिरहाना बनाकर लेट गया और तमाम

घटनाओं पर विचार करने लगा। हमने भाग निकलने का फैसला किया था वह ठीक था या हम लौट आए यह ठीक था, यह प्रश्न रह-रहकर मेरे मन में चक्कर काट रहा था। इसी स्थिति में धीरे-धीरे आँखें झँपने लगीं; लगा जैसे हम मुक्त हो गए हैं, वापिस हिंदुस्तान पहुँच गए हैं और आज़ादी से घूम रहे हैं। १०-१२ महीने के वनवास के बाद के ये विचार चाहे सुसंगत न हों, पर आशादायक अवश्य थे, इसमें शक नहीं।

दूसरे दिन सुबह करीब साढ़े सात बजे मैं जागा। उठकर देखा तो सब तरफ अनुशासन-हीनता और गड़बड़ी मची हुई दिखाई दी। कॅम्प में रहनेवाले हमारे बहुत से साथियों में से अनेक कॅम्प छोड़कर पहले ही चल दिए थे। कुछ जाने की तैयारी में थे। कोई किसी को पूछता नहीं था। कॅम्प का सारा स्वरूप ही बदल गया था। चाय पीने और सुबह का नाश्ता करने के लिए हम मेस में गए। पर वहाँ भी सब उलट-पुलट हो गया था। काफी प्रयास करके हमने चाय बनाई और थोड़ासा नाश्ता भी तैयार करके दोनों का स्वाद लिया। मेस से बाहर आए और हमें जो दृश्य दीख पड़ा उसके कारण हम जहाँ-के-तहाँ ठिठक गए। हथियारबंद जर्मन सैनिक हमारे कॅम्प की चारों दिशाओं से कूच करते चले आ रहे थे। आशाओं को तहस-नहस कर देनेवाला वह दृश्य अत्यन्त भीतिदायक था। बात-की-बात में उन्होंने हमारी आँखों के सामने कॅम्प पर कब्ज़ा कर लिया। स्थान-स्थान पर जर्मन प्रहरियों के पहरे लग गए और हम पुनः एक बार कैदी हो गए। आधे दिन की आज़ादी एक आभास, मृगतृष्णा सिद्ध हुई। कल रात कैंप में वापिस आकर मुक्ति का एक सुवर्ण अवसर हमने खो दिया इसका हमें पश्चात्ताप हुआ। पर, का पछताए होत जब चिड़ियाँ चुग गई खेत!

इटालियनों के शरणागति स्वीकार कर लेने के कारण जो गड़बड़ी मची, उसी समय में करीब चौबीस घंटों के भीतर ही जर्मनों के एक डिवीजन ने मध्य इटली पर कब्ज़ा कर लिया था और उसीमें हमारा कॅम्प भी उनके हाथ आ गया था। इसके दो दिन बाद याने १४ सितंबर ४३ की सुबह करीब ग्यारह बजे एक जर्मन अधिकारी ने सारे कैदियों को लक्ष्य कर माइक पर अंग्रेज़ी में भाषण दिया। उसने कहा—"आज १४ सितंबर से तुम्हारे कॅम्प का संपूर्ण अधिकार जर्मन सैनिकों ने ले लिया है। इटालियन अधिकारियों ने तुम्हारे साथ जैसा बर्ताव किया उससे अधिक अच्छी तरह से

हम तुम्हारे साथ बर्ताव करेंगे। यातायात के साधन न होने के कारण हम तुम्हें यहाँ से हटाएँगे नहीं। पर तुमने अगर भाग जाने की कोशिश की तो तुमपर गोलियाँ चला दी जाएँगी। हम अन्तर्राष्ट्रीय कानून मानेंगे। हम जानते हैं कि तुम भारतीय नागरिक किस स्थिति में ब्रिटेन के सैनिक बने हो और उसके कारण अब हमारे कैदी हो। हमारा वरिष्ठ अधिकारी तुम्हारे वरिष्ठ अधिकारी से आकर मिलेगा। अगर कोई शिकायत हो तो वह भी सुनी जायेगी।"

जर्मन अधिकारी का यह भाषण सुनकर हमने अंदाज़ लगाया कि हमें यहाँ से हटाने की तैयारियाँ हो रही होंगी। हमें विश्वास हो गया कि जर्मनों द्वारा यहाँ से हटाए जाने से पहले हमें भाग जाने का एक और अच्छा मौका मिल रहा है। हमें लगा कि नज़दीक ही अपने सैनिकों की बैरकें हैं; वहाँ रहने से हम जल्दी भाग सकेंगे।

मैंने और मेरे तीन साथियों ने मिलकर भाग जाने की एक नई योजना बनाई। हमारी मुक्ति की इस योजना में एक इटालियन डॉक्टर की सहायता मिलनेवाली थी। उसने हमारी योजना के लिए अपने दवाखाने का उपयोग करने की इजाज़त दे दी थी। इस दवाखाने में इटालियनों के घरों की तरह छप्पर के नीचे छत थी और उसे झाड़ने-बुहारने को ऊपर जाने के लिए एक सीढ़ी कोने में रखी हुई थी। तय किया कि छप्पर और छत के बीच जो जगह थी, वहाँ हम अपना सामान छिपाकर रखेंगे। मेरा एक साथी पहले ही उस छत पर जाकर छिप गया था। दवाखाने में हमारा एक जवान काम करता था। योजना ऐसी थी कि प्रत्येक अपना-अपना सामान जाकर उसे दे और जब-जब उसे फुरसत मिले, तब-तब वह उस सामान को छत पर बैठे हुए जवान को देता जाए। शाम को जैसा मौका मिले, एक-एक आदमी रोज़ जाकर छत पर बैठे और रात को नागरिक पोशाक पहनकर उस इटालियन डॉक्टर के साथ उसके एक सहायक की हैसियत से अँधेरे में बाहर निकल जाए। इस तरह चार दिन में हम चारों छावनी के बाहर निकल जानेवाले थे। उस छत पर हम चारों के लिए कम-से-कम एक सप्ताह के खाद्य-पदार्थ पहले ही रख दिये गये थे। पानी का भी प्रबंध हमने पहले से कर रखा था। मैं पूरी तैयारी करके सब सामान लेकर निश्चित समय पर, वहाँ पहुँचा तो उस जवान से मुझे पता चला कि बाकी के लोग पहले ही भाग

चुके हैं। मुझे सच ही नहीं लग रहा था। मैं समझ नहीं पा रहा था कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। मैंने उस जवान से कहा कि मेरा सामान यहीं रहने दो। मैं उन्हें देखकर अभी आता हूँ। मैं जल्दी-जल्दी दवाखाने से बाहर निकला। साथी की खोज करता हुआ आध घंटा घूमा परंतु उसका कहीं पता न लगा। निराश होकर मैं वापिस दवाखाने में पहुँचा। इधर-उधर देखा तो वह जवान भी मेरे सामान से 'वाटर बॉटल' और तौलिया लेकर नौ दो ग्यारह हो चुका था। इसका मतलब साफ था। मेरे साथियों ने मेरे साथ विश्वासघात किया था।

मैं वापिस आकर बैरक के चबूतरे पर विमनस्क स्थिति में बैठ गया। अभी तक रिहाई की दो बार कोशिश की और दोनों ही बार बेकार साबित हुई। पहली कोशिश में हमारे वरिष्ठ ने ही हमें लौटा दिया और दूसरी कोशिश में जिनपर मेरा विश्वास था, उन साथियों ने ही मुझे धोखा दिया था। मैं उठा। निश्चय किया कि अब दूसरे पर भरोसा न कर अकेले ही अपनी रिहाई की कोशिश करूँगा। मैं काँटेदार तारों की बाड़ से बाहर निकलने की उचित जगह खोजने के लिए चल दिया। मेरा सारा सामान खानाबदोश की तरह मेरी पीठ पर ही था। काँटेदार तारों की बाड़ के नज़दीक मैं पहुँचा और टोह लेने लगा। थोड़ी ही दूर एक प्रहरी था और उसकी निगाह मुझपर पड़ गई। वह मुझे देखकर ज़ोर से चिल्लाकर बोला—"चलो, भागो यहाँ से।" वह अंग्रेज़ी में बोल रहा था इसलिए यह सोचकर कि वह जर्मन न होगा, मेरे मन में आशा जगी। मैं वहाँ से न हिला; उलटे पास जाकर मैंने अभिवादन किया। उसने मेरी ओर पूरे ध्यान से देखा और फिर मेरे अभिवादन को स्वीकार कर, मुझसे पूछा—"क्यों, क्या भाग जाने की कोशिश कर रहे हो?" मैं कुछ न बोला, सिर्फ हँस पड़ा। तब वह बोला, "तुम्हारे हाथ की घड़ी अगर मुझे दोगे तो मैं तुम्हें भाग जाने का मौका दूँगा।"

बाद में जो बातचीत हुई, उसके दौरान उसने मुझे बताया कि वह जर्मन नहीं, बल्कि ऑस्ट्रियन है। मेरे मन में विश्वास पैदा करने के लिए ही उसने यह जानकारी दी होगी। उसने जो घड़ी माँगी थी, वह मैंने इसलिए अॅव्हर्सा कॅम्प में खरीदी थी कि कैदी हो जाने के बाद काम आये। मैंने उसे वह घड़ी देना मंजूर कर लिया, परंतु उससे कहा कि घड़ी मैं अभी नहीं दूँगा; तार के बाहर निकल जाने पर घड़ी ही क्या, पर उसके साथ एक हज़ार लिरा

(इटालिएन सिक्के) भी दूँगा। हमें कूपन मिला करते थे; इटालियनों से संधि हो जाने के बाद कूपन बेचकर मैंने पैसे जमा कर लिए थे और रिहाई के बाद में उनका उपयोग कर सकूँ, इसलिए उन्हें छिपाकर रखा था। उस ऑस्ट्रियन सैनिक ने मुझे रिहा कर देने का सौदा मंजूर कर लिया और मुझे सूचना दी कि रात अँधेरा हो जाने के बाद, साढ़े आठ और नौ के बीच, जब कि उसका पहरा रहेगा, मैं यहाँ पहुँचूँ। समय चूकने से काम नहीं चलेगा। मेरे तार के बाहर निकलकर कुछ दूर जाने के बाद वह बंदूक चलाएगा। परंतु घबड़ाने का कोई कारण नहीं रहेगा। अपने वरिष्ठ अधिकारी को यह आभासित कराने के लिए कि एक कैदी भागा जा रहा था, इसलिए बंदूक चलाई, वह बंदूक चलानेवाला था। हमारी ये सारी बातें अंग्रेज़ी में हुई थीं। योजना पक्की करके मैं वापिस लौटा, और फिर बैरेक की सीढ़ियों पर जाकर बैठ गया।

मैं वहाँ बैठा हुआ था कि थोड़ी देर बाद एक भारतीय सैनिक मेरे पास आया। वह असल में पुर्तगाली था इसलिए फ्रेंच, जर्मन, इटालियन और अंग्रेज़ी भाषाएँ जानता था। इसके सिवा कुछ हिंदी भी जानता था। वह मेरे पास आया और उसने मुझसे पूछा—"यहाँ से भाग जाने का कोई उपाय आपने सोचा है क्या?" मैंने उससे 'हाँ' कहा। तब वह बोला—"मैंने भी एक योजना बनाई है। पर आप अपनी योजना बताइए। मैं भी आपके साथ चलूँगा।" मैंने उससे कहा—"पहले तुम अपनी योजना बताओ। दो योजनाओं में से जो अधिक अच्छी मालूम होगी उसे स्वीकार करूँगा।"

उसने बताया कि जर्मन अधिकारी उसे पाँच आदमियों का आज्ञापत्र (पैरोल) देने को राज़ी है। इस कॅम्प से भागकर पहाड़ों में छिपे बैठे हिंदुस्तानी कैदियों को, समझा-बुझाकर कॅम्प में ले आने के लिए तीन दिन की अवधि का आज्ञापत्र मिलता है। आज्ञापत्र लेते समय हमें उसपर अपने हस्ताक्षर करने होंगे और अँगूठे की छाप देनी होगी। हम अगर आज्ञापत्र की शर्तों को तोड़ेंगे तो हमें, जहाँ भी हम होंगे, गोली से उड़ा दिया जायगा।

मैंने योजना सुनी। हस्ताक्षर करने में मुझे कोई खतरा नज़र न आया, परंतु अँगूठे की छाप देना मुझे सुरक्षित नहीं लग रहा था; क्योंकि झूठे नाम के दस्तखत करना संभव था, पर झूठा अँगूठा लगाना बिलकुल ही असंभव था। फिर भी मैंने उस सैनिक से कहा कि ८–२० तक मैं उसकी राह देखूँगा। उसके बाद अपनी राह चल दूँगा। साढ़े आठ और नौ के बीच, मुझे उस

ऑस्ट्रियन प्रहरी से मिलना था। इसीलिए इस सैनिक को मैंने उससे पहले का वक्त दे रखा था। निश्चित समय पर वह सैनिक मेरे पास आया। उसने कहा कि जर्मन अधिकारी ने आज्ञापत्र देना मंजूर कर लिया है। पर हमें दस्तखत और अँगूठा, दोनों देने ही होंगे। हम दोनों ये बातें कर रहे थे कि उसी समय हमारी योजना में शामिल होने की इच्छा रखनेवाला हमींमेंसे एक अधिकारी वहाँ आया। मैं उस अधिकारी को थोड़ी दूर ले गया और उससे इस उपाय के औचित्य आदि पर चर्चा की। मैंने उसे ऑस्ट्रियन प्रहरी के साथ निश्चित की हुई अपनी योजना भी बताई। उस अधिकारी ने भी उसी तरह की एक योजना बनाई थी। हमने विचार-विनिमय करके अंत में यही निष्कर्ष निकाला कि आज्ञापत्र लेकर बाहर निकलने का उपाय ही अधिक विश्वसनीय और सुरक्षित है। इसके अनुसार हमने उस सैनिक को अपनी सम्मति दे दी।

आध घंटे के बाद वह सैनिक लौटकर आया। वह सारी पूर्व तैयारी करके ही आया था। उसने हमें एक जर्मन अधिकारी के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। इस योजना में हमने ऐसा बहाना किया था कि हम सब सैनिक हैं और अंग्रेज़ी नहीं जानते हैं। इसलिए हमें वहाँ ले जानेवाले उस सैनिक ने हमारा दुभाषिया बनकर, जर्मन आज्ञापत्र का हिंदी में अनुवाद करके हमें सुनाया। वह आज्ञापत्र इस तरह था :—"आज्ञापत्र दिया जाता है कि इसे रखनेवाला हिंदुस्तानी सैनिक और उसके साथ के अन्य और चार सैनिक, इस कैंप से भागकर पहाड़ों में जाकर छिपे हुए हिंदुस्तानी युद्ध-कैदियों को समझा-बुझाकर उन्हें यहाँ वापिस ले जाने के लिए, इस कॅम्प को छोड़कर, बाहर जा सकेंगे। पर इस कॅम्प से ५० किलोमीटर की सीमा के भीतर ही इन्हें रहना होगा। इस खोज के लिए इन्हें सिर्फ तीन दिन का समय दिया जाता है। तीन दिन का समय समाप्त होते ही इन्हें कॅम्प में वापिस आ जाना होगा। यदि ये लोग ठीक वक्त पर हाज़िर न हुए तो हम अपने जर्मन सैनिकों को इजाज़त देते हैं कि वे किसी भी भारतीय सैनिक को देखते ही गोली मारकर खत्म कर दें।" आज्ञापत्र पर उसने हमारे दाहिने हाथ के अँगूठों के ठप्पे लिए। दस्तखत भी कराए। जैसा कि तय हो चुका था, हमने दस्तखत नकली नाम से किए। उस आज्ञापत्र पर जर्मन अधिकारी के दस्तखत और उसकी मुहर थी। यह सब हो जाने पर उसने दस्तखतवाला और अँगूठों के ठप्पोंवाला

आज्ञापत्र हमें दे दिया और उसकी एक प्रतिलिपि (ऑफिस कॉपी) अपने पास रख ली। मेरी दृष्टि से ऐसा करने में उसने एक बड़ी भूल की थी; क्योंकि उसने जो प्रतिलिपि अपने पास रखी थी, उसपर हमारे अँगूठों के ठप्पे नहीं थे। सिर्फ हमारे दस्तखत ही थे और वे भी बनावटी नामोंवाले।

आज्ञापत्र थमा देने के बाद उस जर्मन अधिकारी ने हमसे पूछा—"तुम लोगों को कुछ मदद चाहिए?" उससे किसी प्रकार की मदद माँगकर थोड़ा भी समय नष्ट करना मुझे उचित प्रतीत नहीं हुआ; क्योंकि हो सकता है थोड़े समय के बाद उसे अपनी गलती याद आ जाए और वह उसे सुधार ले। आज्ञापत्र की जिस प्रति पर हमारे अँगूठों के ठप्पे थे, वह हमसे ले ले और अपने पास की प्रति जिसपर हमारे अँगूठों के ठप्पे नहीं थे, हमें दे दे। यदि वह यह सुधार कर लेता तो आज्ञापत्र की अवधि समाप्त होते ही अँगूठों के ठप्पोंवाले आज्ञापत्र को नष्ट कर देने का मेरा हेतु सिद्ध न हो पाता। इसलिए, हमने उससे कहा कि हमारे पास सब चीज़ें हैं। आप हमें सिर्फ कैंप के बाहर सुरक्षापूर्वक पहुँचा दीजिए।

मैंने आज्ञापत्र जेब के हवाले किया। हमारे जाते समय वह जर्मन अधिकारी बोला—"तुम अगर तीन दिन के भीतर नहीं आए तो जितना खतरा तुम्हारे लिए है उतना ही मेरे लिए है, यह याद रखना।" रात तीन बजे एक निश्चित स्थान पर हमें तैयार रहने की उसने सूचना दी। तदनुसार तीन बजने से कुछ पहले ही हम उस जगह सब तरह से तैयार होकर खड़े थे। ठीक तीन घंटे बजते ही एक जर्मन सार्जेंट हमें कॅम्प से बाहर सुरक्षित पहुँचाने के लिए वहाँ आया। उसके साथ हम निकल पड़े। पहले पहरे पर हमें किसीने न रोका। दूसरे पहरे पर हमें रोका गया। परंतु हमारे साथवाले जर्मन सार्जेंट के यह कहते ही कि हम लोगों के पास आज्ञापत्र है, प्रहरी ने हमें आगे जाने दिया। तीसरी चौकी पर फिर हम रोके गए। प्रहरी बोला—"बिना आज्ञापत्र देखे मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा।" यही नहीं, बल्कि उसने हमें यह चेतावनी भी दी कि अगर हमारे पास आज्ञापत्र न निकला तो तुरंत गोली मारकर वह हमें वहीं खत्म कर देगा। आज्ञापत्र मेरे पास था। पर उस गड़बड़ी में पहले वह मुझे कहीं मिल ही नहीं रहा था। थोड़ी देर बाद मेरे कपड़ों की भीतरी जेब में आखिर वह मिला। मैंने उसे वह दिखा दिया। इसके बाद उसने हमें जाने दिया और शुभकामना भी व्यक्त की कि हमें यश प्राप्त हो। उस चौकी

को पार कर दो फर्लांग जाने पर हमारे साथ के सार्जेंट ने हमें वहाँ छोड़ दिया और वह कॅम्प लौट गया। जाते वक्त उसने भी वही शुभकामना व्यक्त की जो उस प्रहरी ने की थी। जेब में उस विलक्षण आज्ञापत्र को रखकर हमने थोड़े समय के लिए ही सही, अपनी रिहाई करा ली थी। भविष्य की योजनाओं में डूबे हुए हम लोग आगे चलने लगे।

# १३

# पैरोल पर रिहाई

*सितंबर १९४३*
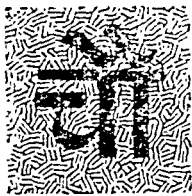
दह बरस के रामवनवास की तरह चौदह महीने की कैद के बाद पहली बार ही हम नीले आकाश के तले मुक्त होकर चल रहे थे; परंतु जेब में रखा आज्ञापत्र मेरे मन में एक जंजीर की तरह खनखना रहा ही था। चलते-चलते मेरा मन बड़ी तेज़ी से विचार कर रहा था। सबसे पहले मेरे मन में आज्ञापत्र के बारे में ही विचार आया। जब तक जान पर नहीं बीतती तब तक आज्ञापत्र का उपयोग न करके ही यह सफर समाप्त करूँगा। निस्सन्देह, आज्ञापत्र हमारी मुक्ति का साधन था; परंतु उसका उपयोग करना, गीली ज़मीन पर चलकर उसपर अपने पद-चिह्न छोड़ जाना था। अगर हम उसका उपयोग करते हैं तो तीन दिन का समय समाप्त होते ही हमारी खोज के लिए निकलनेवाले जर्मनों को, हमारा सुराग़ पा जाना अत्यंत सुगम होगा।

आज्ञापत्र का उपयोग न करने के विचार के साथ ही दूसरा भी एक विचार मेरे मन में आया और वह था जर्मनों को गुमराह करने का। हमारी तरह दूसरे कैदी भी कॅम्प से भाग गए थे; भाग रहे थे। वे सब मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं से मिलने के लिए दक्षिण दिशा में जा रहे थे। मैंने निश्चय किया कि हमलोग दक्षिण दिशा में न जाकर उत्तर की तरफ रोम—वेटिकन सिटी—जाएँगे।

जहाँ हम थे, वहाँ से रोम उत्तर दिशा में लगभग ५० मील दूर था। युद्ध के दौरान रोम विशेष सुरक्षित नगर था। धर्मगुरु पोप के शहर को सब राष्ट्रों ने तटस्थ राष्ट्र की खास सहूलियतें दी थीं और उनका पालन भी होता था। इधर दक्षिण में 'कसीनो' की तरफ से मित्र-राष्ट्रों की सेनाएँ तेज़ी से आगे कूच करती आ रही थीं। स्वभावतः कैद से भागे हुए सैनिकों की दौड़ उसी गाँव की ओर हो रही थी ताकि वे वहाँ जाकर अपनी सेना से पुनः मिल सकें। मैंने इसीलिए उत्तर में रोम की तरफ जाने का अंतिम निश्चय किया।

इरादा तय होते ही मैंने अपने साथियों को रोका और उन्हें अपनी आगामी योजना की पक्की रूप-रेखा बताई। मैंने कहा—"हम अब कैदी नहीं हैं। आज़ाद हैं। पराधीनता में क्या करें और क्या न करें यह हम स्वयं निश्चित कर सकते हैं। लेकिन अब हम युद्ध-कैदी नहीं रहे, युद्ध-सैनिक हो गए हैं। सबसे पहली बात यह है कि हमें एक संगठित दल बनाकर अनुशासन से सब काम करने चाहिए। हम पाँच लोगों में जो ज्येष्ठ अधिकारी हो, उसके हुक्म हम सबको मानने चाहिए। जो अनुशासन भंग करेगा उसे उसका परिणाम भोगना पड़ेगा ही। हम पाँचों में, मैं ही ज्येष्ठ अधिकारी हूँ। इसलिए इसी समय से अपने दल की सारी ज़िम्मेदारी और नेतृत्व मैं ग्रहण कर रहा हूँ।"

मेरे साथ के चार साथियों में तीन मामूली दर्जे के सैनिक थे। हमें गहरा शक था कि हममें से एक पंचमस्तंभी है और इसलिए मुझे यह स्पष्ट रूप से कह देना पड़ा। बाकी के तीन मेरे कहने के अनुसार काम करेंगे इस विषय में मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं था। उन पाँच लोगों के दल में, मैं मराठा दल की 'काली पाँचवीं' बटालियन का था। एक 'राजपूत रेजीमेंट' का था। दो पंजाबी मुसलिम भाई थे जिनमें एक 'सेकंड रॉयल लान्सर्स' का था और दूसरा '७-४ जाट' का था। और पाँचवाँ 'रॉयल इंडियन आर्मी सप्लाय कॉर्प्स्' का था। अपने दल का मैं नेता बना और बाकी के चार मेरे अनुयायी बने। यह व्यवस्था हो जाने के बाद रोम की ओर जानेवाले रास्ते को खोजना ही हमारा सब से पहला और जल्दी का काम था। हम सब काम में भिड़ गए। आकाश के तारों और नक्षत्रों के सिवा दिशा निश्चित करने का अन्य साधन हमारे पास नहीं था। दिन में जिस तरह सूरज को देखकर पूर्व और पश्चिम दिशा की जानकारी हो जाती है, उसी तरह उत्तरीय गोलार्ध में रात के समय ध्रुव तारे और उसके इर्दगिर्द परिक्रमा करनेवाले सप्तर्षि-

हम पाँच

मंडल को देखकर उत्तर दिशा का अचूक ज्ञान हो जाता है। इसके अनुसार ध्रुवतारा देखकर हम उसी दिशा में चलने लगे। आकाश के तारों और नक्षत्रों की जानकारी प्राप्त करना सैनिकी शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है। वह शिक्षा यहाँ इस तरह हमारे काम आई।

हम जब अवज्ज़ानो कॅम्प में रहते थे, उस समय दूर कहीं से रेलगाड़ी की आवाज़ हमारे कानों में पड़ा करती थी, इसकी मुझे अब याद आई। निश्चित ही नज़दीक कहीं रेल की लाइन होनी चाहिए, इसलिए, सामने के ध्रुव तारे की ओर ध्यान केंद्रित कर चलते-चलते हम रेल की लाइन भी खोजने

लगे। करीब एक मील चलने के बाद अंत में हमें रेल की लाइन मिली। उस सड़क के समानान्तर हम चलने लगे। 'सब रास्ते रोम जाते हैं' (All roads lead to Rome) इस कहावत पर पूरा भरोसा रखकर, इस आत्म-विश्वास से हम चल रहे थे कि उत्तर की ओर जानेवाला यह रेल्वे मार्ग हमें अन्यत्र कहीं न ले जाकर सीधा रोम ही ले जाएगा। इस तरह चलते-चलते अँधेरा धीरे-धीरे लुप्त होने लगा। अरुणोदय के प्रकाश से दिशाएँ चमकने लगीं। पूर्व के क्षितिज पर ललाई फूटने लगी। पर उस ललाई से मेरे मन में अलबत्ता एकदम खतरे का खयाल जाग उठा। ध्यान में आया कि थोड़ी ही देर में दिन निकल आएगा और रेलमार्ग से जाना सुरक्षित नहीं होगा। एक तो हम सब लोग कृष्ण-वर्ण, दूसरे बदन पर फौजी वर्दी, फिर पीठ पर झोले लदे हुए—ऐसी स्थिति में दुश्मन की रेलगाड़ी के किसी मुसाफिर ने अगर हमें देख लिया तो गाड़ी रोक दी जाएगी और हम पुनः पकड़ लिए जाएँगे। पकड़े जाने पर हमें अपने पास का आज्ञापत्र दिखाना पड़ेगा और शत्रु को पता लग जाएगा कि हम किस तरफ जा रहे हैं।

इस कारण अंत में मैंने यह निर्णय किया कि दिन में सफर रोक देना चाहिए और रेल्वे मार्ग से दूर जाकर, किसी छोटे-से गाँव में आश्रय लेना चाहिए। इसके लिए हमने आसपास बहुत देखा, परंतु सिवा पहाड़ों और जंगलों के हमें आसपास और कुछ नज़र नहीं आ रहा था। यह देखकर कि आसपास नज़दीक कोई गाँव नहीं, हताश होकर, अंत में हमने एक खुले नाले में ठहरने का निश्चय किया। रेल की सड़क से करीब दो फर्लांग दूर, एक नाले के किनारे हमने डेरा डाला। हम अपने कॅम्प से २० किलोमीटर दूर आ गए थे। हम उस नाले के किनारे बैठ गए और इस तैयारी से कि अब समूचा दिन हमें यहीं गुज़ारना है, कमर की पेटियाँ ढीली करके हम थोड़ा आराम करने लगे। करीब दस-पन्द्रह मिनट ही हुए होंगे कि उस वातावरण में हमें कुछ फासले से आती घंटियों की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। हम ज़रा चौकन्ना होकर सुनने लगे। निश्चित ही नज़दीक कहीं गिर्जाघर होगा। चर्च की ही घंटियों की आवाज़ थी वह। बेचारा कोई ईसा-भक्त उस घंटा-नाद से अनजाने, परंतु जैसे ईश्वर की प्रेरणा के कारण ही हमें उस गाँव में आश्रय के लिए आने का निमंत्रण दे रहा था। नाले

के किनारे दिन विताने का इरादा हमने बदल दिया और उन घंटियों की दिशा से चलने लगे। करीब एक मील गए होंगे कि हमें एक पक्की सड़क दिखी। वह सड़क उस गाँव की ओर ही जानेवाली थी, यह सहज मालूम होने लायक था। हम उस सड़क से चलने लगे।

हम उस सड़क से थोड़े आगे बढ़े कि इसी समय सुबह के कोमल सूर्य प्रकाश में हमें सामने से एक इटालियन सैनिक आता हुआ दिखाई दिया। जब वह नज़दीक आया तो मैंने उसे रोका और अपने दुभाषिया से उससे बातें करने को कहा। वह एक पच्चीस वर्षका सुंदर नौजवान था। उसका नाम था 'रोमानो'। गोरा-चिट्टा मुस्कान-भरा चेहरा और स्निग्ध आँखें, इनके कारण उसे देखते ही हमारे मन में उसके प्रति विश्वास और प्रेम की भावना जाग उठी। इटालियनों के सुलहनामा लिख देने के बाद वह सेना से भागकर अपने घर वापस जा रहा था। गाँव की ओर जानेवाले रास्ते पर ही हम उससे मिले। उसने सोचा कि हम अमरीकी हैं। मैंने अपने दुभाषिये से कहा कि उसकी अभी यही धारणा बनी रहने दो। हम सबने उसकी वह धारणा इसलिए बना रखी कि उसे यह पता न चल पाए कि हम पाँचों आज्ञापत्र लेकर कॅम्प से निकले भारतीय सैनिक हैं। हम उसके साथ

सुन्दर नौजवान : रोमानो

उस गाँव में जा पहुँचे। उस दिन इतवार था। धार्मिक प्रवृत्ति के उस छोटे-से गाँव में सर्वत्र उत्साह का वातावरण छाया हुआ था। स्त्री-पुरुषों के दल उत्तम वस्त्र परिधान किए चर्च जा रहे थे। हमें देखकर, वे ठिठककर खड़े हो गए और 'अमेरिकानो' 'अमेरिकानो' कहकर चिल्लाने लगे। भगवान जाने क्यों उनकी यह धारणा हो गई थी कि हम पाँचों अमरीकी हैं। उस छोटे-से गाँव में किसी कारण से यह बात फैल गई थी कि अमरीकी सेना थोड़े ही दिनों में आनेवाली है और वह उन्हें जर्मनों से मुक्त करानेवाली है। उन्हें लगा, हम उसी सेना के मोर्चे के सैनिक हैं और उनका आनंद उमड़ कर बह उठा। मैंने इस सारी घटना पर थोड़ा अधिक सोचा और रोमानो के मन में विश्वास पैदा कर कहा कि हम सैनिक हैं। कृपा कर हमें कहीं ऐसा स्थान दिखा दो जो बस्ती से दूर हो और जहाँ हम छिपकर रह सकें। इसके अनुसार उसने भीड़ में से कुछ प्रतिष्ठित लोगों से विचार-विनिमय करके हमारे लिए स्थान निश्चित किया और हमें लेकर गाँव की सीमा की ओर चल पड़ा। गाँव में न रहकर आसपास कहीं नज़दीक रहने का विचार मैंने इसलिए पक्का किया कि मुझे भय था कि गाँव में यदि कोई फॅसिस्ट मनोवृत्ति का मनुष्य हो और उसे पता चल जाए कि हम भारतीय युद्धकैदी हैं और वह यह खबर जर्मनों को दे दे तो हम लोगों की दुर्दशा की सीमा न रहेगी।

रोमानो हमें लेकर एक ऐसे जंगल में पहुँचा जो गाँव की सीमा के नज़दीक था और जहाँ हम छिपकर रह सकते थे। अभी तक बड़ी देर से वह हमारी ही सेवा में था अतः हमने उसे घर जाने को कहा और उससे कह दिया कि अब वह स्वयं लौटकर न आए बल्कि अपने किसी विश्वसनीय मनुष्य के साथ हमारे लिए ब्रेड और कॉफी भेज दे। रोमानो गया तो उस समय सुबह के दस-साढ़े दस बजे होंगे। जंगल में हम बैठे थे फिर भी हमारे सामने का प्रश्न "ततः किम् ?" समाप्त नहीं हुआ था। मैं उस न समाप्त होनेवाले प्रश्न पर विचार कर रहा था। भाग्य भी हमें कैसे-कैसे खेल खिला रहा था! कल हम पिंजरे के पक्षी थे और आज आज़ाद होकर भी दिवाभीत की तरह इस जंगल में छिपे बैठे हुए थे। ऊपर सूर्य मध्याह्न पर चढ़ रहा था और हमारा भविष्य अज्ञात था।

# १४

# शय्या भूमितलम्

*सितंबर १९४३*
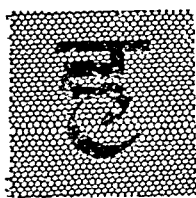
म जिस गाँव में जाकर रहे थे उसका नाम 'विला सान सबास्तिआनो' था। 'सबास्तिअन' नामक एक संत के नाम पर उस गाँव का नाम पड़ा था। 'विला सान सबास्तिआनो' की चौहद्दी के उस निकटवर्ती जंगल में हम कॉफी और ब्रेड की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। करीब एक घंटा बीता होगा। एक पन्द्रह-सोलह बरस का लड़का हमारी ओर आता हुआ हमें दीख पड़ा। उसका नाम सीरिओ था। हमारे दुभापिया ने उससे जब ब्रेड ओर कॉफी के बारे में पूछा तब वह बोला—"मेरी माँ ने आप सब लोगों को घर बुलाया है। माँ बोली कि आप लोग काफी थक गए होंगे। आप घर ही चलें। वह आपको कॉफी और ब्रेड तो देगी ही; पर आप लोगों के नाश्ते के लिए भी कुछ बना देगी। आप लोग मेरे साथ ही घर चलें।"

सीरिओ की माँ का निमंत्रण भले ही बड़े प्रेम-आदर का हो, फिर भी उसे स्वीकार कर गाँव में जाना और अपने आपको पुनः खतरे में डाल लेना मुझे उचित नहीं लगा। इसलिए सीरिओ को हमने अपने पासवाली कॉफी की बुकनी और चीनी देकर उससे कहा—"तुम घर जाओ और अपनी माँ से कॉफी बनवाकर यहीं ले आओ और ब्रेड भी ले आना। हम गाँव के भीतर
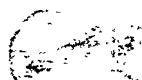
नहीं जा सकेंगे।" उस गरीब आदमी पर व्यर्थ ही हमारा बोझ न पड़े इसलिए हमने कुछ लिरा भी दिए। वह लौट गया और हम सोचने लगे: सीरिओ की माँ ने हमारी यह बात न मानी और ज़िद की कि हम बस्ती में जाएँ तो हमें क्या करना चाहिए?" विचार करके अंत में हमने यह निर्णय किया कि सीरिओ यदि अपनी माँ का वही संदेश पुनः लाता है तो हम गाँव में जाएँगे और संभव हुआ तो वहाँ दाढ़ी बना लेंगे और जो भी मिल जाय, खा-पी लेंगे और फिर गाँव छोड़कर तुरंत यहीं लौट आएँगे।

सीरिओ थोड़ी देर के बाद फिर खाली हाथ आया। उसने कहा—"माँ आपकी बात सुनने को तैयार नहीं। उसने बड़े आग्रह से आप लोगों को घर ही बुलाया है। वह कॉफी बना रही है और आप लोगों को अपने साथ ले आने के लिए उसने मुझे भेजा है।" जैसा कि हम पहले तय कर चुके थे उसके अनुसार हम लोग उसके पीछे-पीछे गाँव की ओर निकल पड़े और उसके घर जा पहुँचे। सीरिओ का घर उस गाँव के अन्य घरों की तुलना में बड़ा था। उस गाँव के किसी प्रतिष्ठित परिवार का घर दिख रहा था वह। हमारे वहाँ पहुँचते ही पहले हमने दाढ़ियाँ बनाईं। फिर स्नान भी किया। इधर सीरिओ की माँ नाश्ता बनाने में व्यस्त थी। हमलोग एक-के-बाद-एक स्नान कर रहे थे। तभी सीरिओ के घर हमारे पहुँचने का समाचार सारे गाँव में बिजली की तरह फैल गया। उस छोटे-से गाँव के सब लोग किसी बड़े एकत्र-परिवार की तरह एक-दूसरे से संबंधित थे। बहुत सी स्त्रियाँ, बूढ़े, लड़के और लड़कियाँ हमें देखने के लिए सीरिओ के घर आई थीं। हमारे यहाँ के भोले ग्रामीणों की तरह एक अजीब-सी जिज्ञासा लिए वे वहाँ इकट्ठा हुए थे। सब लोग हमारी ओर कुतूहल से देख रहे थे, हमारे इर्दगिर्द चक्कर काट रहे थे। मैंने अपने दुभाषिये के ज़रिए सीरिओ से पूछा—"क्या इस गाँव में कोई कट्टर फॅसिस्ट है?" उसने कहा—"यहाँ की शाला का हेडमास्टर मायस्त्रो कट्टर फॅसिस्ट है।" इसके थोड़ी ही देर बाद हम नाश्ते पर बैठ ही रहे थे कि एकत्रित लोग दबी जबान में 'मायस्त्रो' 'मायस्त्रो' कहने लगे। मायस्त्रो महाशय आ धमके थे।

मायस्त्रो ने हमारे दुभाषिये से हमारे बारे में पूछताछ की—हम कौन हैं, कहाँ आ रहे हैं आदि। दुभाषिये के ज़रिए मैंने उससे कहा—"हम कैद से भागे हुए युद्ध-कैदी हैं।" हम आज्ञापत्र लेकर निकले हैं यह मुझे उससे गुप्त रखना था।

हमने पेट भर नाश्ता किया। नाश्ते में सीरिओ की माँ ने पॉरिज, बेकन, अंडे, सॉसेज इत्यादि पदार्थ बनाए थे। उसके बाद कॉफी थी। रात भर की जगार थी ही। हम थक भी काफी गए थे। बहुत दिनों के बाद गरम पानी का स्नान नसीब हुआ था और कैद में जाने के बाद से प्रथम बार ही माँ के स्नेहपूर्ण हाथों पकाए गए गरम-गरम पदार्थ हमें खाने को मिले थे। उस महिला ने हमें पेट भर परोसा था। इस कारण वह नाश्ता हमें बड़ा ही रुचिकर लगा। हमने इतना खा लिया था कि हमारी आँखें झँपने लगीं। सीरिओ की माँ ने हमें एक अलग कमरा दिया। वहाँ कुर्सी पर बैठे-बैठे ही हमने एक नींद ले ली। नाश्ता करते समय ही मैंने अपने आसपास एकत्र हुए लोगों से कह दिया था कि वे लोग अगर अब अपने-अपने घर चले जाएँ तो अच्छा। हमारा खाना हो जाने के बाद हम लोग यहाँ एक मिनट भी नहीं ठहरेंगे। हम एकदम यहाँ से चल देंगे। उन लोगों के वहाँ रुकने के कारण क्या खतरा है यह भी मैंने उन्हें समझाकर बता दिया। मैंने उनसे कहा कि बहुत से जर्मन सैनिक इस हिस्से में घूम रहे हैं। उनमेंसे किसी ने यदि हमें देख लिया तो हमारी वर्दी पहचानकर हमें तो वे तुरंत कैद कर ही लेंगे, परंतु तुम लोगों ने हमें आश्रय दिया इसलिए गोली चलाकर तुम्हें भी वे मौत के घाट उतार देंगे। मेरे इतना कहते ही भीड़ वहाँ से चल दी और हमने अपनेको कुछ ज्यादा सुरक्षित अनुभव किया।

जब यह सब चल रहा था तभी सीरिओ और उसकी माँ दोनों रह-रहकर हमसे आग्रह कर रहे थे कि हम उनका गाँव छोड़कर आगे जाने का अपना इरादा बदल दें। वे कह रहे थे—"अब जर्मनों की हार अटल है। ब्रिटिश फौजें तेज़ी से रोज़ ५०-५०, ६०-६० किलोमीटर के वेग से आगे कूच करती चली आ रही हैं। उन्हें हमतक आकर पहुँचने में अब केवल आठ-दस दिनों का ही सवाल है। इतने थोड़े समय के लिए आप यहाँ से न जाइए। यहीं कहीं छिपे रहिए। जो आप चाहेंगे, वह सब हम आपको देंगे। आपके खाने-पीने की, आपके छिपने के लिए उचित जगह खोज देने और आपकी सुरक्षा का सारा भार हम पर! अब कुछ ही दिन रह गए हैं, इसलिए हम पुनः आग्रहपूर्वक आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप इस गाँव से न जाइए।" उनका यह आग्रह सुनकर और ब्रिटिश फौज के कूच का समाचार पाकर मुझे भी उसपर धीरे-धीरे विश्वास होने लगा। अंत में उनके [illegible]

आग्रह के कारण रोम जाने का विचार छोड़कर मैंने एक नई योजना बनाई।

विश्राम कर लेने के बाद मैंने रोमानो और सीरिओ के प्रति विश्वास दिखाते हुए उन्हें अपनी योजना बताई। पहली बात यह कि सारे गाँव में यह बात फैला दी जाय कि हम लोग गाँव छोड़कर चले गए हैं। पर, चूँकि हमारी फौजें सप्ताह भर में आ पहुँचेंगी इसलिए हम लोग रहेंगे बस्ती के आसपास ही। रोमानो से मैंने कहा—"तुम हमें छिपने लिए कोई सुरक्षित स्थान दिखाओ। रोज़ अँधेरा हो जाने पर तुम उस स्थान पर हमारा दोनों जून का खाना एक बार ही आकर दे जाया करो। तुम्हें हमारी फौज की हलचलों का कुछ पता चले अथवा आसपास कहीं जर्मन सैनिकों के आने की खबर मिले तो उस खबर को हमतक पहुँचाने का काम भी तुम्हें ही करना होगा।" रोमानो और सीरिओ ने हमारी योजना सम्मत मानी और रोज़ आवश्यक खाद्य-पदार्थ दे जाने का काम स्वीकार किया। सीरिओ की माँ ने भी हमारी योजना मान ली। बोली, "आपलोग यहीं रहिए। मेरा बेटा और रोमानो आपकी सब तरह मदद करेंगे।" रोमानो ने तो हमें यह आश्वासन तक दिया कि हम जब तक पूरी तरह आज़ाद नहीं हो जाते, तब तक वह सदा हमारे साथ रहेगा। सीरिओ की माँ ने सिर्फ बस्ती के आसपास रहने की प्रार्थना ही नहीं की बल्कि अपनी पहचान के एक बागबान के बागीचे में रहने का सुझाव भी दिया। बागबान का नाम था : पापा पेत्रीनो। हमने सुझाव मान लिया। अँधेरा फैलते ही पापा पेत्रीनो आए। हमें अपने साथ लेकर बागीचे की तरफ चल दिए; साथ में था रोमानो और सीरिओ। पापा पेत्रीनो गाँव के सिवान तक हमें पहुँचाकर लौट गए। रोमानो और सीरिओ तब तक हमारे साथ रहे जब तक रात के अँधेरे में दुबके रहने की जगह नहीं खोज ली गई। निकले थे तो सीरिओ की माँ ने गोल डबल रोटी जैसी मकई की बड़ी रोटी थमा दी। बीच में काटकर उसमें बोटियाँ भर दी थीं और अच्छी-खासी पोटली-सी बना दी थी। रोमानो और सीरिओ ने रोज़ अँधेरा होते ही हमसे मिलने और पर्याप्त खाद्य-पदार्थ पहुँचाने का आश्वासन दिया और हमसे विदा हुए।

जर्मन अधिकारी से आज्ञापत्र लेने के बाद चौबीस घंटे भी पूरे नहीं हो पाए थे और उससे पहले ही घटनाएँ जिस वेग से और जिस रीति से घटित हो रही थीं, उन्हें देखते हुए हम समझ नहीं पा रहे थे कि उन सब का कौन शासक है, कौन नियामक; वह हमें कहाँ ले जा रहा है और आगे कहाँ ले

पापा पेत्रीनो

जाएगा। परंतु इसपर व्यर्थ विचार न कर लगातार प्रयास करते रहने का मैं निश्चय कर चुका था। जब मैं युद्ध-कैदी था उस समय एक ही विचार मेरे मन में था और वह था स्वयं अपनी सुरक्षा का। प्रकट ही, कैद से अपनी रिहाई किस तरह कर लूँ यह विचार भी उसके साथ था ही। कैद से मैं छूटा और अपने ऊपर और भी चार लोगों की मैंने ज़िम्मेदारी ली। अब स्वतंत्रता थी अवश्य, पर उस स्वतंत्रता से मैं अकेले लाभ नहीं उठाना चाहता था। फौजी शिक्षा ने सामुदायिक दायित्व का ज्ञान मुझमें उत्पन्न कर दिया था। चार ही लोगों का क्यों न हो, पर मैं नेता बन गया था और नेतृत्व के कारण किसी भी परिस्थिति में हिम्मत न हारकर निर्णय करना और उस निर्णय के अनुसार वर्ताव करना अब मेरा काम था।

वह रात और उसके बाद का समय व्यतीत करने के लिए हमने जो सुरक्षित स्थान निश्चित किया था वह था पापा पेत्रीनो के बागीचे की एक झोंपड़ी। हमारे देश में घास-फूस अथवा ज्वार के डंठलों से बनी जैसी झोंपड़ियाँ होती हैं, उसी तरह की वह झोंपड़ी थी। उसकी दीवारें, छत और दरवाज़े सब घास के बने थे। उस बागीचे में अंगूर, आलू, चुकंदर और मूँगफली तैयार हो रही थी। पापा-पेत्रीनो ने बागीचे से कोई भी चीज़ लेने की हमें पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी थी। उससे फायदा उठाने का हमने भी निश्चय किया और उस तृण-शय्या पर लेट गए। 'शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनम्' इस अवस्था में हम निद्रादेवी के अधीन हो गए।

# १९

# रोमानो

*सितंबर-अक्तूबर १९४३*
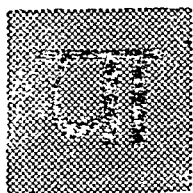
पा पेत्रीनो के उस बाग में हम रहने लगे। एक सप्ताह तक हम वहाँ बड़े मज़े में रहे। हमारे सामने कोई दिक्कत पेश नहीं आई। परंतु पहली ही रात को नींद से उठते ही मेरे ध्यान में एक बात खास तौर पर आई। हम जिस झोंपड़ी में रहते थे वह एक छोटी-सी टेकरी पर थी। आसपास के किसी भी भाग से वह झोंपड़ी और उसमें होनेवाली हलचलें सहज दिख सकती थीं। हमें जिस गुप्तता की आवश्यकता थी वह इस झोंपड़ी में रहकर मिल पाना बिलकुल असंभव था। इसलिए जैसे भी हो यह स्थान बदलना ही चाहिए यह विचार मेरे मन में उस पहली सुबह ही आया था, और धीरे-धीरे वह ज़ोर पकड़ने लगा। इस दृष्टि से मैंने आसपास के भूभाग में खोज शुरू कर दी। अंत में उस बागीचे से करीब एक मील दूर मुझे ऐसी जगह मिल गई जैसी कि मैं चाहता था। वह कुछ गड्ढेनुमा भाग में थी। नज़दीक ही एक नाला बह रहा था। आसपास के किसी भी भाग से इस स्थान पर होनेवाली हलचलों को देख पाना संभव नहीं था। इसके सिवा एक और खूबी थी और वह यह कि गाँव के लोग यद्यपि हमें नहीं देख सकते थे पर गाँव में क्या हो रहा है वह सब हम यहाँ से बेखटके देख सकते थे।

जगह बदलने के विचार को पुष्टि देनेवाली एक घटना इतवार को हुई। ३०-४० इटालियन स्त्री-पुरुष उस दिन पियानो, अॅकॉर्डियन्, माउथ-ऑर्गन आदि वाद्य बजाते हुए बड़े समारोह के साथ हमारी झोंपड़ी में आए। वे अपने साथ खाने की बहुत-सी चीज़ें भी ले आए थे। आग्रह कर-करके उन चीज़ों को स्वीकार करने के लिए उन्होंने हमें मज़बूर कर दिया। इसके बाद साथ के बाजों के ताल-सुर पर नृत्य और गान करके आनंद की खूब वर्षा कर त्यौहार की तरह उन्होंने वह इतवार मनाया। हममेंसे दो ने उनके उस उत्सव में—नृत्य और संगीत में बड़े उत्साह से भाग भी लिया। परंतु उनकी वह मेहमानदारी, हमारे प्रति उनका वह स्नेह जितना अभिनंदनीय था, मेरी दृष्टि से वह उतना ही खतरनाक था।

मैंने उन लोगों को अपनी कठिनाइयाँ बताईं और उनके उत्साह के कारण हम सब के लिए जो खतरे पैदा होंगे उन्हें भी समझाने की कोशिश की। परंतु शहरी जीवन के उन लोगों को हमारी फौजी ज़िंदगी के खतरों और दाँव-पेंचों की गंभीरता का कोई ज्ञान न होने के कारण उन्होंने मेरी बातों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उनके वापिस जाने के वक्त मैंने रोमानो को रोक लिया और मुझे जो खतरा मालूम पड़ रहा था, वह बताया। वह समझदार और होशियार तो था ही, सेना में रह चुकने के कारण सैनिक-जीवन का उसे अनुभव भी था। उसे मेरी बात जँच गई। मैंने जो जगह खोजकर निकाली थी, वह मैंने उसे ले जाकर दिखाई। उसे भी वह पसंद आई। उसी रात हमने अपना सामान उठाया और घाटी के नाले के पासवाली झोंपड़ी में जाकर नया घर बसाया। मैंने रोमानो से कहा कि वह गाँव में जाकर लोगों को यह बता दे कि हम सब लोग गाँव छोड़कर चल दिए हैं। उन्होंने हमारी जो उत्साहपूर्ण खातिरदारी की थी, उसके कारण हमें खतरा पैदा हो गया और हमें उनका गाँव छोड़ देना पड़ा।

हमें जगह बदलकर तीन-चार दिन हुए होंगे। इटालियनों की एक टोली पुनः पापा पेत्रीनो के बागीचे की ओर याने हमारी पुरानी जगह की ओर जाती हुई हमें दीख पड़ी। उन्होंने झोंपड़ी का दरवाज़ा खोलकर भीतर झाँककर देखा। आसपास भी खोज कर देखा। पर कहीं भी हमें न देख निराश होकर वे लौट गए। हमें अपनी जगह से यह सब साफ दिख रहा था, पर वे लोग हमें नहीं देख सकते थे। यह दृश्य देखकर मुझे विश्वास हो गया कि यह उचित ही हुआ जो हमने वह जगह बदल दी।

सितंबर का महीना समाप्त हो रहा था। ठंड शुरू हो गई थी। हमारा नया स्थान इस दृष्टि से काफी सुरक्षित लग रहा था। इसलिए मैं कभी-कभी झोंपड़ी से बाहर निकलकर धूप में भी बैठा करता था। एक दिन मैं इसी तरह आराम से बैठा हुआ धूप खा रहा था कि मुझे लगा जैसे कोई मेरे पीछे से गुज़र रहा है। मैं तड़ाक-से उठ पड़ा और लुकते-छिपते झोंपड़ी में जाकर बैठ गया। इसी समय करीब साठ साल की एक स्त्री हमारी झोंपड़ी के पास आई। अपने पति के लिए कलेऊ लेकर वह खेत जा रही थी। शायद मुझे देखकर मदद करने के उद्देश्य से वह हमारी झोंपड़ी में आई थी। झोंपड़ी के नज़दीक आते ही उसने हमारे दुभाषिया को पुकारा। हमने झोंपड़ी का दरवाज़ा खोला और उसे भीतर बुलाया। उसके सिर पर रखी टोकरी में कलेऊ था और हाथ में रखी बोतल में इटालियनों की अत्यंत प्रिय शराब 'वीनो' थी। उसने टोकरी से एक गोलमटोल रोटी निकालकर हमारे सामने रख दी। हमने उसे लेने से इंकार कर दिया। हमने उससे कहा—"हमारे पास खाने के लिए काफी चीज़ें रखी हैं। तुम यह रोटी अपने पति के लिए खेत पर ले जा रही हो। यह वहाँ ले जाओ और उसे खिलाओ। हमारे लिए उस बेचारे को भूखा रखने की कोई ज़रूरत नहीं।" पर वह बोली—"मैं घर जाकर उनके लिए फिर दूसरी रोटी बनाकर ले आऊँगी।" हमने कहा—"तुम्हें फिजूल चक्कर काटने की कोई ज़रूरत नहीं। इसके सिवा तुम्हें अपने पति को हमारे बारे में बताना होगा और यह बात हमारी सुरक्षा की दृष्टि से उचित भी नहीं।" पर वह बुढ़िया कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थी। हर बार वह यही कह रही थी कि आप लोगों के कष्ट देखकर मुझे बहुत दुख हो रहा है। आपको यह रोटी और शराब अपने पास रखनी ही होगी। अंत में हमें उन चीज़ों को रख ही लेना पड़ा और वह वृद्धा बड़े संतोष से अपने पति के लिए पुनः कलेऊ बना लाने के लिए गाँव की ओर चल दी।

अब बेशक हमें यह कहने का मौका आ गया था कि "भगवान, हमारे मित्रों से हमारी रक्षा करो!" बुढ़िया का हममें से एक को बाकायदा नाम से पुकारना और हमारी छिपने की जगह में आकर हमें खाने की चीज़ें दे जाना साफ-साफ बता रहा था कि हम वास्तव में अज्ञातवास नहीं कर सकते थे। उस रात रोमानो से भेंट होने पर हमने उससे बुढ़िया के आने की बात कही। पर उसे वह बात हमसे पहले ही मालूम हो चुकी थी।

इस घटना पर विचार करने के बाद मुझे लगा कि यहाँ रहना विशेष सुरक्षित नहीं। यह प्रश्न भी मन में खड़ा हुआ कि उन ग्रामवासियों की सज्जनता से भी आखिर कितना फायदा उठाएँ। अंत में मैंने निश्चय किया कि अब यहाँ से डेरा उठाना चाहिए और दोस्तों के मोर्चे की ओर चलना चाहिए। मैंने रोमानो से अपना यह विचार कहा। पर वह मेरे विचार से सहमत नहीं होता था। वह बोला—"खबर मिली है कि यहाँ से ७०-८० मील दूर पश्चिम किनारे पर पिस्कारा में दोस्तों के हवाई जहाज़ आकर उतरे हैं। वह क्षण बिल्कुल नज़दीक आ पहुँचा है जब थोड़े ही दिनों में तुम लोग मुक्त हो जाओगे। ऐसे समय इस सुरक्षित स्थान को छोड़कर तुम मत जाओ। यहीं रहो। तुम्हारे खाने-पीने और सुरक्षा की सारी ज़िम्मेदारी हमपर है। तुम तनिक भी चिंता मत करो। थोड़े ही दिनों में सब ठीक हो जाएगा।" मेरी डूबती आशा को उसके शब्दों का सहारा मिला और हम वहीं रह गये।

झोंपड़ी में रहते समय हमारा उदर-निर्वाह गाँव के लोगों की तरफ से ही हो रहा था। गाँव के लोग क्रमानुसार हमारे लिए रोज़ खाना भेजते थे। हम कौन हैं, कहाँ के हैं इसकी उन्हें कल्पना भी नहीं थी; किसी मानसिक रिश्ते की बात तो दूर रही। पर इसके बावजूद गिरजाघर के घंटानाद के रूप में हमें निमंत्रित करनेवाले उस गाँव ने हमारे पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी जैसे स्वयं अपने ऊपर ले ली थी। सीरिओ की माँ ने हमारे प्रति जो प्रेम की भावना व्यक्त की थी, वही धीरे-धीरे, किंतु निश्चित रूप से उस गाँव के प्रत्येक व्यक्ति के मन में अंकित हो रही थी। मानवता की यह अभिव्यक्ति हम देख रहे थे, अनुभव कर रहे थे। इधर उस बुढ़िया की मुलाकात के बाद हमारे लिए जो खतरा पैदा हो गया था उसे महसूस कर रोमानो ने मुझसे पूछा—"अब तुमने क्या निश्चय किया है?" मैंने उससे कहा—"मैं सोचकर कल बताऊँगा। तब तक तुम भी सोचो कोई रास्ता।"

दूसरे दिन रोमानो के आने पर मैंने उससे कहा—"तुम मुझे गाँव के बिल्कुल छोर पर ऐसा निर्जन स्थान दिखा दो कि जहाँ से हम खतरे का शक होते ही नज़दीक के पहाड़ में भाग सकें।" वह बोला—"ठीक इसी तरह का एक स्थान मैंने खोज रखा है। मेरी पहचान की एक महिला का घर है वह। पर उस महिला का आग्रह यह है कि तुम गाँव के बाहर किसी जगह न रहकर

उसके घर ही में रहो। उसके दस साल की लड़की है, इकलौती। उसे लेकर वह अन्यत्र रहने चली जायगी और अपना पूरा घर तुम्हारे हवाले कर देगी।"

रोमानो की यह बात सुनकर मेरे मन में उस उदार महिला के प्रति आदर जाग उठा, परंतु किसी भी स्थिति में हमारे कारण किसीको भी कोई तकलीफ न हो इसका ख्याल रखना भी मेरा कर्तव्य था। जर्मन सैनिकों की सरगर्मियाँ आसपास हो रही थीं। मान लें, उन्हें हमारा पता चल गया तो जिनके घर में हमने आश्रय लिया है उनको भी वे मौत के घाट उतारे बिना नहीं रहेंगे। एक और दृष्टि से भी इस प्रश्न को देखने की ज़रूरत थी। हममें से दो लोग ज़रा शौकीन-मिज़ाज़ थे। उस रविवार को यह मैं देख ही चुका था। शराब पीने और नृत्य-संगीत में शामिल होने का उन्हें बड़ा उत्साह था। गाँव के किसी घर में हमारा एकत्र रहना उनके इस शौक को प्रोत्साहन देना था। इस कारण गाँववालों को भी तकलीफ होती और जर्मनों को हमारा पता पाने में मदद भी मिलती। इसीलिए मैं गाँव के किसी घर में एकत्र रहना टालना चाहता था।

अंत में मैंने रोमानो से कहा—"जैसे भी बने गाँव के छोर की वह जगह ही हमें दिलवा दो।" तब रोमानो बोला—"वह जगह दर असल एक गोशाला है और जिस महिला के बारे में मैंने अभी कहा वही उसकी मालकिन है। जगह खाली ही पड़ी है। रात-दिन उसमें ताला पड़ा रहता है। यदि तुम उसमें रहना चाहते हो तो आज रात तुम सबको उस महिला के घर खाना खाना चाहिए।" मैंने यह बात मंजूर कर ली और उस रात नई जगह याने गोशाला में रहने जाने का इरादा पक्का किया।

अँधेरा हो जाने पर हम उस महिला के घर गए। हमें देखते ही उस बेचारी की आँखों में पानी भर आया। उसका पति हाल ही में लड़ाई में खेत रहा था। उसकी इकलौती लड़की अनाथ हो गई थी। स्वयं उसपर संकट के बादल फट पड़े थे। इस कारण संकट में फँसे हुए हम लोगों के प्रति उसके हृदय में सहानुभूति जाग उठी थी। वह सहानुभूति ही हमारे लिए सब कुछ करने को उसे उद्युक्त कर रही थी।

हमें उस महिला के घर बड़ा बढ़िया खाना मिला। भोजन के बाद हमने गोशाला में जाकर अपनी नई गृहस्थी सजाई। रोमानो से मैंने कहा—"जैसे भी बने मेरे लिए कहीं से तुम एक दूरबीन और एक पिस्तौल ले

आओ।" जिस गोशाला में हम रहते थे उसमें एक खिड़की थी। उस खिड़की में से दूरबीन की सहायता से मैं आम रास्ता और उसपर तथा गाँव में आसपास होनेवाली हलचलें बेरोकटोक देख सकता था। एक-दो दिन के बाद ही कोशिश करके रोमानो ने दूरबीन ला दी। हर लोगों ने बारी-बारी से खिड़की में से दूरबीन के ज़रिए बाहर देखते रहने का निश्चय किया।

गोशाला में हम इस तरह दिनभर रहते और रात को रोमानो द्वारा पहले से ही निश्चित कर दिए गए किसी ग्रामीण के घर भोजन करने के लिए रोमानो के पीछे-पीछे जाते। दोपहर रोमानो गाँववालों से हमारे लिए जो भी माँगकर ले आता उन खाद्यपदार्थों पर ही हम गुज़र कर लिया करते। इस तरह दोपहर का समय रोमानो द्वारा हमारे लिए माँगी गई भीख पर और रात का समय उसके द्वारा निश्चय किए गए 'वारों' (दिनों) पर हम बिता रहे थे।[1] एक रात ऐसे ही एक स्थान पर भोजन करते समय रोमानो ने हमारा परिचय अंतोनेली नाम के एक नए इटालियन हितचिंतक से कराया। वह हमसे उम्र में चार-पाँच वर्ष बड़ा होगा। रोमानो की तरह वह भी सेना में रह चुका था।

एक सप्ताह हमने उस स्थान में निर्विघ्नता से बिताया। इसके बाद एक दिन जब मैं खिड़की मैं से दूरबीन लिए बाहर देख रहा था तो जो दृश्य दीख पड़ा, उसे देखकर मैं दंग रह गया। एक बड़ा ट्रक आम रास्ते से गुज़र रहा था। उसमें दो जर्मन सैनिक और कुछ मोटर साइकिलें थीं। देखते-देखते उस ट्रक के पीछे दूसरा भी एक ट्रक आया और चला गया। मैंने तुरंत अपने सब साथियों से यह बात कही। उन्होंने भी दूरबीन से देखकर विश्वास कर लिया। हम सब लोग अब बड़ी चिंता में पड़ गए। जर्मन सैनिकों की हलचलें नज़दीक होने का वह इशारा ही था। जिस गाँव का आश्रय हमने लिया था, दुर्भाग्यवश ठीक उसीपर जर्मनों की नज़र पड़ गई थी। दूसरे दिन रोमानो आया और यही खबर लाया कि लगभग ४० जर्मन सैनिक गाँव में आए हैं और अपने रहने के लिए वे गाँव के मकान खाली करा रहे हैं। उनके पीछे और भी सैनिक आ रहे हैं। अब क्या किया जाए, कहाँ जाया जाए इस विचार से मैं बेचैन हो उठा।

१. महाराष्ट्र की एक पुरातन प्रथा जिसके अनुसार किसी अकिंचन परन्तु होनहार व्यक्ति को गृहस्थाश्रमी व्यक्ति प्रति सप्ताह एक निश्चित दिन भोजन कराता है।

नया हितचिंतक : अंतोनेली

उस स्थिति में भी हमने वह गोशाला एकदम खाली नहीं की। रोमानो और अंतोनेली से हमने इस विषय पर विचार-विनिमय किया। रोमानो और अंतोनेली से इस विषयपर हम चर्चा करते, वे लोग गाँव में जाकर वहाँ के प्रतिष्ठित लोगों से सलाह-मशविरा करते और फिर हमारे पास आकर उन लोगों के मतों से हमें परिचित कराते। गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को हमारे प्रति बड़ी सहानुभूति थी। ठंड काफी ज्यादा होने के कारण सबकी राय यह थी कि हम लोग गाँव में ही रहें। रोमानो और अंतोनेली से मैंने कहा—"जर्मनों को इसका बिल्कुल शक नहीं होना चाहिए कि तुम लोग हमारी मदद कर रहे हो। उल्टे

तुम जर्मन सैनिकों का विश्वास प्राप्त करो, धीरे-धीरे उनसे घुल-मिल जाओ और उनकी हलचलों की जानकारी प्राप्त करो।" उन दोनों ने भी प्रयत्न शुरू किए। अंतोनेली ने तो इस काम में काफी चतुराई दिखाई। उसने यह पता तो लगाया ही कि जर्मन उस गाँव में स्थायी रूप से रहनेवाले हैं; इसके अलावा एक जर्मन अधिकारी से मुलाकात कर उसके यहाँ मोटर ड्राइवर की नौकरी पाने का प्रयत्न करना भी उसने शुरू कर दिया।

जब बातें इस हद तक आ गईं तब हमने गोशाला छोड़कर जंगल में एक गड़रिए की झोंपड़ी में जाकर रहने का निश्चय किया। रोमानो ने वह झोंपड़ी हमें दिखाई थी। हमारे पास पर्याप्त कपड़े न होने के कारण पहाड़ी सर्दी हम बरदाश्त नहीं कर सकेंगे इसलिए ग्रामवासियों की राय थी कि हमें पहाड़ों में न रहकर गाँव में ही रहना चाहिये। मायस्त्रो भी इस विषय में हमारे प्रति सहानुभूति दिखा रहा था। हमने गाँववालों से कहा कि ठंड का सवाल बाद में हल करते रहेंगे लेकिन आज ज़रूरत है इस निवास-स्थान को जल्द-से-जल्द छोड़ देने की। तदनुसार एक रात हमने गोशाला खाली कर दी और और पहाड़ों की एक झोंपड़ी में रहने चल दिए।

# १६

# नया शत्रु

*अक्तूबर-नवंबर १९४३*
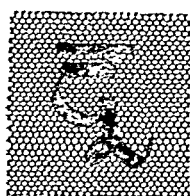
सरे दिन सुबह उठते ही हम पाँचों ने एकत्र बैठकर विचार विनिमय किया। पिछली रात रोमानो द्वारा दिखाई गई झोंपड़ी में हम एकत्र ही रहे थे। परंतु नीचे गाँव में जर्मनोंका आवागमन शुरू हो जाने के कारण इससे आगे इस तरह एकत्र रहने में खतरा था। इसलिये मैंने तय किया कि प्रत्येक अपने लिए अलग-अलग आश्रय-स्थान याने एकाध झोंपड़ी अथवा कोई अन्य सुरक्षित स्थान खोज ले। हमसे मिलने के लिए रोज़ रात को रोमानो उस झोपड़ी में आनेवाला था इसलिए मैंने उसी झोंपड़ी में रहने का निश्चय किया।

वह झोंपड़ी गाँव से कोई डेढ़-दो मील दूर पहाड़ के ढलान पर थी और पहाड़ के गड्ढों और टीलों की आड़ में होने के कारण गाँव से आसानी से दिख नहीं सकती थी। इस पहाड़ पर रहते हमें दो दिन हो गए थे। एक बार मैं यों ही आसपास घूम रहा था कि मुझे एक पानी का झरना दिखा। (आगे चलकर हमें मालूम हुआ कि उस झरने का नाम 'फॉन्ते-ला-स्पिना था'।) झरने के पीछे की तरफ पहाड़ में मुझे एक गुफा दीख पड़ी। बर्फ गिर-गिर कर पहाड़ का पत्थर छीज गया था जिसके फलस्वरूप वह गुफा बन गई थी।

बाहर के मुँह का पत्थर ज्यों-का-त्यों था। इस कारण किसी को शक भी नहीं हो सकता था कि उसके भीतर गुफा होगी। पत्थर के पीछे से गुफा में जाने का रास्ता और भीतर पोली जगह, ऐसी उस गुफा की रचना थी। वह सम्पूर्ण रूप से प्रकृति द्वारा निर्मित थी। अपनी झोंपड़ी की अपेक्षा वह गुफा मुझे बहुत ज्यादा सुरक्षित लगी। उस गुफा के भीतर घनघोर अँधेरा था। इसलिए बाहर से देख पाना संभव ही नहीं था कि भीतर कौन है। मैंने टॉर्च की रोशनी में उस गुफा का भीतरी भाग देखा। वह बिलकुल साफ थी। उस रात रोमानो के आने पर मैंने उसे ले जाकर वह नया आश्रयस्थान दिखाया। उसे भी वह जगह अधिक सुरक्षित मालूम हुई। मैं वहाँ जाकर रहने लगा। बाकी के चार अपने-अपने आश्रयस्थानों में रहते थे। पर रोज़ शाम को हम सब झरने के पास इकट्ठा होते थे। रोमानो भी जब आता, तब यहीं आकर हमसे मिलता था।

रोमानो गाँव की खबरें लेकर आता। उनसे हमें पता चला कि जर्मन अधिकारियों ने गाँव में बंदोबस्त अधिक कड़ा कर दिया है। हर घर में घुसकर वे तलाशी ले रहे हैं। गाँव में उन्होंने आतंक का वातावरण फैलाना शुरू कर दिया है। पर अंतोनेली ने अलबत्ता अपनी चतुराई से उनका विश्वास प्राप्त कर लिया है और उनके यहाँ ड्राइवर की नौकरी कर ली है। जर्मनों की गाड़ियों के साथ वह रोम तक आता-जाता है। हमारी दृष्टि से यह जानकारी बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। कैद से छूटने के बाद हमने पहले वेटिकन सिटी रोम जाने का फैसला किया था। हम यद्यपि रोम तक नहीं पहुँच सके थे फिर भी कम-से-कम हमारा एक दोस्त रोम तक जाने लगा था। रोम से इस तरह हमारा संबंध प्रस्थापित हो गया था। अच्छी-खासी प्रगति थी।

नवंबर के ठंड के दिन धीरे-धीरे गुज़र रहे थे। १८ नवंबर की रात। मैं अपनी गुफा में सोया हुआ था। सुबह के समय जब मैं गहरी नींद में था कि एकदम हड़बड़ाकर जाग उठा। मेरे गालों पर; बदन पर पानी की बूँदें टपक रही थीं। वह पानी कहाँ से गिर रहा था यह मैं समझ नहीं पा रहा था। गुफा के द्वार के पास जाकर खड़ा हो गया। पहले तो कुछ समझ ही नहीं पड़ा कि सामने मैं क्या देख रहा हूँ। अपने जीवन में इससे पहले कभी मैंने वैसा दृश्य नहीं देखा था। रेंगकर उस पार जानेवाली उत्तर रात्रि के अस्पष्ट होते अँधेरे में मुझे सर्वत्र एक स्वच्छ श्वेत आच्छादन फैला हुआ दिख रहा था। उस दृश्य को देखकर पहले तो मैं चकरा ही गया। बाद में थोड़ा आगे

बढ़कर मैंने उस श्वेत चद्दर पर पैर रखा तो पैर एकदम पिंडली तक भीतर धँस गया, दूसरा पैर भी उसी तरह भीतर धँस गया। दोनों पैर उस अत्यंत ठंडे स्पर्श से झनझना-से उठे। नर्म, सफेद, स्वच्छ हिम-वर्षा थी—पहली! एक शत्रु जर्मन थे; अब उनके साथ हमारे लिए यह एक और शत्रु पैदा हो गया था और सफेद वर्दी पहने हमारी दुर्दशा करने के लिए आ धमका था।

१८ नवंबर से २० नवंबर तक के तीन दिन मैंने कैसे काटे यह अब बताना बड़ा कठिन है। रोमानो का भी पता नहीं था। झरने का पानी भी जम गया था। गरज़ यह कि न खाने को दाना था, न पीने को पानी और न मेरे इकलौते जानी दोस्त रोमानो के दर्शन हुए थे। साथ में पर्याप्त गरम कपड़े नहीं थे। ऐसी स्थिति में मैंने वह ज़बरदस्त ठंड किस तरह बरदाश्त की, भगवान ही जानता है। कड़ाके की ठंड के कारण बदन के जोड़ फूटने लगे। कानों के नीचे का चपटा भाग, आँखों के कोने, हाथ की अँगुलियों के पोर, सब फूटकर उनसे रक्तस्राव होने लगा। वह टीस, वे तीव्र वेदनाएँ असहनीय थीं। मैं उस स्थिति में कैसे ज़िंदा रहा इसीका मुझे आज आश्चर्य होता है।

अंत में दो-तीन दिन की जान-लेवा प्रतीक्षा के बाद ३० नवंबर को रोमानो आया। वह मुझे देवदूत जैसा लगा। मुझे सुरक्षित देखकर उसे बड़ी खुशी हुई। वह बोला—"इस बर्फ में तुम्हारा क्या हुआ होगा इसकी हम सबको बड़ी फ़िक्र थी। सीरिओ की माँ को तो इसीकी चिंता हो रही थी कि इस स्थिति में तुम कैसे ज़िंदा रहोगे। कितनी ही बार उसने मुझसे कहा कि मैं पहाड़ पर जाकर तुम सबको गाँव में ले आऊँ। परंतु जब तक बर्फ नर्म थी तब तक उसपर चलना असंभव था। बर्फ के सख्त होने तक याने दोन-तीन दिन तक यहाँ आना मेरे लिए असंभव था। सीरिओ की माँ तो कह रही थी कि गाँव में और कोई तुम्हें अपने घर में रखने को तैयार न हो तो पाँचों को ही मैं अपने घर में रख लेती हूँ। उनकी पूरी ज़िम्मेदारी मैं अकेले ही लिए लेती हूँ। वैसे गाँव में कुछ लोग तुम्हें अपने घर में रखने को तैयार हैं, परंतु उन सब को मायस्त्रो का बड़ा भय है। उसके घर रोज़ जर्मन आकर बैठते हैं। वहाँ उनके खाने-पीने और नाच-गाने के कार्यक्रम होते हैं। दिन-प्रतिदिन मायस्त्रो और जर्मनों के परस्पर संबंध अधिकाधिक दृढ़ होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में तुम्हें गाँव में कैसे ले जाएँ यह भी एक समस्या है और सर्दी में ठिठुरते हुए कैसे छोड़ दें, यह भी प्रश्न है।"

रोमानो की बातें सुनकर मैंने विचार किया और उससे कहा—"किसी भी स्थिति में हम पाँचों का एकत्र रहना हमारी सुरक्षा के लिए खतरनाक है। इसलिए तुम हमारे रहने के लिए गाँव में अलग-अलग अच्छी तरह से सुरक्षित घर देखते रहो।" जिस घर में सबसे कम लोग हों और जहाँ बच्चे बिलकुल ही न हों ऐसे घरों को ही देखने के लिए मैंने उससे कहा। छोटे बच्चोंवाले घर में यदि हम छिपकर रहें तो हम वहाँ सुरक्षित रहेंगे ऐसा मुझे नहीं लगता था। मायस्त्रो के बारे में मैंने रोमानो से कहा—"इस ठंड में हमारी बड़ी दुर्दशा हो रही है ऐसा तुम उससे कहो। गाँव में आश्रय लिए बिना हमें अब दूसरा चारा नहीं। यदि हम पहाड़ पर ही रहते हैं तो हमारे प्राण निकल जाएँगे। उससे कहना कि तुम ही हमें इस परिस्थिति में मदद कर सकते हो। कल रात हम पाँचों मायस्त्रो के घर खाने पर आएँगे। तुम मायस्त्रो से मिलो और हमारे विचारों पर उसका क्या मत है यह हमें यहाँ आकर बताओ। जैसे भी हो उस मायस्त्रो के गले में यह घंटी बाँधनी ही चाहिए।"

दूसरे दिन रात करीब ९ बजे रोमानो हमारे पास आया और उसने कहा कि मायस्त्रो ने हमारा प्रस्ताव मंजूर कर लिया है। उसके घर एक आदमी के रहने का इंतज़ाम हो सकता है और बाकी के चार के लिए हमने अलग-अलग घर निश्चित कर लिए हैं। जब उसने पूछा कि मायस्त्रो के घर कौन रहेगा तब मैंने उससे कहा—"मायस्त्रो के घर में मैं स्वयं रहूँगा। बाकी के चार को तुम जाकर यहाँ ले आओ। फिर हम सब साथ ही यहाँ से चलेंगे।" रोमानो जाकर चारों को ले आया और हम सब करीब ११ बजे मायस्त्रो के घर जा पहुँचे। रात १० बजे तक गाँव में जर्मन गश्त दिया करते थे। इसलिए हमने ज़रा देर से पहुँचना ही तय किया था। मायस्त्रो हमारी बाट जोह रहा था। वहाँ पहुँचने पर हम सबने खाना खाया। खाने के बाद मैंने मायस्त्रो से कहा—"मैं तुम्हारे यहाँ रहूँगा।" रोमानो बाकी के चार को उनके आश्रय-स्थानों पर ले गया। एक सीरिओ की माँ के घर रहनेवाला था; दूसरा उस विधवा महिला के घर रहनेवाला था जिसके घर हमने खाना खाया था। बाकी बचे दो की भी इसी तरह अलग-अलग अन्यत्र व्यवस्था कर दी गई थी।

जब रोमानो उन चारों को लेकर चला गया तब मायस्त्रो ने मुझे वह जगह दिखाई जहाँ मुझे उसके घर में छिपकर रहना था। छत और छप्पर के बीच

की पोली जगह में वह स्थान था। ऊपर जाने के लिए एक कोने के किवाड़ को भीतर से बंद कर रखने का प्रबंध मैंने कर लिया। रोमानो और मेरे चार साथियों के चले जाने के बाद मैंने अपनी टूटी-फूटी इटालियन ज़बान में मायस्त्रो से कुछ बातें स्पष्ट रूप से कह दीं। मैंने उससे कहा—"मायस्त्रो, तुम कट्टर फॅसिस्ट हो इसलिए गाँव के सब लोग तुमसे डरते हैं। ऊपर से, जर्मनों का तुम्हारे यहाँ रोज़ अड्डा जमा रहता है। तुम कब धोखा दोगे इसका कोई ठिकाना नहीं ऐसा सब लोग कहते हैं। पर एक बात तुम ध्यान में रखो कि यह भाग अब शीघ्र ही जर्मनों के अधिकार से निकल जानेवाला है। तुम अगर हमारी मदद करोगे तो जर्मनों के बाद यहाँ का शासन करनेवाले अंग्रज़ों से मैं तुम्हारी सिफारिश कर दूँगा। पर अगर तुमने कहीं मुझे दगा दिया तो गाँव के लोग अंग्रेज़ों को तुम्हारी सारी जानकारी दे देंगे और फिर ज़िंदगी तुम्हारे लिए एक बवाल हो जाएगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम इस सारी स्थिति पर खूब विचार कर लो।"

मेरी दो टूक बातें सुनकर मायस्त्रो बोला—"मुझे यों गलत मत समझो। गाँव के लोग कुछ भी कहते रहें, फिर भी कम-से-कम तुम मेरे बारे में बिलकुल निश्चिंत रहो। मैं तुम्हें हृदय से यथासंभव मदद करता आया हूँ और आगे भी करूँगा। मैं किसी ज़माने में फॅसिस्ट था, यह सच है। पर अब मेरा मत संपूर्ण रूप से बदल गया है। इस गाँव में आर्थिक दृष्टि से मेरी हालत कुछ अधिक मज़बूत होने के कारण ये जर्मन लोग खाने-पीने मेरे यहाँ चले आते हैं। मैं उन्हें 'नहीं' किस तरह कह सकता हूँ? यदि मैं उन्हें अपने घर में आने की मनाही करूँ तो वे मुझे ही गोली मारकर खत्म कर देंगे। पर कुछ भी हो, कम-से-कम तुम्हें तो मैं कभी दगा नहीं दूँगा। इस विषय में तुम बिलकुल बेफिक्र रहो।"

मेरे इस स्पष्टकथन का एक उपयोग निश्चित ही हुआ। उसने यह जान लिया कि हम उसे खूब पहचान गए हैं और इसलिए वह हमसे बड़ी सावधानी से पेश आने लगा। इसके बाद मैं मायस्त्रो के घर में रहने लगा। वहाँ रहते समय रोज़ उसके यहाँ आनेवाले जर्मन मुझे अपने स्थान से दिखा करते थे। लेकिन वे मुझे नहीं देख सकते थे। वे रोज़ आते थे, खाते-पीते थे, नाचते-गाते थे और चल देते थे। एक सप्ताह तक मैं यह कार्यक्रम देखता रहा। इसके बाद रोमानो से मेरी मुलाकात होने पर मैंने उससे कहा,

"रोमानो, इस जगह अब अधिक रहना मेरे लिए खतरे से खाली नहीं है। जर्मन लोग रोज़ यहाँ आते हैं। मायस्त्रो उनके साथ शराब पीता है। शराब के नशे में अगर किसी दिन वह हमारे बारे में कुछ बक बैठा तो हमारी क्या हालत होगी? जितना हम सोचते थे उतना सुरक्षित यह स्थान नहीं है। तुम कुछ भी करो और मेरे लिए जल्द ही कोई दूसरी अधिक सुरक्षित जगह खोज दो।" रोमानो को भी मेरी बात जँच गई।

नई जगह तय करके दूसरे रात करीब दस-साढ़े दस बजे रोमानो आया। अपने कहा कि मायस्त्रो को बताकर हम यहाँ से निकल चलेंगे। जब मायस्त्रो से भेंट हुई तो हमने दूसरी जगह जाकर रहने का अपना निश्चय उसे बताया। उसे लगा कि उसके प्रति अविश्वास के कारण ही मैं उसका घर छोड़ रहा हूँ इसलिए वह बोला—"तुम यहाँ से क्यों जाते हो? क्या मुझपर तुम्हारा विश्वास नहीं? सच कहता हूँ, मेरी तरफ से तुम्हारे लिए कभी खतरा पैदा नहीं होगा।" मैंने उसे अपने जाने का कारण समझाकर बताया। मैंने कहा—"यहाँ रोज़ जर्मन आते हैं। कभी किसी कारण से यदि भूल से भी उन्हें पता चल गया कि तुमने मुझे अपने घर में आश्रय दिया है तो तुम्हें ही तकलीफ होगी। मुझे तो वे पकड़ लेंगे ही। परंतु शत्रु को आश्रय देने का अभियोग लगाकर तुम्हें भी गोली मारकर समाप्त कर देंगे। मेरे कारण तुम्हें यह व्यर्थ की तकलीफ न हो इसीलिए मैं तुम्हारा घर छोडकर अन्यत्र जा रहा हूँ। पर हाँ, हमपर एक ही मेहरबानी करना। तुम इतनी सावधानी ज़रूर बरतना कि जर्मनों को यह पता न चल पाए कि इस गाँव में कैद से भागे हुए हम पाँच कैदी रहते हैं। इतना ही तुम कर दो तो हम समझेंगे कि तुमने हमारी खूब मदद की।" मायस्त्रो को भी मेरी बात जँच गई। उससे विदा लेकर मैं रोमानो के साथ बाहर निकल पडा और अपने नये आश्रय-स्थान जा पहुँचा। बाकी के चार अपने-अपने स्थानों पर थे ही। उन्हें अपने-अपने स्थान सुरक्षित लग रहे थे। मैंने अलबत्ता फिर एक बार मकान बदल दिया।

१७

# अदलीना

नवंबर १९४३—जनवरी १९४४

यत्रो का घर छोडकर मैं अपने नए आश्रय-स्थान के निकट आया जो उस गाँवकी वीच बस्ती में था। उस समय रात के साढे ग्यारह-बारह बजे होंगे। घर में रोशनी दिख रही थी। रोमानो के पुकारने पर अदलीना ने—उस घर की मालकिन ने—दरवाज़ा खोला और वह हमें भीतर ले गई। अदलीना एक शांत, प्रसन्न चेहरे की भावपूर्ण आँखोंवाली ज़रा स्थूल और करीब पैंतीस वर्ष की पुरंध्री थी। उसका पति सेना में था और उस समय वह युद्ध-कैदी की हैसियत से भारत में रखा गया था। घर में सिर्फ दो ही जनी रहती थीं। एक वह स्वयं और दूसरी उसकी पचहत्तर-वर्षीया वृद्धा माँ। हम भी युद्ध-कैदी थे; भारतीय थे। इसलिए अदलीना को हमारे प्रति आत्मीयता थी। हमें मदद करने की उसे उत्कट इच्छा हो रही थी।

हम भीतर गए। वहाँ अदलीना की माँ भी हमारे आने की प्रतीक्षा में अभी तक जाग रही थी। हम उनसे बातें करने लगे। बातचीत के दौरान मैंने उसने कहा कि गाँव में जर्मन आकर चारों तरफ फैल गए हैं और [illegible] दिन-प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है। अदलीना ने भी हमारे कथन की पुष्टि की। मायत्रो के बारे में उसका मत कोई विशेष अच्छा नहीं था। [illegible] [illegible]

शांत प्रसन्न भावपूर्ण आँखें : अदलीना

कहना था कि आज नहीं तो कल, मायस्त्रो मुझे ज़रूर ही दगा देता। थोड़ी देर हम इसी तरह बातें करते रहे और करीब आधे घंटे के बाद रोमानो मुझे अदलीना के घर के पास उसके मवेशी के कोठे में ले गया। अदलीना भी हमारे साथ थी। उस कोठे या गोठ में तीन प्राणी थे। एक सूअर, एक खच्चर और एक गाय। उन्हींमें चौथा मैं भी जा मिला। उस गोठ के छप्पर के नीचे घास रखने के लिए एक छत थी। उस छत पर सूखी घास के गट्ठे ठसाठस भरे हुए थे। एक तरफ की दीवार पर ऊपर जाने के लिए लकड़ी की नसेनी थी।

मैंने अदलीना और रोमानो को अपनी सुरक्षा की दृष्टि से कुछ सूचनाएँ दीं। मैंने उनसे कहा कि रात होने के बाद मेरा खाना इसी स्थान पर लाकर रख दिया जाए। घर में मेरे विषय में परस्पर कभी कोई बातें न की जाएँ। हम लोगों के नाम का उच्चार भी न किया जाए। गुप्तता रखने के लिए यह
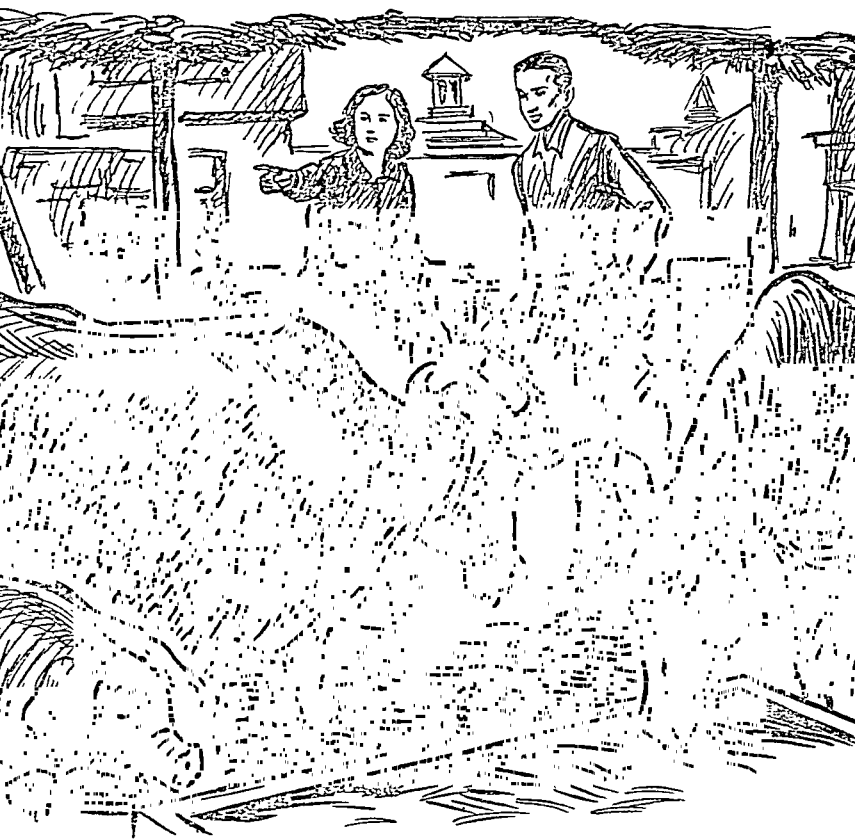
सूअर, खच्चर—उन्हींमें चौथा मैं भी

सावधानी रखना अतीव आवश्यक था। ये बातें हो जाने पर अदलीना और रोमानो चल दिए और उस छत की थोड़ी घास निकालकर जो खाली स्थान बना उसीके भीतर मैं सो गया।

इस तरह उस गोठ में तीन-चार दिन रहने के बाद मुझे एक नया विचार सूझ पड़ा और उसे कार्य-रूप में लाने की दिशा में मैं कोशिश भी करने लगा। छत के मध्य-भाग से मैंने घास के कुछ गट्ठे अलग हटा दिए और भीतर अपने सो सकने लायक स्थान बना लिया। इरादा यह था कि भीतर घुसने के बाद भीतर आने के रास्ते पर थोड़ी [illegible]रकर वह रास्ता भी बंद कर दूँ। ऐसा कर देने पर बाहर से किसी को [illegible] न चल पा[illegible] मैं

भीतर हूँ। यदि घास नीचे के तख्ते तक निकाल दूँ तो तख्ते के दराज़ों से मुझे हवा भी भरपूर मिल सकेगी। अपनी इस योजना के अनुसार मैं काम में लग गया और उसे पूरा करने से पहले उस शाम जब रोमानो और अदलीना मुझसे मिलने आए तो अपनी योजना मैंने उन्हें बताई। उन्हें भी मेरी योजना बहुत पसंद आई। इसलिए फिर मैंने उस स्थान को, जैसा मैं चाहता था उस तरह बना लिया और वहाँ रहने लगा।

दिसंबर के प्रथम सप्ताह में इस प्रकार हमारे सुरक्षित आश्रय-स्थान का प्रबंध हो गया। अब मेरा मन दूसरे विचारों में उलझने लगा। रोमानो और अंतोनेली मेरे पास आकर गाँव की खबरें दिया करते। मेरे चारों ही साथी सुरक्षित हैं यह मुझे रोमानो से ही हमेशा मालूम होता रहता था। जर्मनों की गाड़ियों के साथ अंतोनेली रोम तक जाता रहता है यह समाचार पाते ही मुझे अब लगने लगा कि इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए।। मैंने अंतोनेली से पूछा—"क्या तुम रोम में रहनेवाले ब्रिटिश राजदूत से मिलोगे?" उसने तुरंत उत्तर दिया—"अगर कुछ काम हो तो ज़रूर मिलूँगा।" मैंने टिश्यू पेपर पर एक खत लिखा। उस खत को एक सिगरेट से तमाखू निकालकर उसमें भर दिया और दोनों छोर पर थोड़ी-थोड़ी तमाखू भरकर सिगरेट को ज्यों-का-त्यों फिर बना दिया। इसके बाद इस भय से कि धोखे से अंतोनेली कहीं यही सिगरेट न पी ले मैंने उसपर एक खास चिह्न अंकित कर दिया। पत्र में मैंने लिखा था : "हम पाँच भारतीय कैदी जर्मनो की छावनी से पैरोल लेकर बाहर निकल पड़े हैं और विला-सान-सबास्तिआनो नामक गाँव में आकर रहने लगे हैं। हम सिर्फ इस आशा से यहाँ आकर रहे कि ब्रिटिश सेना सात-आठ दिनों के भीतर यहाँ आएगी और हमें मुक्त करेगी। पर अब तो करीब तीन महीने हो गए हैं। दिन-प्रतिदिन हमारा रहना यहाँ मुश्किल हो रहा है। जर्मनों के डर के कारण गाँववालों से पर्याप्त खाद्य-पदार्थ भी हमें नहीं मिल पा रहे हैं। यदि हालत इसी तरह बनी रही तो मुक्ति पाने की आशा छोड़कर, हमें अपने आपको जर्मनों के हवाले कर देने के लिए मजबूर हो जाना पड़ेगा"।

अंतोनेली के साथ मैंने यह पत्र भेज दिया और उससे कहा कि पत्र देने की कोई निशानी वह अपने साथ ले आए। एक-दो दिन के बाद अंतोनेली लौटकर आया। वह अपने साथ उस राजदूत का विज़िटिंग कार्ड ले आया था। वह बोला—"मैंने राजदूत को सिगरेट दी। उसने मेरी सूचना के

अनुसार उसे खोला और पत्र निकालकर पढ़ा। पढ़कर वह बोला : तीनचार दिन के बाद फिर आना। मैं तुम्हें इसका जवाब दूँगा। पर मुझे उतना समय नहीं था। इसलिए उसके द्वारा दिया गया यह विज़िटिंग-कार्ड और उसके द्वारा दिए गए पनीर, टमाटर आदि के डिब्बे मैंने लिए और लौट आया।"

अंतोनेली ने वह विज़िटिंग-कार्ड और डिब्बे मेरे हवाले किए। मतलब यह कि राजदूत को मेरा पत्र मिल गया था। अब जवाब क्या आता है इसकी मैं बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। दूसरी बार अंतोनेली जब रोम गया तो मेरे पत्र का उत्तर भी ले आया। मेरे पत्र की तरह एक सिगरेट के भीतर टिश्यू पेपर पर टाइप किया हुआ पत्र था। उसमें नीचे लिखा मज़मून था—

"प्रिय सालवी, तुम्हारा पत्र मिला। तुम पाँच लोगों ने जर्मनों की कैद से पैरोल लेकर अपनेको रिहा कर लिया और तुम हमसे मिलने का प्रयत्न कर रहे हो यह जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई। जैसा कि तुमने लिखा है, इस तरह कड़ाके की ठंड के कारण ही हमारी सेना की हलचलें थोड़ी देर के लिए थम गई हैं। पर कुछ ही दिनों में हमारी सेना वहाँ आएगी इसमें ज़रा भी शक नहीं। तुम निराश मत हो। तुम दक्षिण में कसीनो के नज़दीकवाले जंगल में जाने का प्रयत्न करो। पता चला है कि वहाँ अमरीकनों ने पॅरॅट्रुपर्स उतारे हैं। वे लोग तुम्हारे जैसे कैद से भागे हुई कैदियों की मदद करेंगे। ऐसा किया जा चुका है। यदि यह तुम न कर सको तो रोम आने की कोशिश करो। परंतु इन सबसे अच्छा उपाय यही है कि जिन लोगों ने तुम्हें आज तक मदद दी है, उनका साथ जहाँ तक हो सके तुम मत छोड़ो। तुम जिस गाँव में हो उसमें और उस गाँव के आसपास जर्मनों की जो हल्चले हो रही हैं, उनकी जो भी जानकारी तुम्हें होगी वह सब हमें भेजने की कोशिश करो।" और पत्र के नीचे ब्रिटिश राजदूत के हस्ताक्षर थे।

इस पत्र को पढ़कर हमें थोड़ी हिम्मत-सी मिली और हमने उसी गाँव में रहने का दृढ़ निश्चय किया। बीच की अवधि में रोमानो या अदलीना जब मुझे खाना देने या मुझसे मिलने आते, उस समय मैंने धीरे-धीरे और बातें करते-करते उनसे इटालियन भाषा सीख ली थी। रोज़ के व्यवहार में काम आनेवाली भाषा वे मुझे चीज़ों को प्रत्यक्ष दिखाकर और अभिनय करके सिखाते थे। कोई डेढ़-दो महीने के भीतर मैं इटालियन भाषा समझने लगा था और उस भाषा में उनसे मामूली बातचीत भी आसानी से करने लगा था।

ऊपरी तौर पर यद्यपि सब तरफ शान्ति नज़र आ रही थी फिर भी मेरे आसपास तूफान भाँय-भाँय कर रहा था। अदलीना और उसकी माँ दोनों मुझ से लगातार आग्रह कर रही थीं कि २५ दिसंबर का पूरा दिन याने बड़े दिनों के त्योहार का पहला दिन मैं उसके घर में उनके साथ रहकर विताऊँ। बीच में एक-दो बार मैं अपने गुप्त स्थान से दिन में आहट लेता हुआ और लुकते-छिपते उनके घर गया था और एक-दो घंटे वहाँ रहकर उनसे गप्पें की थीं। इसके बावजूद २५ दिसंबर का पूरा दिन उनके घर में बिताने के लिए मैं राज़ी नहीं हो रहा था। पर वे जैसे ज़िद पर ही आ गयी थीं। उनका लगातार आग्रह था। यही नहीं, बल्कि मैं किस तरह उनके घर आऊँ इसकी संपूर्ण और विस्तारपूर्वक जानकारी भी उन्होंने मुझे दी थी। उनके घर के दरवाज़े में एक ताला फिट था। दरवाज़े को भीतर से बंद कर लेने पर वह बाहर से बिना ताली के खुल नहीं सकता था। ताले की उनके पास दो तालियाँ थीं जिन में से एक उन्होंने मुझे दे दी और कहा—"सुबह चार बजे जब रास्ते में सन्नाटा रहता है, तुम उठ जाना और इस ताली से हमारे घर का दरवाज़ा खोलकर भीतर बैठ जाना। सुबह का वक्त रहेगा। काफी ठंड रहेगी। हर्थ (दीवार में बनी सिगड़ी) में राख के नीच दबा एक अंगार मिलेगा। उसकी आग तेज़ कर लेना। नज़दीक ही ईंधन रखा रहेगा उसे हर्थ में डालकर आग जला लेना और उसपर कॉफी के लिए पानी भी गरम होने को रख देना। सुबह छः सवाछः बजे तक हम भी उठकर आ जाएँगी।" उन्होंने जब इतने आग्रह और पूरी तैयारी से निमंत्रण दिया तो उस निमंत्रण को अस्वीकार कर देना मेरे लिए बिलकुल असंभव हो गया और अंत में मैंने उनकी प्रार्थना के आगे सिर झुका दिया।

२५ दिसंबर के झुटपुटे में मैं उठा और जैसा कि तय हुआ था, अदलीना के घर गया और ताली से उसके घर का दरवाज़ा खोलकर भीतर गया। दरवाज़ा भीतर से बंद कर लिया और हर्थ में आग जला दी। कॉफी के लिए पानी भी गरम होने को रख दिया और मैं भी आग तापने वहीं बैठ गया। दिसंबर की उस सर्द सुबह में वह ऊष्मा बड़ा सुखदायी लग रहा था। सामने लाल और केसरिया अग्नि-शिखाएँ नाच रही थीं। उनकी ओर देखता हुआ मैं अपनी भाग्य-यात्रा पर विचार कर रहा था। पिछले बड़े दिनों में मैं ॲव्हर्सा के कैंप में जर्मनों का युद्ध-कैदी था। आज बड़े दिनों के इस प्रथम

दिन, अपने आपको कैद से रिहा करके मैं यहाँ अस्तबल में आ पड़ा हूँ। अगला बड़ा दिन—वह कहाँ उदित होगा—? कैसा उदित होगा—? और क्या विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि वह उदित होगा ही? इस प्रकार के विचारों में मैं खोया हुआ था कि अदलीना और उसकी माँ दोनों आ पहुँचीं। उन्होंने 'बोन जोर्नो' (शुभ प्रभात) कहकर मेरा अभिवादन किया। सम्भवतः वे होंगे। उन्होंने मुझे कॉफी बनाकर दी। हमने कॉफी पी और वे दोनों सामूहिक प्रार्थना में सम्मिलित होने के लिए चर्च चली गईं। करीब आठ बजे अदलीना अकेली ही लौटकर आई। उसे पानी लाने जाना था।

उसे जाकर ५-१० मिनिट भी नहीं हुए थे कि वह एकदम भागती हुई वापिस आई। आते ही उसने पहले दरवाज़ा बंद कर लिया और उससे टिककर खड़ी हो गई। वह हाँप रही थी। उसकी आँखों में आँसू थे और गले में सिसकियाँ अटकी हुई थीं। मुझे देखते ही उसने छुटकारे की एक साँस ली। हाँपती हुई ही वह कहने लगी—"अभी पनघट पर सुना कि जर्मन दो कैदियों को पकड़कर ले गए हैं। यह सुनते ही मैंने हाथ का पानी का बर्तन वहीं पटका और भागती हुई घर आई। मुझे लगा साल्वी कि तुम्हें ही उन्होंने पकड़ा होगा।" यह समाचार सुनकर मैं अपने साथियों के लिए चिंतित हो उठा। हम दोनों बातें कर ही रहे थे कि बाहर बिगुल बजने लगा और थोडी देर बाद ऐसी घोषणा की गई कि जर्मन अधिकारी सारे गाँव की तलाशी लेनेवाले हैं, इसलिए सब लोग अपनी-अपनी जगह पर ही रुक जाएँ। कोई भी अपना स्थान न छोड़े।

अदलीना काफी घबरा गई थी। मैंने उसे हिम्मत दी और कहा—"तुम कोई चिन्ता मत करो। चलो, तुम मुझे अपने सोने के कमरे में ले चलो। देखें, मेरे छिपने के लिए वहाँ कोई सुरक्षित स्थान है कि नहीं?" दिन का समय था। इसलिए अदलीना के घर से अपने गोठवाले आश्रय-स्थान तक जाना उस समय मेरे लिए संभव ही नहीं था। अदलीना ने मुझे अपना सोने का कमरा दिखाया। उस कमरे में ७–८ फुट ऊँची एक विशाल और पुरानी अलमारी थी जिसके भीतर, ऊपरी भाग में, उसके कपड़े टँगे थे और नीचे के भाग में चद्दरें, कम्बल और गिलाफ आदि कपड़े बड़ी तरतीब से एक-के-ऊपर-एक रखकर रखे थे। कपड़ों का यह ढेर करीब तीन फुट ऊँचा था। मैंने अदलीना से कपड़ों के उस ढेर को बाहर निकालने के लिए कहा। मैं अलमारी के भीतर

घुसकर आराम से बैठ गया और कपड़ों के उस ढेर को अपने सामने रख लिया। अलमारी तीन-साढ़े तीन फुट चौड़ी थी। इसलिए कपड़ों का ढेर भीतर रहते हुए भी मैं उसमें आराम से बैठ सकता था। मैंने अदलीना से जताकर कहा—"तुम अपने घर का दरवाज़ा खुला ही रहने देना। अगर कोई तुम्हारे पास आए तो उससे शान्तिपूर्वक बातें करना। इस अलमारी को बंद कर ताला लगा देना। अगर किसीने तुमसे अलमारी खोलने के लिए ताली माँगी तो कह देना कि वह तुम्हारी माँ के पास है और माँ गिरजाघर गई है।"

मैं उस अलमारी में छिपकर मुश्किल से १०-१५ मिनट ही बैठा रहा हूँगा कि एक जर्मन अधिकारी दो सैनिकों के साथ अदलीना के घर आ धमका। अदलीना ने घर का दरवाज़ा पूरा खुला हुआ ही रखा था। अफसर के भीतर आते ही अदलीना ने बड़े उत्साह से उसका स्वागत किया। उसे कॉफी बनाकर पिलाई। उसके प्रति बड़े दिन की शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। वह हँस हँसकर बोल रही थी। अंत में बोलते-बोलते वह जर्मन अधिकारी उस कमरे में गया जहाँ मैं छिपा हुआ था। उसने पलंग पर पड़े गद्दों को अस्तव्यस्त करके देखा। बाहर क्या हो रहा है वह मैं अलमारी के भीतर सुन सकता था, पर वहाँ से कुछ देख नहीं सकता था। उस जर्मन अधिकारी ने उससे पूछा कि अलमारी में क्या है? अदलीना ने उत्तर दिया कि उसमें कपड़े रखे हैं। अलमारी की ताली माँ के पास है और वह गिरजाघर गई हुई है। फिर उन तीनों में से किसी एक ने जाते-जाते अचानक बंदूक के दस्ते से अलमारी के दरवाज़े पर ठोंककर देखा। वह धक्का यद्यपि कोई बड़े ज़ोर का नहीं था फिर भी मैं भीतर काँप उठा। यदि उसपर अलमारी को फोड़कर देखने की सनक सवार हो जाती तो?—पर सौभाग्य से वैसी कोई बात नहीं हुई और वे लोग जैसे आए थे वैसे ही चले गए।

अदलीना उन्हें दरवाज़े तक पहुँचाने गई। उसने उन्हें हँसते-हँसते विदा किया। उनके घर के बाहर चले जाने पर अलबत्ता उसने दरवाज़ा बंद कर दिया और उसका सारा उधार का उत्साह ठंडा पड़ गया। वह दौड़ती हुई अलमारी के पास आई और मुझे पुकारकर दरवाज़ा खोलने लगी। उसे डर लग रहा था कि भीतर मेरा दम घुट जाएगा। मैंने भीतर से ही उससे कहा—"तुम अलमारी खोलने की जल्दी मत करो। जब तक यह सूचना नहीं मिल जाती कि सब ठीक है, तब तक अलमारी में बंद रहना ही मेरे लिए अच्छा

माँजी...बड़ी खुश थीं...

होगा। मेरा दम बिलकुल नहीं घुट रहा है और जब घुटने लगेगा तो तुम्हें रवाज़ा बजाकर सूचना दूँगा।

एक घंटे के बाद "ऑल क्लियर" (सब ठीक है) का बिगुल बजा। अदलीना ने अलमारी खोली और मैं बाहर निकला। थोड़ी देर के बाद गिरजाघर से माँजी भी लौटकर आईं। वे बड़ी खुश थीं। बुढ़िया को मेरी होशियारी पर इतना भरोसा था कि उसे कभी यह विश्वास ही नहीं होता था कि मुझे कोई खतरा हो सकता है। अदलीना ने माँ से पूछा—"किसको पकड़ा ?" परंतु बुढ़िया को इसका कोई पता नहीं था। बाद में दोनों ने बड़े

दिना का खाना पकाने की तैयारी की और हम सब ने डटकर खाना खाया।

शाम को अँधेरा हो जाने के बाद रोमानो आया। वह बड़ा चिंताग्रस्त और बेचैन दिख रहा था। उसे यह सोचकर बड़ी चिन्ता हो रही थी कि मेरे साथ क्या गुज़र रही है। मुझे सही सलामत देखकर उसे बड़ी खुशी हुई। उसने बड़े प्रेम से मुझे अपनी भुजाओं में कस लिया और "ब्रावो ब्रावो" (शाबाश, शाबाश) कहने लगा! मैंने सारी घटना कह सुनाई और जानना चाहा कि जर्मनों ने किसे पकड़ा है।

कॉफी की चुस्कियाँ लेते हुए उसने हमें उन पकड़े गए कैदियों का सारा किस्सा सुनाया। वह बोला—

"दो ज़ेकोस्लाव कैदी भागकर आए थे और इस गाँव में रहते थे। वे गौरवर्ण थे। बड़े धड़ाके से इटालियन बोलते थे। इस कारण वे शहराती पोशाक पहनकर गाँव में बेफिक्री से घूमते थे। जर्मन अधिकारियों को जब पता चला कि वे इस गाँव में हैं तब उन दो अधिकारियों ने अपनी फौजी वर्दी पर ढीली इटालियन पोशाक पहनी और वे गाँव के लोगों में मिल गए। सड़क पर खेलनेवाले छोटे-छोटे लड़कों से उन्होंने दोस्ती की और लड़कों से कहा— 'अपने गाँव में जो दो जेकोस्लाव कैदी छिपकर रहते हैं उन्हें तुम जानते हो न? हम लोग उनकी मदद करने आए हैं। वे कहाँ रहते हैं, जानते हो तुम?' बेचारे मासूम लडके—वे उन जर्मनों को ठीक उसी घर में ले गए जिसमें वे दोनों कैदी बैठे थे। तुरंत ही जर्मनों ने उन दोनों को पकड़ लिया और सारे गाँव में उनकी बड़ी बेइज़्ज़ती की।"

इस किस्से को सुनने के बाद हम नौ-साढ़े नौ तक गप्पें लगाते रहे। फिर रोमानो मुझे गोठ में पहुँचाकर चल दिया। जाने से पहले उसने मुझसे कहा कि मेरे चारों साथी मजे में हैं। रोमानो जा रहा था, मैं उसकी ओर देखता ही रहा। रोमानो—जिससे पहले दिन सुबह के सूर्यप्रकाश में सड़क पर हमारी मुलाकात हुई थी; रोमानो—इस गाँव का अग्रदूत जो हम पाँचों को बचाने के लिए जी-तोड़ कोशिश कर रहा था। इधर अदलीना को हिंदुस्तान से उसके पति के पत्र आते थे और रेडियो पर युद्ध-कैदियों की खबरें प्रसारित होती थीं। इसके कारण भारतीयों की सज्जनता के प्रति उसके मन में कृतज्ञता के भाव भर उठे थे। अदलीना और उसकी माँ का सारा बर्ताव भारतीयों के ऋण से मुक्त होने का एक प्रयत्न था;—पर मुझपर जो उपकार

उन्होंने किए; मैं आजीवन उनका मूल्य नहीं चुका पाऊँगा।

अदलीना का अतिथ्य किसी भी प्रकार के खतरे का विचार करने को तैयार नहीं था। २५ दिसंबर को जो भीतिदायक घटना घटी थी, उसके बाद भी अदलीना ने मुझसे यह आग्रह करना शुरू किया कि ३१ तारीख की शाम से मैं उसीके घर जाकर रहूँ। नये वर्ष के प्रारंभ की वह शाम! उन दोनों का कहना था कि जब तक वे मुझे नए वर्ष की शुभकामनाएँ अपने घर में समारोह-पूर्वक नहीं देंगी, तब तक उन्हें चैन नहीं मिलेगा। इधर रोमानो ने आकर मुझे बताया था कि गाँव का वातावरण अधिक गंभीर हो गया है। जर्मनों को पता लग गया है कि इस गाँव में और भी भागे हुए कैदी रहते हैं और उन्हें पकड़ने के लिए वे अपने प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर रहे हैं। इसलिए उसने मुझे जता दिया कि ऐसी परिस्थिति में छिपे रहना ही सुरक्षा की दृष्टि से अधिक अच्छा है। उसने मुझे अपने गोठ से बाहर जानेकी सख्त मनाही कर दी थी। इसके बावजूद अदलीना और उसकी माँ के आग्रह के कम होने के कोई आसार नज़र नहीं आ रहे थे। मुझसे भी अपनी स्नेहशीला आश्रयदात्री का दिल नहीं दुखाया जाता था। इसलिए अंत में मैंने उनकी बात मान ली। ३१ दिसंबर की रात को अँधेरा हो जाने पर मैं अपनी गोठ से बाहर निकला और अदलीना के घर गया। थोड़ी ही देर में वहाँ रोमानो भी आ पहुँचा। मेरे चारों साथियों से मिलकर, उन्हें नए वर्ष की शुभकामनाएँ देकर और उनका कुशल-मंगल पूछकर वह अब मुझसे मिलने आया था। नव वर्ष का स्वागत करने के लिए सजी उस रात को उसकी भावनाएँ उमड़ रही थीं। भीतर आते ही उसने मुझे कसकर बाँहों में भर लिया और मुझे चूमकर हृदय से मुझे 'नव वर्ष शुभदायक हो' कहकर मुबारकबादी दी। वह हमारे साथ बारह बजे रात तक ठहरा रहा। बारह बजे गिरजाघर के घंटे बजने लगे। इसी घंटानाद से आकर्षित होकर इस गाँव में मैं आया था और कुछ दिन गाँव में कुछ दिन नज़दीक के बागीचे में, कुछ दिन पहाड़ियों और दर्रों में और अब पुनः इस कड़ाके की ठंड में अदलीना के घर के नज़दीक उसकी एक गोठ में रह रहा था। जिन घंटों ने एक बार हमें अपने गंभीर नाद से आश्रय पाने का निमंत्रण दिया था, मुझे लगा कि वही घंटे अब मेरे भविष्य के लिए अपने गंभीर नाद से नये वर्ष की शुभकामनाएँ दे रहे हैं। नया वर्ष आरंभ हो चुका है, यह निश्चित है; पर हमारा भविष्य? वह अभी भी अनिश्चित ही था।

१८

# चालीस किलोमीटर दूर जंगल

जनवरी-फरवरी १९४४
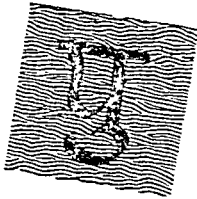
राना वर्ष अस्त हो गया और हमारे चाहने, न चाहने की परवाह न कर नया वर्ष उदित हुआ। पुराने वर्ष की तकलीफें हमने बरदाश्त की थीं। आशा और निराशा के हिल्कोरे हमने अनुभव किए थे। हमारा जीवन 'विला-सान–सबास्तिआनो' के आसपास ठोकर खाता हुआ चक्कर काट रहा था। अब इस नये उदित हुए वर्ष में हमें कुछ नया प्रकाश, कोई नई दिशा मिले—ऐसी मेरी मनोकामना थी।

नये वर्ष के पहले ही महीने, याने जनवरी में जो हुआ वह सब अजीब ही था। जनवरी के बीच एक रविवार को अदलीना ने मुझे कॉफी पर बुलाया। मैं उसके घर गया, उस समय दोनों खाना खा चुकी थीं। एक अंगारे को राख के नीचे जलता रखकर नित्य की भाँति सात-साढ़े सात के करीब हर्थ बुझा दी गई थी। अदलीना, मैं और अदलीना की माँ गप्पें मार रहे थे। रात के करीब ग्यारह बजे होंगे। अचानक घर के पास बूटों की आवाज़ हमारे कानों में पड़ी। कोई आ रहा था। वह आवाज़ दरवाज़े के पास आकर रुक गई और दरवाज़े पर खड़ाक से बूट की एक ठोकर पड़ी। हम सभी के छक्के छूट गए थे, परंतु बैठकर कुछ सोचने के लिए बिलकुल

वक्त नहीं था। मैं कहाँ जाकर छिपूँ इसका तत्काल फैसला करना ज़रूरी था मैंने इधर-उधर देखा और हर्थ के धुआँकश में हाथ डालकर अंदाज़ लिया। लगा कि भीतर खड़ा हो सकूँगा। मैंने अदलीना से इशारों के ज़रिए कहा कि मैं धुआँकश के भीतर जाकर छिप जाता हूँ। अगर आनेवालों ने तुम से कॉफी पीने को माँगी तो हर्थ मत जलाना, स्टोव पर बना देना। दरवाज़ा खोलने से पहले ही मैं धुआँकश पर चढ़ गया। धुआँकश साफ करनेवाले की सुविधा के लिए भीतर जाने को ऊपर की तरफ लगातार छोटी होती जानेवाली ईंटों की सीढ़ियाँ होती हैं। उन सीढ़ियों से मैं उसके भीतर गया। अद-लीना ने दरवाज़ा खोला और दो जर्मन सैनिक भीतर आए। कॉफी पीने के लिए ही वे आए थे। वे भीतर आकर आराम से बैठ गए। उनकी आपस में गप्पें होने लगीं। १०-१५ मिनट हो गए। जैसे-जैसे समय जा रहा था वैसे-वैसे मेरे हाथ-पैर धुआँकश के भीतर जलने लगे। धुआँकश उतना ठण्डा नहीं था जितना कि पहले लग रहा था। थोड़ी देर एक पैर पर, और थोड़ी देर दूसरे पैर पर, इस तरह मैं खड़ा हो जाता था। तनिक थोड़ी देर यदि वे जर्मन सैनिक रुके होते तो वहाँ खड़ा रहना मेरे लिए असंभव हो जाता और नीचे जाना तो और भी असंभव था। इधर कुआँ, उधर खाई जैसी हालत में मेरे वहाँ खड़े रहते अदलीना ने जल्दी से स्टोव पर कॉफी बना दी और उसे पीकर वे जैसे आए थे वैसे ही वहाँ से चल दिए। अदलीना ने दरवाज़ा बंद कर लिया। शीघ्र ही मैं धुआँकश से बाहर निकला। मेरा सारा बदन काला हो गया था और हाथ-पैर काफी झुलस गए थे। मेरी ओर देखकर वे दोनों अफसोस करने लगीं। उन्होंने फौरन मेरे हाथ-पैरों को कोई घरेलू दवा लगाई। मुझे करीब-करीब एक बड़ी कठिन परीक्षा में से ही गुज़रना पड़ा था। पर एक प्राण-संकट से मैं बच गया था। इसी संतोष में मैं गोठ लौट गया।

इस घटना के आठ ही दिन बाद रोमानो एक महत्त्वपूर्ण समाचार लेकर आया। उसने कहा—"जर्मन लोग जाने की तैयारी कर रहे हैं। वे अपना सामान बाँध रहे हैं। परंतु जाने से पहले वे हर घर की कसकर तलाशी लेनेवाले हैं।" इस परिस्थिति में वह रात उस गाँव में बिताना खतरनाक था। मैंने रोमानो से कहा—"आज की रात हम कहीं बाहर ही बिताएँगे। कल तुम सब ठीक हो जाने की खबर लाकर दोगे तब फिर यहाँ लौट आएँगे।"

रात को हम पहाड़ के झरने के पास की गुफा में जाकर बैठ गए। मेरे साथ मेरे दो ही साथी आए थे। बाकी दो को अपने स्थानों की सुरक्षितता पर पूरा विश्वास था। इसलिए वे गाँव छोड़कर नहीं गए। हमने वह रात और दूसरा दिन उसी गुफा में गुज़ारा। अब ठंड काफी कम हो गई थी। दूसरी रात रोमानो आया और उसने कहा—"अदलीना के घर की तलाशी कोई डेढ़ घंटे तक होती रही। उन्होंने घर का कोना-कोना तो तलाशा ही, पर गोठ में भी वे पहुँचे थे और टॉर्च की रोशनी में उसका भी कोना-कोना उन्होंने छानकर देखा। नुकीली लकड़ियों को घास में घुसेड़कर उन्होंने विश्वास कर लिया कि घास के भीतर कोई छिपकर तो नहीं बैठा है। रोमानो जब घास में नुकीली लकड़ी के घुसेड़ने की बात बता रहा था, मैं उस समय उस गोठ से दो-तीन मील के फासले पर था; फिर भी मैं सिहर उठा।

दूसरे दिन रात को हम अपने-अपने स्थान पर लौट आए और वहीं रहने लगे। रोमानो के कथनानुसार जनवरी के अंत में जर्मन लोग कैदी न मिलने के कारण निराश होकर गाँव से चल दिए थे। हमारे सीने से जैसे एक भारी बोझ उतर गया था। जनवरी के अंतिम दो-तीन दिन हमने बड़े आनंद में बिताए। हमारी सेना आकर हमें मुक्त करेगी ऐसी आशा हमारे मन में पुनः जाग उठी; परंतु जनवरी बीत गई और हमारी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। फरवरी के आरंभ में ही सैनिकों की एक नई टोली गाँव में आकर दाखिल हुई। अब फिर वही दिवाभीत की ज़िंदगी, फिर वही लुका-छिपी, भयग्रस्त हृदय से एक-एक दिन गिनना—सब फिर एक बार शुरू हो गया।

रोमानो हर दो-दो, तीन-तीन दिन बाद आकर इस नई टोली के बारे में जो भी थोड़ी-थोड़ी जानकारी उसे मिलती, हमें बताया करता। पहले तो उसने इतना ही कहा—"ये नये लोग पहले के लोगों की अपेक्षा काफी अलग दिखते हैं। वे फौजी वर्दी में नहीं रहते। वे जर्मन नहीं हैं। उनमें कुछ स्त्रियाँ हैं और कुछ तो तुम्हारे समान दिखनेवाले लोग भी हैं।"

दूसरी बार रोमानो आया, तो उसने टोली के लोगों का दैनिक कार्यक्रम हमें बताया। वह बोला—"वे सुबह से ही बाहर निकल पड़ते हैं और शाम को अपने स्थान पर लौटते हैं। इस गाँव में और आसपास के गाँवों में भी वे घूमते हैं। किसी के भी घर में जाकर वे बातें करने लगते हैं। खाना माँगते हैं। बातचीत के दौरान जर्मनी के पुरखों का बखान करते हैं। वे

हमेशा कहते हैं: 'ये जर्मन लोग अत्यंत बुरे हैं। उन्होंने हमें खूब तंग किया है। हमारे मन में न होते हुए भी हमें उनकी गुलामी करनी पड़ रही है। हम लोग दिल से कट्टर जर्मन-विरोधी हैं।' उन लोगों की हमेशा यही कोशिश रहा करती है कि सुननेवालों पर उनकी बातों का प्रभाव पड़े और वे उन्हें जर्मन-विरोधी समझने लगें।"

रोमानो की बातों से मुझे उस टोली का स्वरूप और भी अधिक रहस्यमय जान पड़ा। मैंने रोमानो से कहा—"मैं यदि उन लोगों को कहीं से छिपकर देख सकूँ तो जान लूँगा कि वे कौन लोग हैं।" रोमानो ने इस तरह प्रबंध कर दिया। जिस सड़क से वे लोग रोज़ गुज़रते थे, उसके किनारे अदलीना का एक पुराना टूटा हुआ घर था। उस घर में बैठकर एक किवाड़ की दरार से मैंने उन लोगों को देखने की कोशिश की। उनकी पोशाक देखकर और उनके शब्दोच्चार सुनकर मुझे विश्वास हो गया कि रोमानो का यह कहना कि वे जर्मन नहीं हैं, बिलकुल ठीक है। उनके उस संमिश्र रूप से, उनके धूर्तता से बर्ताव करने के ढंग से मैंने अंदाज़ लगाया कि वह शायद जर्मनों के जासूसों की टोली हो।

इसके बाद एक बार रोमानो जब आया तो बड़ा घबड़ाया हुआ था। वह बोला—"उन लोगों ने यहाँ रहकर तुम लोगों के बारे में बहुत-सी जानकारी इकट्ठा की है। मैंने उनका विश्वास प्राप्त कर लिया है। इसलिए उन्होंने ही मुझे वह जानकारी बताई। तुम पाँचों के नाम उन्हें मालूम हैं। वे यह भी जानते हैं कि तुम कैद से पॅरोल लेकर भाग आए हो। यही नहीं, बल्कि इस गाँव में तुम्हारी सहायता करनेवाले कौन-कौन हैं, इसकी भी पूरी जानकारी उनके पास है। वे बड़े दावे के साथ कहते हैं कि भागकर आए तुम लोगों को एक दिन वे पकड़कर ही रहेंगे।"

रोमानो से मुझे एक और बड़ी विलक्षण खबर मिली। वह बोला—"उस टोली में एक भारतीय भी है। मुझे उसका नाम मालूम है। पर मुझसे उस नाम का ठीक से उच्चारण करते नहीं बनता।" इसपर मैंने उससे कहा—"उस आदमी से बातें करते-करते तुम उसका नाम अपने हाथ पर लिखकर ले आओ।" मेरे सुझाव के अनुसार रोमानो गया और उसी दिन दोपहर को वह उस भारतीय का नाम हाथ पर लिखकर ले आया। मैं उस नाम की ओर देखता ही रहा। वह नाम था VASANT (वसंत)। हिंदुस्तान में इतनी

मील दूर, एक अपरिचित अज्ञात हिंदुस्तानी का नाम मेरी नज़रों में पड़ रहा था और वह भी उस हिंदुस्तानी का जिसने मुझे पकड़ाने का बीड़ा उठाया था। अब स्थिति बहुत भयानक है इसका मुझे पूर्ण विश्वास हो गया। मायस्त्रो से मिलकर इस विषय में उसकी राय लेने का मैंने निश्चय किया।

अँधेरा हो जाने पर रोमानो को साथ लेकर, मैं मायस्त्रो के घर गया। उसे जब मैंने यह सब बताया तब वह बोला—"अब तुम्हारा यहाँ रहना सचमुच ही खतरे का है। उन्हें तुम्हारे और तुम्हें मदद करनेवालों के नाम मालूम हो गए हैं। इससे आगे यहाँ रहने में तुम्हारे लिए तो खतरा है ही, परंतु हम लोगों के लिए भी कम खतरा नहीं है। इसलिए बेहतर यही है कि तुम इस गाँव को छोड़ दो।" मायस्त्रो की बात सुनकर मैं और रोमानो अदलीना के घर गए। कह नहीं सकता कि क्यों, पर मुझे कुछ ऐसा लगा कि हो-न-हो इस सारे मामले की जड़ में मायस्त्रो ही है। वह दुरंगी चाल चल रहा है। जब तक जर्मनों का शासन है, तब तक उनसे संबंध रखना चाहता है और कल अगर ब्रिटिशों का अधिकार हो जाता है तो हमारे प्रति भी सहानुभूति दिखाने का दिखावा करना चाहता है। मुझे लगा कि वह दोनों पत्थरों पर हाथ रखे है। जो पत्थर लुढ़कने लगेगा उसपर से वह अपना हाथ एकदम हटा लेगा।

अदलीना के घर आने पर मैंने रोमानो से विचार-विनिमय किया। अंत में ब्रिटिश राजदूत के सुझाव के अनुसार कसीनो से दस-बारह मील दूरवाले जंगल की ओर जाकर वहीं छिपकर रहने का मैंने निर्णय किया। अपना निर्णय अपने चारों साथियों को सुनाने के लिए मैंने रोमानो से कहा। वह मेरा संदेसा उन तक पहुँचा आया। उनमें से दो आदमी मेरे साथ आने को राज़ी हो गए। बचे हुए दो ने हमें खबर भेजी कि वे जहाँ हैं, वहीं रहेंगे।

निकलने का निश्चय हुआ पर सवाल साथ में था कि सामान कैसे ले जाएँ। मंज़िल दूर थी। सारा सामान सिर और कंधों पर ढोकर ले जाना इसलिए असंभव था कि कई दिनों की रसद भी ले जानी थी। पर अदलीना ने हमारी यह समस्या हल कर दी, हालाँकि स्वयं उसे बड़ी असुविधा होनेवाली थी। उसने अपना इकलौता खच्चर इस काम के लिए हमें दे दिया। सामान ले जाने का इंतज़ाम हो जाने पर जंगल तक किस तरह जाया जाए इसकी हमने योजना बनाई। खच्चर पर हमारा सामान ढोकर वहाँ तक पहुँचाने की ज़िम्मेदारी

हमने रोमानो पर रखी। यह तय हुआ कि मैं और अदलीना रात को घर से बाहर निकलेंगे और हाथ में हाथ डालकर पति-पत्नी की तरह पैदल जाएँगे। रास्ते में अगर कोई मिला और उसने कुछ पूछा तो चलते-चलते ही अदलीना उसका जवाब देगी। बचे हुए हमारे दो साथी अपने मददगारों के साथ अपने-अपने स्थान से रात को निकलेंगे और हम सब रात को १२ बजे पहाड़ पर गड़रिए की उस झोंपड़ी के पास मिलेंगे।

इस योजना को बनाते समय जो चर्चा हुई उस समय अदलीना ने मुझे एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया था। मेरी पोशाक रँगी हुई थी पर थी फ़ौज़ी तर्ज़ की। अदलीना ने कहा—"सालवी, तुम्हें अपनी यह पोशाक उतारकर उसकी जगह नागरिक पोशाक पहन लेनी चाहिए।" उसका सुझाव मुझे जँचा। रोमानो ने नागरिक ढंग के कपडे मुझे ला दिए। मैंने उन्हें पहन लिया और अपने फौजी कपड़े अदलीना के हवाले कर दिए। पूरी तैयारी करके उस रात मैं और अदलीना साढ़े दस बजे के करीब हाथ में हाथ डाले घर से निकल पड़े। अँधेरी रात थी। घर के बिल्कुल सामने दस-पन्द्रह कदमों पर नाला था और उसपर एक छोटा-सा पुल था। हम वहाँ पहुँचे ही थे कि मुझे दीख पड़ा कि सामने से कोई आ रहा है। मैंने अदलीना से कहा,—"तुम यहीं ठहरो। मैं तुम्हारे पीछे छिप जाता हूँ। जब वह मनुष्य आगे निकल जाएगा तब हम फिर आगे बढ़ेंगे।" इसके अनुसार मैं उस पुल के कटघरे के पास नीचे दुबककर बैठ गया। अदलीना पुल के कटघरे पर बैठ गई। शरीर से वह खासी मोटी-ताज़ी थी। लंबा चोगा-सा पहने थी जिससे उसके पूरे पैर ढक गए थे। मैं उसकी आड़ में बड़ी आसानी से छिपकर बैठ सका। जो मनुष्य आ रहा था वह गाँव में सर्वत्र फैले हुए प्रहरियों में से ही था। जब वह काफी नज़दीक आ गया तो अदलीना ने खुद होकर उसका अभिवादन किया। उस मनुष्य ने चलते-चलते ही उसका अभिवादन स्वीकार किया और आगे बढ़ गया। उसके दृष्टि से ओझल हो जाने पर हम दोनों पहले जैसे ही हाथ में हाथ डालकर चलने लगे।

गाँव के छोर पर पहुँचते ही मैं रुका। गाँव के आसपास गश्तवाले थे यह मैं जानता था। मैंने अदलीना से कहा कि वह १०-१५ गज़ जाकर आसपास देख ले कि कोई है तो नहीं। वह हिम्मतवाली औरत रात के उस अंधकार में निडरता से देख-दाखकर आ गई और बोली कि कहीं कोई नहीं दिख रह है। तुरंत ही हमने जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाना शुरू किया और बीच में

कहीं न रुक १२ वजे से पहले ही अपने संकेत स्थान पर जा पहुँचे। उस संकेतस्थान पर हमें विदा देने गाँव के हमारे कुछ उपकार-कर्त्ता आए थे। उनमें प्रमुखता से सीरिओ की माँ, अंतोनेली, पापा पेत्रीनो, सीरिओ और कुछ महिलाएँ भी थीं। सब के हृदय भर उठे थे। वे सब इस भावना से, इस दुखी मन से वहाँ खड़े थे जैसे उनके कोई निकट संबंधी ही उनसे दूर जा रहे हों। स्त्रियाँ रो रही थीं; सीरिओ की माँ और अन्य बहुत-से लोग भी हमसे रह-रहकर कह रहे थे—"तुम कहीं भी रहो पर हमें अपनी खबर देते रहना। अगर तुम पर कोई संकट आए तो अपने इस छोटे-से गाँव को लौट आना। जब तक हमारे तन में प्राण हैं, तब तक तुम्हें बचाने के लिए हम पूरी कोशिश करेंगे। और यदि तुम मुक्त होकर अपने देश को जाने लगो तो

भरे हृदय से हमने सबसे विदा ली।

हमसे मिले विना मत जाना। हम अपने गाँव में भले ही वैठे हों पर हमेशा हम तुम्हारी चिंता करते रहेंगे। तुम्हारी रक्षा करने के लिए हम ईश्वर से प्रार्थना करते रहेंगे। पर तुम याद रखना कि, हमसे विना मिले नहीं जाना है।"

भरे हृदय से हमने सबसे विदा ली। उन्होंने हमसे हाथ मिलाए। हमारे कल्याण की कामना की। निकलते वक्त हमने यह तय किया कि रोमानो और सीरिओ खच्चर लेकर आगे बढ़ जाएँ। उनके पीछे कुछ फासला छोड़कर मैं और मेरे दोनों साथी चलें। हम रास्ते में अगर पकड़ लिए गए तो पकड़नेवालों को यह लगे कि रोमानो और सीरिओ से हमारा कोई संबंध नहीं। इस तरह प्रबंध करके हम चलने लगे। गाँव से हमें विदा देने आए सब लोग वहीं रुके थे। मैं बीच-बीच में पीछे मुड़कर देख रहा था। थोड़ी देर उस दल की केवल आकृतियाँ धुँधले प्रकाश में दिखती रहीं और फिर कुछ ही क्षणों में वे विशाल-हृदय व्यक्ति रात के अंधकार में विलीन हो गए।

हमें करीब चालीस किलोमीटर पैदल जाना था। चलते समय रास्ते में दिखनेवाली महत्त्वपूर्ण चीज़ों को मैं ध्यान में रखता जाता था। यह सावधानी इसलिए बरत रहा था कि मान लो इसी रास्ते फिर लौटना पड़े तो इन चिह्नों की सहायता से विना राह भूले पुनः गाँव पहुँच सकूँ। इसीलिए पहाड़ों के आकार, कुछ पेड़, रास्ते में मिलनेवाले कुएँ, गिरजाघर की इमारतें और मकान आदि को बड़ी सावधानी से देखकर, अपने ध्यान में रख रहा था। चलते-चलते बीच-बीच में हम थोड़ा आराम भी कर लेते थे। इस तरह मंज़िल-दर-मंज़िल हम दूसरे दिन दोपहर करीब ४ बजे खूब थककर अपनी मंज़िल पर जा पहुँचे। हमारी तरह रोमानो और सीरिओ भी खूब थक गए थे। इसलिए उस रात हमने उन्हें अपने साथ वहीं रोक लिया। मैं तो इतना थक गया था कि वहाँ पहुँचकर कपड़े पहने हुए ही ज़मीन पर पड़ रहा और थोड़ी ही देर में मुझे गहरी नींद लग गई।

# १९

# पुनः विला सान सबास्तिआनो

*फरवरी-मार्च १९४४*

घंटे सोकर मैं जगा। इसके बाद मैं और रोमानो आज तक की घटी घटनाओं के बारे में बातें करते रहे। दूसरे दिन सवेरे जंगल में घूमकर हमने एक संकेत-स्थान निश्चित किया। रोमानो को मैंने वह स्थान दिखाया और उससे कहा—"तुम जब आगे हमसे मिलने इस जंगल में आओगे तो इस स्थान पर आना। यहाँ पत्थर के पीछे मैं एक बोतल में पत्र लिखकर रख दूँगा जिसे पढ़कर तुम्हें मालूम हो जायगा कि हम कहाँ हैं।" इसके बाद हमने कॉफी तैयार की और सबने पी। तय हुआ कि रोमानो अगले शनिवार आएगा। जाते समय उसे भी बुरा लगा। वह बोला—"अभी तक तुम गाँव में थे इसलिए रोज़ मुलाकात हो जाती थी। रोज़ तुम्हारा कुशल-मंगल मालूम हो जाता था। अब तुम यहाँ ४० किलोमीटर दूर जंगल में आ बसे हो। सँभलकर रहना।" इसके बाद वे दोनों खच्चर लेकर चल दिए।

हम जिस जंगल में आकर बसे थे वह अल्पेनियन पर्वत की एक श्रेणी में था। जंगल में जहाँ-तहाँ टीक के आसमान चूमनेवाले ऊँचे-ऊँचे दरख्त थे। बहुत घना जंगल था। पेड़ों की लंबी सीधी कतारों को देखकर लगता था कि जैसे किसी योजना के अनुसार तैयार किया गया हो। हिम-वर्षा के कारण उस

जंगल में पशु, पक्षी, सर्प इत्यादि जीव कहीं नज़र नहीं आ रहे थे। पर्वत की चोटी पर की वर्फ अभी तक पिघली नहीं थी। पहाड़ का कुछ नीला-सा रंग बड़ा आकर्षक दिख रहा था। जब-जब पर्वत की चोटी की ओर दृष्टि जाती, मराठी की एक कहावत 'दुरून डोंगर साजरे' अर्थात् 'दूर के पहाड़ बड़े सुहावने' चरितार्थ हो जाती। कम ऊँचाई पर की वर्फ अलबत्ता अब पिघल चुकी थी।

इस घने जंगल में सब से पहले अपने रहने के लिए जो स्थान हमने चुना वह एक घाटी में था। इसलिए चुना था कि बाहर से आने-जानेवालों को हम आसानी से दिखाई न दे सकें। वहाँ हम तीनों एकत्र रहते थे। हमारे इस स्थान से एक फर्लांग दूर एक नाला था। हमारा दैनिक कार्य-क्रम यह रहा करता कि सुबह उठने के बाद प्रातःक्रियाओं से निवृत्त होकर, हम बारी-बारी से चाय या कॉफी बनाते। इसके बाद जंगल में घूमने जाते। जंगल में घूमते समय हम ऐसे स्थान की खोज में रहते जहाँ लंबे अरसे तक हम सुरक्षित रह सकें। रोज़ दोपहर करीब साढ़े बारह बजे हम दो आदमी खाना पकाते और तीसरा उस समय गश्त लगाता। खच्चर पर लादकर हम जो खाद्य-पदार्थ लाए थे, उन्हींका उपयोग हम अपने खाने में करते थे। सेवईं, सेम की फलियाँ और आलू जैसे थोड़े ही समय में पककर तैयार हो जानेवाली चीज़ें हम अपने साथ ले आए थे। गश्त लगाने का काम हम बारी-बारी से किया करते थे। रात होने पर ठंड से बचने के लिए हम एक बड़ा-सा लट्ठा जला लेते और उसके नज़दीक सो जाते। अपने सामान को हमने सूखे पत्तों और घासफूस के नीचे छिपाकर रख दिया था।

जैसा कि तय हुआ था, शनिवार को रोमानो हमसे मिलने आया। संकेत के अनुसार पत्थर के पीछे बोतल में मैंने इटालियन भाषा में लिखकर पत्र रख दिया था। उसमें लिख दिया था कि हम यहीं आसपास कहीं हैं। तुम सीटी बजा देना। हम आ जाएँगे। परंतु उसके आने के समय हम नज़दीक ही खड़े थे और उसीकी बाट जोह रहे थे। मैंने दूरबीन से देखा तो रोमानो मुझे आता हुआ दिखाई दिया।

रोमानो आया तो करीब-करीब रोता हुआ ही। वह कहने लगा—"तुम्हारे जाने के दूसरे ही दिन से जर्मनों ने गाँव में बड़ा ऊधम मचा रखा है। वे अदलीना की माँ को पकड़कर ले गए हैं। अदलीना के घर की तलाशी लेते

समय उन्हें तुम्हारा फौजी कम्बल मिल गया। इससे उन्हें और भी अधिक शक हो गया। एक ही दिन का फर्क रहा, वरना तुम्हीं उसके हाथ लग जाते। अदलीना भी सौभाग्य से उस समय घर में नहीं थी। जब उसने सुना कि उसके घर की तलाशी हो रही है तो वह दौड़ती हुई घर की ओर जाने लगी। पर लोगों ने उसे घर जाने से रोक दिया। उन्होंने कहा कि अगर तुम जाओगी तो वे तुम्हें भी पकड़ लेंगे। तुम्हारी माँ बूढ़ी है इसलिए वे उसे शायद थोड़े ही दिनों में छोड़ भी दें। पर तुम्हें यदि उन्होंने पकड़ लिया तो खैर नहीं। तुम्हें वे काफी तंग करेंगे। अदलीना फिर घर नहीं गई। वह सीरिओ की माँ के घर गई और उससे सारा हाल कहा। सीरिओ की माँ ने उसे अपने घर में छिपाकर रखा है। जर्मन अब मेरे और अदलीना के पीछे हाथ धोकर पड़ गए हैं। चूँकि मैं उनमें काफी मिल गया हूँ इसलिए मुझपर उन्हें उतना शक नहीं। परंतु दिन-प्रति-दिन गाँव में रहना मुश्किल हो रहा है। तुम उस रात गोठ छोड़कर भाग गए यह तुमने बहुत ही अच्छा किया। तुम्हारे जाने के बाद मैंने गाँव में रहनेवाले तुम्हारे दो साथियों को भी गाँव में चल रही धर-पकड़ और तलाशियों की खबर दी। उन्हें भी लगा कि अब गाँव में रहना खतरनाक है इसलिए वे भी गाँव छोडकर भाग गए हैं। वे कहाँ छिपकर रह रहे हैं यह मैं नहीं जानता। पर ऐसा लगता है कि गाँव के आसपास ही किसी पहाड़ में छिपे होंगे।"

इस भयानक स्थिति में भी रोमानो हमारे लिए खाने की चीज़ें लेकर आया था। हमारे पास की चीज़ें खत्म तो नहीं हो गई हैं, यह भी उसने पूछा। हमारे आग्रह से वह उस रात हमारे साथ ही रहा। मैंने उससे कहा—"अगर तुम गाँव में रहने से डरते हो तो हमारे साथ यहीं रह जाओ।" इस पर वह बोला—"मेरा यहाँ रहना ठीक नहीं। मुझे गाँव में ही रहना चाहिए। मेरा वहीं रहना सब तरह से लाभदायक सिद्ध होगा।" यह कहकर और पन्द्रह दिन के बाद फिर आने का वचन देकर रोमानो लौट गया। आ-जाकर अस्सी किलोमीटर का चक्कर लगाया था उसने। वह खुद संकट में था। जर्मन बाज़ उसके पीछे लगे हुए थे। इसके बावजूद वह हमारे लिए खाना लेकर आया था। मानवता की ज्योति जल रही थी।

रोमानो हमसे मिलकर गया, उसके दो-तीन दिन बाद की बात है। मैं ऊँचे-ऊँचे पेड़ोंवाले जंगल में सूखे पत्ते और घासफूस को रौंदता हुआ आज़ादी

से घूम रहा था कि मुझे अकस्मात सामने पेड़ों की कतारों के बीच से आता हुआ एक आदमी दीख पड़ा। उसपर नज़र पड़ते ही उसकी पोशाक से मैंने जान लिया कि वह जर्मन नहीं है। नज़दीक आते ही उसने अंग्रेज़ी में मुझसे प्रश्न किया—"क्या तुम भागे हुए युद्ध-कैदी हो?" उसका अमेरिकन उच्चारण सुनकर मुझे लगा कि वह अमेरिकन पॅरेट्रूपर (पॅरेशूट से हवाई जहाज़ से नीचे उतरनेवाले सैनिकों की टोली का) होगा। ब्रिटिश राजदूत के पत्र में इस संबंध में जो लिखा था वह मुझे एकदम याद हो आया। इसके बाद हमारी रिहाई के बारे में दोनों में काफी चर्चा हुई। उसने मुझसे कहा—"बहुत से भागे हुए कैदियों को हमने दोस्तों की सेना में ले जाकर पहुँचाया है। हम उन्हें जोड़ी से ले जाते हैं। पर तुम तीन हो। इसलिए तुम लोगों में और एक कैदी मिलाकर हम तुम्हें कसीनो पहुँचा देंगे।" उसकी बात मैंने मंजूर कर ली। तय हुआ कि रविवार को रात साढ़े आठ बजे हम इसी स्थान पर मिलेंगे; पर किसी भी कारण से निश्चित समय पर हम यहाँ हाज़िर न हो पाए तो वह हमारे लिए रुकेगा नहीं!

इस योजना को पक्का करके मैं बड़ी खुशी में लौटा। देवदूत की तरह अवतीर्ण वह पॅरेट्रुपर हमारे लिए सचमुच जैसे आकाश से ही उतरकर आया था। मुझे विश्वास हो गया कि अब हमारी सारी दुर्दशा समाप्त हो गई है और कुछ ही दिनों में हम अपनी सेना में पहुँच जाएँगे। मैंने अपने दो साथियों से भी यह हाल जाकर कहा। वे दोनों भाई पंजाबी मुसलिम थे। हम सबकी आँखों के सामने रिहाई के सपने झूमने लगे। हमारी प्यारी मातृभूमि, भारत, हमें दिखने लगी। हम इन्हीं सुखद विचारों में खोए हुए थे कि उसी रात शराफत को–मेरे एक साथी को भयंकर ज्वर चढ़ा। उसे बुखार की हालत में कहीं हटाना संभव ही नहीं था। हमारे सामने एक बड़ी विकट समस्या खड़ी हो गई। शराफत और उसका भाई, दोनों ने मुझ अकेले को पॅरेट्रुपर के साथ चले जाने का अत्यंत आग्रह किया। वे बोले—"साब आप जाइए। हम भाई-भाई एक दूसरे के साथ रहेंगे। आप हमारी खातिर अपनी जान खतरे में डालकर इस जंगल में मत रहिए।" मैं अब बड़ी दुविधा में था। एक ओर अपनी रिहाई का मौका था जो मुझे उस देवदूत के द्वारा अनायास ही प्राप्त हो रहा था और दूसरी ओर था मेरा कर्तव्य। मैं उन जवानों का अधिकारी था, सो सिर्फ उन्हें हुक्म देने के लिए नहीं।

एक-दूसरे की मदद करते हुए, एक दूसरे की चिन्ता करते हुए बीते हुए आज तक के दिनों की मुझे याद हो आई। वे दोनों भाई-भाई थे। इसलिए यहीं रहनेवाले थे। शराफत को छोड़कर उसका भाई जाने को तैयार नहीं था। और मैं—मैं क्या शराफत का भाई नहीं था? मैंने एकदम फैसला किया कि किसी भी हालत में, मैं शराफत को छोड़कर नहीं जाऊँगा। आज तक तीन भाइयों की तरह हम एक साथ रहे और इसके बाद भी हम एक साथ ही रहेंगे। ऐसा निश्चय करके मैं रविवार को उस निश्चित स्थान पर पॅरेट्रुपर से मिलने नहीं गया।

पॅरेट्रुपर से हुई मुलाकात के बाद मुझे एक बात और मालूम हुई। वह यह कि कसीनो से हम काफी नज़दीक थे। उस अमरीकन ने कहा था कि पहाड़ के दूसरी तरफ जहाँ उतरे कि वहाँ से कसीनो करीब दस मील दूर रह जाता है। कसीनो से रात को जो प्रकाश-किरणें छोड़ी जाती हैं, वे वहाँ से दिखती हैं। गोली चलने की आवाज़ें भी सुनाई पड़ती हैं। परंतु कसीनो से इतने नज़दीक होने पर भी हमें कम-से-कम इस समय तो उससे कोई फायदा नहीं था, क्योंकि हमारा भाई शराफत बुखार में जल रहा था।

इसके बाद इसी तरह एक दिन मैं जंगल में घूम रहा था कि चलते-चलते एकदम मुझे ठोकर लगी और मैंने नीचे देखा। मेरे पैरों के नीचे सूखी पत्तियों में छिपा एक पत्थर मुझे दीख पड़ा। मैंने उसके ऊपर की सूखी पत्तियाँ हटाईं। पत्थर पर लिखा था 'LIFT ME' (मुझे उठाओ)। मैं तुरंत ही अपने साथी को वहाँ ले आया और उसे वह पत्थर दिखाया। हम दोनों ने पत्थर को उठाकर एक ओर रखा तो उस के नीचे तहखाने में भीतर जाने के लिए एक लकड़ी की सीढ़ी हमें दिखाई दी। यह सब हमें 'सहस्र-रजनी-चरित्र' के किस्से की तरह लग रहा था। मेरा साथी उस तहखाने में उतरने से डर रहा था। वह कह रहा था—"साब, अंदर अँधेरा है। जरूर कोई खतरा होगा।" मैंने उससे सलाई जलाने को कहा और सलाई की रोशनी में हम दोनों दुबकते-दुबकते भीतर पहुँचे। भीतर १० फुट लंबा-चौड़ा एक अच्छा तहखाना हमें दिखाई दिया। आसपास मिट्टी को खिसकने से बचाने के लिए सागौन के लंबे-लंबे शहतीरों को एक-दूसरे के साथ लताओं से मज़बूत बाँधकर चारों तरफ इस तरह लगा दिया गया था कि वे दीवारों की तरह हो गए थे। भीतर रेशों की चटाइयाँ थीं, कुछ कपड़े

थे, थोड़े बर्तन भी थे। पेट्रोल के खाली डिब्बों में पानी भी भरकर रखा था। जिस दिन पानी भरा था, वह तारीख भी उसपर लिखी हुई थी। एक कोने में कुछ शीशियाँ थीं। उनपर कहीं 'सिर दर्द,' कहीं 'बदहज़मी,' कहीं 'ज्वर' इस तरह चिट्ठियाँ चिपकी हुई थीं। इस से हम समझे कि उन बोतलों में दवाएँ होंगीं। पत्थर हटाने के बाद उसी स्थान पर तहखाने को भीतर से बंद करने के लिए एक किवाड़ का इंतज़ाम था। यह सब देखकर, हमने निश्चय किया हमें इसी तहखाने में आकर रहना चाहिए। मुझे लगा कि यह तहखाना किसी अमेरिकन पॅरेट्रुपर ने भागे हुए युद्ध-कैदियों के लिए बना दिया होगा। हम दोनों तुरंत शराफत को इस तहखाने में ले आए। उसे वहाँ रखी हुई दवाओं में से कुछ दवाएँ दीं और इस आनन्द में कि अब हमें हमेशा के लिए एक अच्छा सुरक्षित स्थान मिल गया है, हम उस रात वहीं सोए।

इस जंगल में आने के बाद से बीच-बीच में हम नज़दीक की ही एक बस्ती में जाकर अपने लिए दूध, आलू आदि चीज़ें ले आया करते थे। तहखाने में डेरा डालकर हमें दो दिन हो गए थे। तीसरे दिन मैं उस बस्ती की ओर जा रहा था। शाम की छायाओं से जंगल धीरे-धीरे घना होता जा रहा है ऐसा लग रहा था। मैं चलते-चलते एकदम ठिठक गया। झुटपुटे में एक आकृति सामने से आती हुई मुझे दीख पड़ी। धीरे-धीरे वह आकृति नज़दीक आई। वह एक स्त्री थी। काफी तगड़ी थी और खाकी रंग का ब्लाउज़ और स्कर्ट पहने हुई थी। पीठ पर पॅक भी था। शाम के उस धुँधले प्रकाश में भी वह काला ऐनक लगाए हुए थी। मुझे देखते ही वह रुकी और 'गुड ईवनिंग' कहकर उसने अभिवादन किया। उसके अभिवादन का अंग्रेज़ी में तत्परता से उत्तर देने के लिए शब्द मेरे बिल्कुल होंठों तक आ गए थे। पर मैंने एक क्षण में ही अपने आपको सँभाला। यह महसूस कर कि ऐसा करने से मुझे खतरा है मैं कुछ भी न बोला। उसके शब्द जैसे मेरी समझ में ही नहीं आए इस भाव से मैं उसकी तरफ सिर्फ देखता रहा और थोड़ी देर के बाद मैंने ही उससे इटालियन भाषा में प्रश्न किया—"तुम क्या चाहती हो?" उसने भी मेरे प्रश्न का कोई उत्तर न दे मुझे इटालियन भाषा में उलटकर प्रश्न किया—"तुम कहाँ जा रहे हो?" धीरे-धीरे मैं जान गया कि क्या मामला है। मैंने उसे गप्प दी—"मैं नज़दीक के गाँव जा रहा हूँ।" चूँकि हमें उस जंगल में रहते बहुत दिन हो गए थे इसलिए आसपास के कुछ गाँवों के

नाम भी मुझे मालूम हो गए थे। मेरे उत्तर पर वह बोली—"ऐसे अँधेरे में तुम जंगल में अकेले जा रहे हो—क्या तुम्हें डर नहीं लगता?" मैंने कहा—"छिः डर काहे का? डरने का कोई कारण ही नहीं। सच पूछा जाए तो डर तुम्हें लगना चाहिए, क्योंकि तुम स्त्री हो और ऐसे गहन जंगल में और अंधकार में अकेली घूम रही हो।" वह तड़ाक-से बोली—"डरने के लिए क्या मैं कोई मामूली स्त्री हूँ? देखो, इस जंगल में जर्मनों की कैद से भागे हुए अनेक कैदी रहते हैं। क्या उन्हें तुमने कभी देखा है यहाँ?" उसके इस प्रश्न से मैं अच्छी तरह जान गया कि उसने मुझे पहचान लिया है। मेरी हालत वह कि काटो तो खून नहीं! फिर भी हिम्मत बटोरकर मैं बोला—"नहीं। मेरे देखने में तो कोई कैदी नहीं आया।" इसके बाद उसने उस गाँव का रास्ता पूछा जहाँ वह जा रही थी। मैंने धड़ल्ले से कह दिया—"ठीक सामने चली जाओ। फिर बाईं ओर मुड़ जाना। तुम्हें एक सड़क मिलेगी। उस सड़क को पकड़ लेना तो थोड़ी ही देर के बाद तुम्हारा गाँव तुम्हें नज़र आने लगेगा।" मुझे धन्यवाद देकर वह आगे बढ़ गई।

हम एक दूसरे की विरुद्ध दिशा में चलने लगे। मैं चलते-चलते उससे छुपाकर उसकी सारी हरकतों को देख रहा था। उसके १०-१५ कदम आगे बढ़ने पर यह देखते ही कि उसका ध्यान मेरी ओर नहीं है, मैं झट-से सड़क के किनारे एक चट्टान की ओट में छिप गया और वहाँ से उसे देखने लगा। उस गहराते जा रहे अंधकार में उसकी आकृति थोड़ी आगे बढ़ी। इसी समय उसके दोनों ओर से दो बंदूकधारी सैनिकों की आकृतियाँ उसके पास आईं और वे तीनों रुक गए। बॅटरी की रोशनी में वे कुछ लिख रहे थे ऐसा मुझे दीख पड़ा। दो मिनट के भीतर ही वे तीनों वहाँ से चल दिये। मैं भी अपने साथियों से मिलने तहखाने आ पहुँचा।

मैंने अपने साथियों को घटी हुई घटना का हाल सुनाया। मैंने उनसे कहा कि मेरा अंदाज़ है कि विला-सान-सवास्तिआनो की जर्मन जासूसी टोली के कुछ बाज़ हमारा सुराग पाकर यहाँ तक आ पहुँचे हैं। यह सुनकर सभी को लगा कि अब इससे आगे यहाँ रहना बहुत खतरनाक है। दो दिन पहले ही हमें अत्यंत सुरक्षित लगनेवाले तहखाने में उस रात हमारी आँखों में नींद कहाँ? रात भर सूखे पत्तों पर चलनेवाले बूटों की आवाज़ का आभास हमें हो रहा था।

बॅटरी की रोशनी में वे कुछ लिख रहे थे...

रात इसी तरह भय में बीती और सवेरा हुआ। रोज़ पानी लाने का काम शराफत या उसका भाई करता था परंतु वह हाल ही में बीमारी से उठा था। इसलिए उसके भाई को उसके पास बिठाकर मैं स्वयं पानी लाने के लिए झरने पर गया। मैं बालटी भर ही रहा था कि मुझे लगा कि दूर कहीं कोई किसीसे बातचीत कर रहा है। मैं पानी न भर बालटी वहीं छोड़कर तहखाने की ओर लौट आया और उन दोनों से कहा कि कुछ भी हो, पर अब हमें यहाँ से चल ही देना चाहिए। एक साथी ने कहा कि हमें पहले वहाँ जाकर सब समझ लेना चाहिए। मैंने कहा—"कोई हर्ज़ नहीं। परंतु अब जब हम बाहर निकलेंगे तो यहाँ से जाने की पूरी तैयारी से ही निकलेंगे।" शराफत का बुखार हमारी उन गोलियों से जो हमें तहखाने में रखी एक बोतल में मिली थीं, हट चुका था। हमने जल्दी-जल्दी तैयारी की। मैंने अपनी दूरबीन उठाई।

सबने ग्रेट कोट पहने और उनकी जेबें खाने की चीज़ों से भर लीं। फिर हम तीनों लुकते-छिपते उस स्थान की ओर गए जहाँ मैंने किसीको बोलते सुना था। मैंने आँखों से दूरबीन लगाकर देखा तो नीचे घाटी में, लगभग एक मील दूर, पहाड़ी चढ़कर ऊपर आते हुए दो जर्मन दिखाई दिए। वह दृश्य देखते ही मैंने अपने साथियों से कहा कि अब एक सेकंड भी यहाँ न ठहरकर हमें तुरंत विला-सान-सबास्तिआनो का रास्ता पकड़ना चाहिए।

हम वहाँ से लुकते-छिपते निकल पड़े। मैं आगे चल रहा था और मेरे साथी मेरे पीछे-पीछे आ रहे थे। चलते-चलते हम वन-लताओं के एक बड़े झुरमुट के पास पहुँचे। झुरमुट के आगे का रास्ता समतल मैदान में होकर जाता था। यह निश्चय कर कि रास्ते पर जाने से पहले हम लोग थोड़ी देर इस जाल के भीतर आराम कर लें, मैं ज़मीन पर रेंगता हुआ झुरमुट के अंदर घुसा। मेरे पीछे-पीछे मेरे साथी भी भीतर आए। हमें उसमें घुसे पूरे दस मिनट भी नहीं हुए होंगे कि टॉमी गन्स के दगने की आवाज़ हमारे कानों में पड़ी। वे जर्मन लोग पहाड़ पर चढ़ने लगे थे। उन्होंने खोज शुरू कर दी थी। हम ज़मीन से चिपटे हुए साँस रोके पड़े रहे। थोड़ी देर बाद हमसे कोई १५-२० गज़ की दूरी पर हमारी तरफ पीठ करके खड़े हुए एक जर्मन सैनिक के पैर मुझे दीख पड़े। मैंने अपने साथियों को इशारे से दिखाया। साँस रोके हम तीनों झुरमुट के भीतर हिंस्र पशु की तरह पड़े हुए थे और बाहर वे शिकारी हाँका दे रहे थे।

थोड़ी देर के बाद आवाज़ें बंद हो गईं। लगा जैसे अपना काम पूरा करके जर्मन सैनिक अब वापिस जा रहे हों। परंतु इसके बाद भी मैंने बहुत समय बीत जाने दिया। हमारे सामने जो समतल मैदान था, वहाँ से जाते समय हम किसीको भी आसानी से दिखाई पड़ सकते थे। वही हिस्सा मेरे खयाल में हमारे लिए बड़े खतरे का था। मैदान के दूसरे छोर पर एक नाला था। उसे पार करके आगे निकल जाने पर कोई खतरा नहीं था। मैंने अपने साथियों से कहा—"मैं आगे जाता हूँ। तुम यहीं ठहरो। मैंने यदि कुशल-पूर्वक मैदान पार कर लिया तब तो ठीक ही है। तुम भी तुरंत आकर मिल जाना। पर यदि मैं बीच ही में पकड़ लिया गया तो जहाँ हो वहाँ से टस-से-मस मत होना।" इतना कहकर मैं झुरमुट से बाहर निकला और मैदान पार करके आगे बढ़ा। बाद में मेरे साथी भी मैदान पार करके मुझसे आ मिले। इस समय

जिस तरह ज़रा-सी काँपती हैं, लगा उसी तरह वे इस समय काँप रही हैं। बाद में धीरे-धीरे रेलगाड़ी आने की कुछ अस्पष्ट-सी आवाज़ भी कानों में पड़ने लगी। हमने सामने देखा। दूर से रेलगाडी आ रही थी। हमारे छक्के छूट गए और हम जल्दी-जल्दी पुल के नीचे एक सुरक्षित स्थान में छिपकर बैठ गए। गाड़ी जैसे-जैसे नज़दीक आ रही थी, वैसे-वैसे उसका वेग मंद हो रहा था और ठीक हमारे सिर पर के पुल पर आकर पहियों की घरघराती आवाज़ करती हुई वह रुक गई। हमारा सारा धीरज छूटने लगा। हमें लगा, गाडी से अभी जर्मन सैनिक उतरते हैं और हमें गिरफ्तार करते हैं। जान मुट्ठी में लिए हम पुल के नीचे, सच पूछा जाए तो दुश्मन की रेलगाड़ी के नीचे ठहरे थे। थोड़ा वक्त गुज़रा और सौभाग्य से गाड़ी आगे बढ़ गई। हमने छुटकारे की साँस ली और अपना सफर शुरू किया।

रात साढ़े बारह या एक के करीब हम गाँववाले पहाड़ पर पहुँचे। हमारे भीगे हुए कपड़े बदन पर ही सूख गए थे। पहाड़ पर आते ही हम गड़रिए की झोंपड़ी के पास आकर रुक गए। वहाँ से गाँव की रोशनी नज़र आ रही थी। एक घर के भीतर से भी प्रकाश आ रहा था। वह घर मायस्त्रो का था, यह हम पहचान गए। मैंने शराफत के भाई को मायस्त्रो के घर जाकर हमारे आने का समाचार देने और उससे यह कहने कि वह रोमानो से हमारी मुलाकात करा दे, गाँव में भेजा। रोमानो दस-पन्द्रह दिन के बाद उस जंगल में आनेवाला था। इसलिए उसके पास यह खबर भेज देना अत्यंत आवश्यक था कि हम अब यहाँ आ गए हैं।

शराफत का भाई मायस्त्रो के घर गया। उसने दरवाज़े पर दस्तक दी। उसे सुनकर सौभाग्य से मायस्त्रो ही दरवाज़ा खोलकर बाहर आया। हममें से एक को दरवाज़े पर देखकर वह आग बबूला हो उठा। उसने उसे दरवाज़े से हटाया और खुद भी बाहर निकलकर झट-से दरवाज़ा बंद कर लिया। वह क्रोध से बोला—"इस समय मेरे घर में ४० जर्मन बैठे हैं। तुमने सीधे हमारे घर आने की हिम्मत कैसे की? जैसे आए हो उसी तरह फौरन लौट जाओ। गाँव में जर्मनों ने लोगों को अनेक तरह से तंग करना शुरू कर दिया है। अदलीना की माँ को वे पकड़कर ले गए हैं। तुममें से कोई भी गाँव में मत आना। गाँव से जितना हो सके उतने दूर ही रहना।" यह सब सुन लेने के बाद शराफत के भाई ने मायस्त्रो से कहा कि वह कम-से-कम रोमानो से

उसकी मुलाकात करा दे। इसपर मायत्तो बोला—"रोमानो और सीरिओ दोनों छिपकर बैठे हैं। फिर भी उन्हें खबर भेजने का इंतज़ाम मैं कर दूँगा। तुम टलो यहाँ से!" इसके बाद शराफत का भाई हमारे पास लौट आया।

मायत्तो ने रोमानो को खबर दी क्योंकि दूसरे दिन करीब ढाई बजे रोमानो हमसे मिलने आया। अपनी पीठ पर सूखी घास और सन के डंठलों का गट्ठा लादे वह आया था। रात में सोने के लिए बिस्तर बनाने के उद्देश्य से वह भारी बोझ पीठ पर लादे पहाड़ चढ़कर आया था। वह बोला—"अच्छा हुआ जो कल ही तुम उस जंगल से यहाँ आ गए, नहीं तो आज मैं और सीरिओ वहाँ जा ही रहे थे।" उसने गाँव में हो रहीं जर्मनों की हलचलों के बारे में हमें बताया। वह बोला—"जर्मनों ने भागे हुए युद्ध-कैदियों की और उनकी मदद करनेवालों की सूची बनाई है। उसमें मेरा भी नाम है और अदलीना का भी है।" इसीलिए वह छिपकर रह रहा था और उसे रात में बेवक्त यहाँ आना पड़ा था। वह अपने साथ हमारे लिए थोड़े-से खाद्य-पदार्थ भी ले आया था। पर इस बार अलबत्ता आँखों में आँसू लाकर उसने हमसे कहा—"अब इसके आगे मैं पहाड़ पर नहीं आ सकूँगा।" इतना कहकर, हमारे प्रति शुभकामना व्यक्त कर वह भारी मन से चल दिया।

उस पहाड़ पर रहने के लिए फिर एक बार हम अपने लिए नये स्थान खोजने लगे। खोजते-खोजते मुझे एक अत्यंत सुरक्षित स्थान मिल गया। एक बड़ी चट्टान पर बर्फ की लगातार वर्षा होते रहने के कारण उसमें एक गुफा जैसी पोली जगह निकल आई थी। ऊपर की तरफ एक इतनी मोटी दरार पड़ गई थी कि एक दुबला-पतला आदमी थोड़े प्रयास से इसके अंदर दाखिल हो सकता था और भीतर इतनी जगह थी कि एक आदमी आड़े लेटकर रह सकता था। उस गुफा की गहराई कोई पुरुष-डेढ़ पुरुष होगी। ऊपर की दरार के पास कुछ लताएँ और झाड़ियाँ उग आई थीं। उन्हें हाथ से हटाकर गुफा के भीतर जा सकते थे। गुफा के भीतर जाने के बाद उन्हें फिर थोड़ा खींच लेने से दरार ढक जाती थी। इस प्रकार उसके ढक जाने पर बाहर से किसीको पता तक नहीं चल सकता था कि झाड़ी में ऐसी कोई गुप्त गुफा होगी। मैं उस स्थान में रहने लगा। मेरे साथियों ने भी अपने-अपने लिए अलग-अलग स्थान खोज लिए और वहाँ रहने लगे। पर रोज़ रात को अँधेरा छाने के बाद हम तीनों एक संकेत-स्थान पर मिला करेंगे यह हमने तय कर लिया था।

जंगल में बकरियों और भेड़ों को चराने के लिए आनेवाले गड़रिए हमें पहले से पहचानते थे। हमने जब उनसे कहा कि वे हमारे लिए गाँव से कुछ खाने को ला दिया करें तो वे बोले–"गाँव में चारों तरफ बड़ा कड़ा पहरा है। वहाँ से यहाँ आते वक्त हमारी कसकर तलाशी ली जाती है। एक आदमी अपने साथ सिर्फ उतना ही खाना यहाँ ला सकता है जितना मुश्किल से उसीके लिए काफी होता है। परसों एक लड़का दो ब्रेड ले आया था तो जर्मन प्रहरियों ने उसे पकड़कर कोठरी में बंद कर दिया।" अंत में उनसे सलाह-मशविरा करके हमने एक उपाय खोज निकाला। वे इस बात के लिए राजी हो गए कि हमें भेड़ों का दूध देंगे। हमें रोज छः-सात भेड़ों का थोड़ा-थोड़ा दूध निकालकर वे एक बड़ा घड़ा भर देते और उसे लाकर एक निश्चित स्थान पर रख देते थे। कम-से-कम तीन-चार सेर दूध घड़े में रहता होगा। हम तीनों के लिए वह काफी हो जाता था।

इस तरह एक सप्ताह तक हमें दूध मिलता रहा। इसके बाद एक दिन अकस्मात उन गड़रियों का आना बंद हो गया। गड़रिए नहीं थे तो बकरियाँ और भेड़ें भी नहीं और दूध भी नहीं! प्रारम्भ हुआ प्रायोपवेशन जो हमपर सख्ती से लादा गया था! क्या-क्या भुगतना है, भगवान ही जानता था!

# २०

# ज़बरदस्ती का उपवास

*मार्च-अप्रैल १९४४*

हमारा उपवास शुरू हुआ। नमक-मिर्च की चार पुड़ियाँ छोड़कर हमारे पास दाना भी नहीं था। बहुत कोशिश करने पर भी उस पहाड़ पर हमें खाने लायक एक भी चीज़ नहीं मिली और न कहीं किसी मनुष्य के दर्शन ही हुए। अंत में रोज़ शाम हो जाने पर झरने पर जाकर पानी पीना, एक-दूसरे का कुशल-मंगल पूछकर घड़ी-दो-घड़ी गप्पें लगाना और फिर अपने-अपने स्थान पर जाकर सो जाना, यह हमारा रोज़ का कार्यक्रम रहा करता। दिन में हम जब भी कभी बाहर निकलते तो सिर्फ़ यह खोजने को ही निकलते कि कहीं कुछ खाने लायक चीज़ मिल जाए। इस तरह दो-दो, चार-चार दिन बीतते-बीतते दो सप्ताह बिना अन्न के बीत गए और एक दिन जब मैं टोह ले रहा था तो दूरबीन से थोड़ी दूर पर मुझे एक परिचित खल्वाट खोपड़ी नज़र आई। हमारे चार साथियों में से जो दो गाँव में रह गए थे, उनमें से ही वह एक था। मैं तुरंत जाकर उससे मिला। कुछ दिनों के बाद मेरी उससे मुलाकात हो रही थी। मैंने उससे उसकी कुशल पूछी और [illegible] अपने चौथे साथीदार के बारे में उससे प्रश्न किया तो वह बोला—"वह तो इसी पहाड़ में कहीं छिपकर रहता है। आज भी हम दोनों की मुलाकात होती है।"

इसके बाद मैंने बड़ी उत्सुकता से खाने के बारे में पूछताछ की तो उसने कहा—"चार दिन हो गए, हमारे पास का सब अन्न समाप्त हो गया और तब से हम भूखे ही हैं।" वही मसल कि एकादशी के घर शिवरात्रि पहुँच जाए!

अब हमारी स्थिति में एक ही महत्त्वपूर्ण फर्क हो गया था। शाम को झरने पर पानी पीने के समारोह के लिए हम तीन के बजाए पाँच लोक इकट्ठा होने लगे। खाने को किसीको भी कुछ नहीं मिल रहा था। इधर धीरे-धीरे बर्फ पिघलने लगी थी। जैसे-जैसे बर्फ पिघलती जाती, वैसे-वैसे करीब एक सप्ताह के भीतर उस ज़मीन से नयी हरी-हरी कोंपलें ऊपर आने लगतीं और हमारी भूखी नज़र उनपर जा पड़ती। जब बहुत-सी कोंपलें निकल आईं तो हम उन्हें चखकर देखने लगे। अंत में हमें एक ऐसी वनस्पति मिल गई जिसे खाकर हम अपनी भूख की आग को थोड़ा-बहुत शांत कर सकते थे। वे पत्तियाँ चूका की तरह खट्टी सी लगती थीं। हम उन्हें बटोरकर ले आते और खाकर अपनी भूख मिटाने की कोशिश करते। इसी समय खाद्य पदार्थों की इस खोज में पहाड़ पर मुझे एक खाद्य पदार्थ और मिल गया। मुझे पत्थरों से चिपटे हुए घोंघे (माउंटेन स्नेल्स) दिखाई दिए। मैं इन्हें पत्थरों से निकालकर ले जाता। पानी में उन्हें उबालता और नमक-मिर्च जो हमारे पास था ही, डालकर खा जाता। शराफत और उसके भाई ने इस नये पदार्थ को खाने से एकदम इंकार कर दिया। पर मैं अलबत्ता अच्छे-बुरे का विचार ताक में रखकर खाया करता। सच तो यह है कि 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्'!

हमारे दिन इसी तरह खाली पेट बीत रहे थे। तीन सप्ताह हो चुके थे। २४ दिन गुज़र गए, २५ दिन हो गए। एक शाम सूरज डूबने से कुछ पहले हम अपने उसी झरने पर बैठे हुए थे। गप्पें हो रही थीं। गप्पों का विषय प्रकट ही हमेशा का ही था—खाद्यान्न की समस्या! हम इस तरह बैठे हुए थे कि हमें एकदम दूर पर एक भारतीय सैनिक दिखाई दिया। वह हाँफता हुआ, गिरता-पड़ता, दौड़ रहा था और दो गोरे सैनिक चिल्ला-चिल्लाकर उसे रुकने का इशारा करते हुए उसके पीछे दौड़ रहे थे। हम एकदम छिप गए और छिपे-छिपे उनकी ओर देखने लगे। वे गोरे सैनिक जर्मन नहीं थे, यह हमने उनकी वर्दी देखकर एकदम पहचान लिया। बाद में हमने देखा कि दोनों गोरे सैनिक उस मोटे भारतीय सैनिक के पास पहुँचे और उससे बातें करने और उसे कुछ समझाकर बताने की कोशिश करने लगे। यह क्या झमेला है, हम समझ नहीं पा रहे थे।

# २१

# विजय और पुनः अधिकार-प्राप्ति

*मई-जून १९४४*

सा कि निश्चित हुआ था, दूसरे दिन अँधरा हो जाने पर वे दोनों ज़ेकोस्लाव और वह रसोइया तीनों हमसे आकर मिले। रसोइया हमारे लिए एक काफी बडी रोस्ट टाँग ले आया था। उनकी बातों से पता चला कि वे भी हमारे साथ भागना चाहते हैं और दोस्तों की आगे बढ़ रही फौज़ में हमारे साथ ही शामिल होना चाहते हैं। वे लोग जर्मन सेना में थे। इसलिए मुझे लगा कि भागते समय वे हमें रास्ता दिखाएँगे, सुरक्षित रहने के सुझाव देंगे तथा अन्य और भी कई तरह से हमारे काम आएँगे। इसलिए मैंने उन्हें अपने साथ आने की अनुमति दे दी। परंतु मैंने उनसे कहा—"यदि तुम हमारे साथ चलना चाहते हो तो एक रिवॉल्वर, एक राइफल, कारतूस और गोलियाँ आदि ले आओ। हम छः और तुम तीन इस तरह नौ जवानों का इतना बड़ा दल हो जाने पर हमें अपनी सुरक्षा के लिए हथियार अत्यंत आवश्यक हैं।" वे बोले—"इतने हथियार तो कहीं से चोरी करके ही जुटाने पड़ेंगे। इसके लिये हमें कम-से-कम आठ दिन की मुहलत मिलनी चाहिए।" मैंने कहा—"कोई हर्ज़ नहीं। परंतु बिना हथियार लिए तुम मत आना। यहाँ आने पर मुँह से सीटी बजा देना। तुम्हारा इशारा सुनकर हम तुमसे इसी

स्थान पर आ मिलेंगे।" इतना निश्चित हो जाने पर वे तीनों लौट गए।

वह था मई महीने का पहला सप्ताह। जर्मनों ने गाँव में और अधिक कड़ा पहरा कर दिया था। गाँव के आसपास वे रात-दिन गश्त लगाया करते थे। पहाड़ों के नज़दीकवाले भागों के बारे में तो वे बड़े सतर्क और सावधान थे। पहाड़ पर बकरियाँ और भेड़ें चराने आनेवाले गड़रियों पर उन्होंने बड़े कड़े बंधन लगा रखे थे। यही नहीं, बल्कि कुछ जर्मन सैनिक पहाड़ पर आकर भी गश्त लगाते थे। रोज़ की तरह एक दिन मैं सूर्यास्त से पहले आध-पौन घंटे के लिये अपनी गुफा के बाहर थोड़ी दूर पर यों ही बैठा हुआ था। इसी समय मुझे कुछ ऐसा सुनाई पड़ा जैसे करीब आध-पौन मील के फासले पर पहाड़ के नीचे कुछ गडबड़-सी हो रही हो। मैंने तुरंत दूरबीन से देखा तो टॉमी-गन्स लिए दो जर्मन सैनिक पहाड़ चढ़ते हुए मुझे दिखाई दिए। उन्होंने भी शायद मुझे उसी समय देख लिया होगा। क्षणार्ध में उन्होंने टॉमी-गन का फायर किया। गोलियाँ मेरे सिर पर से साँय-साँय करती हुई निकल गईं। मेरे छक्के छूट गए और वहाँ से दौड़ता हुआ १०-१५ गज़ दूर की अपनी गुफा में मैं जा बैठा। थोड़ी देर वहाँ उसी तरह बैठा रहा। कुछ ही समय बाद उनमें से एक सैनिक, ठीक उसी चट्टान पर जा चढ़ा जिस चट्टान की पोल में मैं छिपा हुआ था। मैं उसे दिखता नहीं था। परंतु चट्टान की दरार पर की झाड़ियों के पत्तों के झरोखे से मैं अलबत्ता उसे साफ देख रहा था। वह स्थान ऊँचा होने के कारण वहाँ खड़े होकर वह शायद आसपास के भूभाग का निरीक्षण कर रहा होगा। वहाँ से काफी अंतर पर खड़े हुए अपने साथी को वह बड़े ज़ोर से चिल्लाकर, जर्मन भाषा में कुछ कह रहा था। वह मुझे स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था; पर भाषा का ज्ञान न होने के कारण उसे मैं समझ नहीं पा रहा था। इसी समय उसने टॉमी-गन का एक फायर और किया। मैं साँस रोके बैठा हुआ था। मेरे सीने पर तो जैसे वह यमदूत बनकर खड़ा हो गया था। अगर कहीं उसकी नज़र उसके पैरों की ओर ज़रा भी मुड़ती और उसके मन को ज़रा-सा भी शक छू जाता तो टॉमी-गन के घोड़े को दबाने में तनिक देर न लगती और मेरी जीवन-यात्रा उसी गुफा में समाप्त हो जाती। अपने धड़कते सीने के पास रखी बाइबिल की छोटी-सी प्रति पकड़े मैं एक-एक पल गिनता पड़ा रहा। पर सचमुच ही आकाश से रथ में जानेवाले लक्ष्मी-केशव का ध्यान मेरी ओर था। मेरे परम पूज्य

पिताजी के आशीर्वाद मेरे साथ थे। थोड़ी देर बाद वह जर्मन यमदूत चट्टान से उतर पड़ा और जिस रास्ते आया था उसी रास्ते वहाँ से चल दिया। मैंने छुटकारे की एक लंबी साँस ली। ज़ाहिर ही उस समय, जब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि मेरी साँस उस जर्मन यमदूत के कानों में न पड़ सकेगी—याने उसके काफी दूर निकल जाने के बाद ही! मुझसे केवल दो कदमों की दूरी पर मौत आ गई थी। परंतु मेरा समय न आने के कारण वह लौट गई थी।

उन दोनों के वहाँ से चल देने के बाद रात करीब साढ़े आठ बजे मैं उठकर झरने पर गया। अन्य पाँच साथियों ने भी टॉमी-गन्स की गोलियों की आवाज़ें सुनी थीं। उन्हें भी जानने की उत्सुकता थी कि क्या मामला था; और कुछ भय भी लग रहा था। एक-दूसरे को सुरक्षित देखकर सभी को आनंद हुआ। बाद में मैंने आपबीती सुनाई। मेरा अनुमान था कि जर्मनों की हलचलों से लगता है कि हमारी सेना नज़दीक आ रही होगी और गाँव छोड़कर जाने से पहले यदि संभव हो तो हमें पकड़ लें इसीलिए वे इतनी जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं।

इस घटना के दूसरे ही दिन बाद मुझे पहाड़ में काफी फ़ासले पर गड़रिए का एक लड़का दिखा। वह जर्मनों की आँख बचाकर पहाड़ की दूसरी तरफ से आया होगा। मैंने अपने एक साथी को भेजकर उसे बुलवाया। उसने हमें गाँव में जर्मनों द्वारा हो रहे अत्याचारों की पूरी जानकारी दी। वह बोला—"गाँव में जर्मनों ने बड़ा हुड़दंग मचा रखा है। तुम्हारे यहाँ आने के बाद एक दिन वे रोमानो को इसी झरने के पास पकड़ कर लाए थे। उन्होंने उसके सब कपड़े उतारकर, उसके नंगे बदन पर खूब बेंत मारे। दर्द से वह फूट-फूटकर रो रहा था। परंतु उसने मुँह से एक शब्द भी नहीं निकाला। हम सब सारा दृश्य दूर से देख रहे थे।"

लड़के के मुँह से यह हाल सुनकर, मेरा दिल भर आया। रोमानो ने मेरे लिए—हमारे लिए यह सब क्यों बरदाश्त किया? मैंने सुना था कि ईश्वर किसीके भी मन में आकर टिक जाता है परंतु वह ईश्वर इतनी मज़बूती से टिक जाता है, यह अनुभव कम-से-कम मेरे लिए तो अलौकिक ही था। मेरे सामने प्रश्न खड़ा हुआ, अब कितने दिन अपनी और सभी की सहनशक्ति की परीक्षा ली जाए। मेरे पैरों तले की बालू खिसक रही थी। अब संतुलन सँभालना कठिन था। बिना अन्न के, बिना वस्त्र के, पहाड़ों, दर्रों और जंगलों

में लुक-छिपकर ज़िंदगी जीने से जी ऊब उठा था। इसी मनःस्थिति में मैंने अदलीना को एक पत्र लिखा और उस लड़के से पत्र को अदलीना तक पहुँचा देने के लिए रोमानो अथवा सीरिओ के हाथ में देने को कहा।

पत्र में मैंने लिखा था—"अदलीना, हम अपने वर्तमान जीवन से अब बिलकुल ऊब उठे हैं। रोमानो से मुलाकात नहीं हो रही है। गाँव के गड़रिए भी जंगल में अब नहीं आते। गाँव में आने की तो गुंजाइश ही नहीं रही। मुझे लगता है कि ऐसी हालत में दिवाभीतों-सी ज़िंदगी जीने की अपेक्षा या तो जर्मनों की शरण में जाकर किस्मत का फैसला करा लेना चाहिए या यहाँ से भागकर कम-से-कम मोर्चे की तरफ ही जाने की कोशिश करनी चाहिए। हमारे खाने-पीने के बारे में तो कुछ पूछो ही नहीं।"

लड़का पत्र ले गया और एक-दो दिनों के बाद अदलीना का उत्तर ले आया। अदलीना ने लिखा था—"साल्वी, तुम सब लोगों की भयानक स्थिति के बारे में पढ़कर मुझे बड़ा दुख हुआ। पर मेरी अपनी स्थिति भी उतनी ही भयानक है। मेरी माँ को तो वे पकड़कर ले ही गए हैं और अब तो मेरे पीछे भी पड़ गए हैं। चार छप्परों के जोड़ के एक जोड़ में मैं दिन काट रही हूँ। यदि उन्होंने पकड़ लिया तो वे मेरी बड़ी दुर्दशा करेंगे, प्राण भी ले लेंगे। तुमने मोर्चे पर जाने का यदि सचमुच ही निश्चय कर लिया है तो मुझे भी अपने साथ ले चलो। मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। यहाँ मेरी जान बड़े खतरे में है। पर किसी भी परिस्थिति में तुम शरण मत जाना। हिम्मत मत छोड़ना। थोड़े ही दिनों में सब कुछ ठीक हो जाएगा। खाना तो मेरे लिए भी दुर्लभ ही है। मैं स्वयं दूसरे के दिए अन्न पर गुज़र कर रही हूँ। इसलिए तुम्हें क्या दूँ? इस समय मेरे पास जो ब्रेड है उसका आधा टुकड़ा भेज रही हूँ। किसी भी स्थिति में तुम शरण जाने का विचार तक मन में मत लाना। मैं तुम्हें मुक्त हुआ देखने की आशा मन में सँजोए बैठी हूँ। अदलीना।"

ब्रेड के आधे टुकडे को हाथ में लेकर, मैं उसकी ओर देखता ही रहा। स्वयं अध-पेट रहकर, अदलीना द्वारा भेजा गया उसके मुँह का कौर था वह। मेरे शरण जाने के सारे विचार नष्ट हो गए। मैंने अपने सब साथियों को बुलाकर कहा कि शरण जाने का विचार मैंने बदल दिया है। ऐसी परिस्थिति में शत्रु की शरण जाना रोमानो और अदलीना तथा उन अन्य सब लोगों के प्रति विश्वासघात करना होगा जिन्होंने हमपर अपने प्राण निछावर किए हैं,

और हमारे लिए जिन्होंने स्वयं बड़े-बड़े कष्ट सहे हैं और आज भी सह रहे हैं। यदि हम शरण जाएँगे तो हमारे मददगार होने के नाते उनकी भी बड़ी दुर्दशा की जाएगी। उन्हें प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। यह सब ध्यान में रखकर मैंने अपने साथियों से कहा कि अब बहुत-से-बहुत एक महीने का ही प्रश्न है। हम शरण जाने का विचार छोड़ दें और जिस स्थिति में हम आज हैं उसी स्थिति में हिम्मत बाँधकर पड़े रहें।

शरण जाने का विचार हमारे दिमाग से तिरोहित हो गया। परंतु हमारी सहायता से भागकर प्राण बचाने के इच्छुक उन तीन ज़ेकोस्लावों का क्या किया जाए, यह प्रश्न हमारे सामने था ही। अब हमने भाग जाने का विचार भी छोड़ दिया था और यहीं छिपे रहकर दिन काटने का निश्चय किया था। ऐसी स्थिति में और तीन लोगों की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेना याने अन्न-समस्या, छिपकर रहने के लिए सुरक्षित स्थान का सवाल, सुरक्षा का प्रश्न आदि सभी बातों को जान-बूझकर बढ़ाने जैसा था। भाग जानेवाले युद्ध-कैदियों के हिसाब से तो वास्तव में दो मनुष्य भी अधिक होते हैं। हमारे साथियों में शराफत और उसका भाई—सगे भाई होते हुए भी सुरक्षा के लिए अलग-अलग ही रहा करते थे। 'अपनी-अपनी चिंता प्रत्येक को और सबकी ईश्वर को!' (Everybody for himself and God for all) यह थी हमारी नीति। उसमें उन तीन ज़ेकोस्लावों की अधिक ज़िम्मेदारी अपने ऊपर जान-बूझकर लेने में कोई तुक नहीं थी। परंतु जैसा कि तय हुआ था उसके अनुसार एक सप्ताह समाप्त होते ही वे तीनों मूर्त्तियाँ आ धमकेंगी यह निश्चित-सा ही था। अंत में विचार करके मैंने उस गड़रिए के लड़के पर विश्वास ज़ाहिर किया। मैंने उससे कहा—
"वे तीनों जब यहाँ आएँ तो तुम नज़दीक पास ही अपनी भेड़ें चराते रहना। आने पर वे लोग हमें इशारा करने के लिए सीटी बजाएँगे। हमें खोजने की कोशिश करेंगे। और जब हम उन्हें नहीं दिखेंगे तब वे तुम्हारे पास आकर हमारी पूछताछ करेंगे। उस समय तुम उनसे कह देना कि, 'हममें से दो को तो जर्मन पकड़कर ले गए हैं। इस कारण बाकी के सब लोग घबराकर पहाड़ के उस पार के गाँव में चल दिए हैं। वे ठीक कहाँ गए हैं यह मैं नहीं जानता। उन्होंने जाते समय कुछ नहीं बताया।'"

अपने वादे के मुताबिक रविवार की शाम को वे तीनों आ ही धमके। आते ही उन्होंने सीटी बजाई और जब हम नहीं दिखे तो मेरे अनुमान के

अनुसार उन्होंने भेड़ें चरानेवाले उस गड़रिए के लड़के को अपने पास बुलाकर हमारे बारे में पूछताछ की। उसने मेरे पढ़ाए अनुसार उनसे कह दिया। यह सुनकर कि हममेंसे दो को जर्मनों ने पकड़ लिया है, उन तीनों के छक्के छूट गए। वे असमंजस में पड़ गए। बेचारे अपने साथ एक राइफल, एक रिवॉल्वर, गोलियाँ और कारतूस लाए थे। वह सब माल चोरी का होने के कारण उसे वापिस ले जाना भी संभव नहीं था, इसलिए वह सब वहीं की एक झाड़ी के भीतर उन्होंने फेंक दिया और वहाँ से चल दिए। उन्हें इस तरह निराश होकर वापिस जाते देख हमें बड़ा अफसोस हुआ। परंतु ऐसा किए बिना दूसरा चारा ही नहीं था।

वहीं ठहरने का निर्णय कर लेने के बाद पुनः हमारा पहले का कार्यक्रम शुरू हुआ। एक-दो दिन के बाद सायंकाल के समय जब हम अपने संकेत-स्थान पर बैठे हुए थे कि कहीं से बें-बें की आवाज़ हमारे कानों में आई। आवाज़ की दिशा में खोजकर देखने से हमें एक मेमना दीख पड़ा। पहाड़ पर भेड़ें चरने आती थीं, उन्हींके झुंड का कोई राह-भूला मेमना होगा। हम ठहरे भुखमरे! हमने उसे पकड़ा और उसका यथोचित उपयोग कर लिया। ज़ेकोस्लाव रसोइया द्वारा लाई गई रोस्टेड टाँग और उसके बाद यह मेमना—मई महीने के प्रथम दो सप्ताह में ईश्वर ने ही इस तरह हमारे भूखे पेट का इंतज़ाम कर दिया था।

१८ मई की शाम को हम नित्य की भाँति झरने पर बैठे हुए थे। पिछली रात हम सबने दूर क्षितिज पर अवज़्ज़ानो की दिशा में रोशनी देखी थी। टॉमी-गन्स के फायरों की आवाज़ें भी सुनी थीं। उसीके बारे में हम चर्चा कर रहे थे। मैंने कहा—"इसका अर्थ शायद यह है कि लड़ाई हमारी दिशा में ही आगे-आगे बढ़ी आ रही है, और दोस्तों की जीत हो रही है। हमारी रिहाई का क्षण अब नज़दीक आ रहा है।" हम इस तरह [illegible] रहे थे कि इसी समय 'साल्वी! साल्वी!' की पुकारें हमें [illegible] वे आवाज़ें रोमानो और सीरिओ की थीं, यह मैं [illegible] देखकर कि वे नाम लेकर इतने ज़ोर-ज़ोर से पुकारते आ रहे हैं, [illegible] आश्चर्य का धक्का ही लगा। वे हमारे पास आ पहुँचे [illegible] अत्यंत प्रफुल्लित दिख रहे थे। रोमानो ने मुझसे [illegible] हम सबका संकट अब टल गया है। गाँव से [illegible]

दो दिन से वे अपना सामान बाँध रहे थे और आज वे सब चल दिए। तुम अब हमारे साथ गाँव में चलो।" सबको मुक्त हो जाने का आनंद हुआ। पर मैंने उन दोनों से कहा—"इतनी उतावली करने से काम नहीं चलेगा। लड़ाई ज़ारी है और हालाँकि जर्मनों का दस्ता गाँव छोड़कर चला गया है फिर भी उसकी जगह दूसरा नहीं आ जाएगा, यह तुम कैसे कह सकते हो? वे जाते समय सड़कों और पुलों को नष्ट-भ्रष्ट करके जाएँगे। तुम्हारे गाँव के पास का पुल वे जब तक उड़ा नहीं देते तब तक आखिरी जर्मन गाँव छोड़कर चला गया है यह मानने के लिए कम-से-कम मैं तैयार नहीं। अब इतने दिनों तक हम बाहर रहे हैं उसमें अगर और दो-तीन दिन ठहर जाएँ तो क्या बिगड़ जाएगा? चाहो तो तुम भी हमारे साथ यहीं रह जाओ।" परंतु वे दोनों ठहरे नहीं। वे चल दिए। उनके जाने के एक-दो दिन बाद हमने उन ज़ेकोस्लावों द्वारा झाड़ी में फेंक दिए गए हथियारों को खोज निकाला और अपने पास रख लिया।

२१ मई का दिन उदित हुआ। उस दिन दोपहर करीब चार-साढ़े चार बजे हमने धड़ाके की एक बड़ी आवाज़ सुनी। गाँव से जानेवाले आखिरी जर्मनों ने रास्ते का पुल उड़ा दिया था। उसीके विस्फोट की वह आवाज़ थी। अब मुझे विश्वास हो गया कि जर्मन वापिस चले गए हैं और शत्रु उनका पीछा न कर पाएँ इसलिए उन्होंने पुल भी उड़ा दिया है। युद्ध-शास्त्र के दाँव-पेंच के अनुसार ही उन्होंने यह किया था। अब गाँव के भीतर जाने में कोई हर्ज़ नहीं था। परंतु गाँव में जाकर रहना ही मेरा काम नहीं था, बल्कि दोस्त सेना के एक अधिकारी के नाते हमारी सेना के आने तक गाँव में उचित शासन का प्रबंध करना, गाँव में कोई संशयास्पद व्यक्ति हो तो उसकी खोज करना, अगर कोई जर्मन हो तो उसे कैद करना यह सब शासन की दृष्टि से मेरा कर्तव्य था। कौन-कौन से काम मुझे वहाँ जाकर करने हैं यह सब मैंने नोट कर लिया।

उसी रात रोमानो, सीरिओ, अंतोनेली और अदलीना पहाड़ पर आए। आनंद और उत्साह उनके चेहरों से झलक रहा था। उनका कहना था कि पुल के उड़ा देने के बाद गाँव में एक भी जर्मन नहीं रहा इसलिए हम लोग अब उनके साथ गाँव चलें। मैंने उनसे कहा कि रात का वक्त है। इस समय गाँव में प्रवेश करना खतरे से खाली नहीं। हमें गाँव में ले जाने के बजाए तुम नीचे

गाँव में जाकर जो कोई यहाँ आना चाहता हो उसे यहीं ऊपर ले आओ। सब लोगों के लिए खाना-वाना भी लेते आना। हम सब मिलकर यहीं झरने के किनारे खाना खाएँगे और अपनी स्वतंत्रता का आनंदोत्सव मनाएँगे।

तदनुसार रोमानो खाने की चीज़ें लाने और दूसरे लोगों को बुलाने नीचे गाँव में गया। आते समय उसके साथ बहुत से लोग पियानो, ॲकॉर्डिअन, माउथ-आर्गन इत्यादि वाद्य बजाते हुए गाँव से पहाड़ पर आए। हमारे अज्ञातवास में रहते समय उनके इन्हीं वाद्यों से और इस आमोद-प्रमोद से हमारा कलेजा धड़कने लगता था। पर अब अलबत्ता हमने उनके गायन-वादन का भरपूर रस लिया। रातभर बंद कर रखे हुए पंखों को फड़फड़ाकर नील गगन में स्वैर संचार करनेवाले पक्षियों की तरह हमारे मन नाच रहे थे, गा रहे थे। हम सबने मिलकर एकत्र खाना खाया।

एक निराला ही 'श्रम-भोजन' था वह! भोजन के बाद दिल खोलकर गप्पें हुईं। रात करीब ११-१२ बजे रोमानो, सीरिओ और ऊपर आए हुए गाँव के सब लोग वापिस चले गए। उनके जाने पर उस रात हम नज़दीक की खुली गुफा में प्रथम बार ही एकत्र सोए। झरने का कलकल निनाद हमारे कानों में पड़ रहा था। हमारी गप्पें चल रही थीं। अपने जीवन-चक्र के आज तक के फेरे हम पुनः याद कर रहे थे, और 'रात्रिरेवव्यरंसीत्'—वह रात समाप्त हुई, पर स्मृतियाँ समाप्त नहीं हुईं...आज भी कहाँ समाप्त हुई हैं?

दूसरे दिन २२ मई की सुबह मैंने अपने पाँच साथियों के साथ संगठित रूप से गाँव में प्रवेश किया। हमारे गाँव में प्रवेश करते ही इटालियनों द्वारा पकड़े गए कुछ जर्मन सैनिक मेरे सामने पेश किए गए। उनके पास कुछ हैंड-ग्रेनेड्स (हथगोले) थे। वे उनसे छीन लिए गए और जर्मन कैदियों को एक कमरे में बंद कर दिया गया। अपनी निश्चित योजना के अनुसार मैंने गाँव की शासन-व्यवस्था अपने हाथ में ली। मैंने अपना हेडक्वार्टर (सदर मुकाम) अदलीना के घर ही रखा था। उस गड़बड़ी में अदलीना की माँ भी जर्मनों के चंगुल से छूटकर आ गई थी।

जिस दिन मैंने गाँव का शासन हाथ में लिया, उसके दो दिन बाद ता. २४ मई की शाम को दोस्तों की सेना के न्यूज़ीलैंडर्स का एक सेक्शन गाँव [illegible] आ रहा था तो हमारे इटालियन लोगों ने उसे रोक लिया। [illegible] आगे बढ़ा और उसने पूछताछ की। तब उससे कहा गया कि [illegible]

कब्ज़े में है। यह सुनते ही कि एक ब्रिटिश अधिकारी इस गाँव का शासन चला रहा है न्यूज़ीलैंडर्स के उस अधिकारी ने मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की। जब मेरी उससे मुलाकात हुई तो उसने मुझसे पूछा—"क्या आपके पास ऐसी कोई चीज़ है जिससे मैं आपको पहचान सकूँ?" मैंने गले से लटकता अपनी चमड़े का परिचय का तावीज़ (आइडेंटिटी डिस्क) उसे दिखाया। उसपर मेरा नाम, ओहदा, नंबर, रेजीमेंट और मेरे खून की किस्म (ब्लड-काउंट) आदि सब अंकित था। उसे देखकर उस अधिकारी को विश्वास हो गया और उसने हमें भरपूर अन्न और कपड़े दिए।

२५ मई के सवेरे वह फौज़ी टुकड़ी चली गई। जाते समय वह अधिकारी मुझसे बोला—"मुझे फौजी सदर मुकाम से यह सूचना मिली है कि गाँव में जर्मनों की कैद से भागा हुआ कोई ब्रिटिश फौज का अधिकारी हो तो उसे गाँव का अधिकार सौंपकर, मैं अपना सेक्शन लेकर आगे बढ़ जाऊँ। इसलिए इस गाँव का और आसपास के छः गाँवों का शासन आपके सुपुर्द किया जायगा।" इसके अनुसार उस दिन शाम ४ बजे के लगभग एक मेजर साहब आए और उन्होंने कहा—"विला-सान-सवास्तिआनो और उसके आसपास के छः गावों का शासन आपको सौंपा जा रहा है। कल से न्यूज़ीलैंडर्स की एक कंपनी आपकी मदद के लिए यहाँ आ जाएगी।" मेजर ने जो लिखित अधिकार-पत्र मेरे हाथ में दिया था उसकी नकल और उसका हिंदी अनुवाद नीचे दिया है।

| | |
|---|---|
| To whom it may concern | (जिसे लक्ष्य कर हो उसे : आई. |
| I. E. C. 777 Lt. R. G. Salvi | ई. सी. ७७७ लेफ्टिनेंट आर. जी. सालवी) |
| 2/5 Maharatta Light Infantry. | (२/५ मराठा लाइट इन्फेंट्री) |
| 4th Indian Division | (चौथी हिंदुस्तानी टुकड़ी) |
| 30743 | (३०७४३) |
| I. A. O. C. | (आई. ए. ओ. सी.) |
| 11th Indian Infantry B. D. E., H. Q. | ११वीं हिन्दुस्तानी पैदल सेना, बी. डी. ई. सदर मुकाम) |

| | |
|---|---|
| These late escaped allied officers and one I. O. R. are acting on behalf of and in full authority of 2 N. Z. Div. Field Security Intelligence, Avezzano. | (हाल ही में अपनेको रिहा कर लेनेवाले दोस्तों के ये अधिकारी व एक आइ ओ. आर. '२ एन. जेड. डिवीज़न' फील्ड सिक्योरिटी इंटेलीजेंस अवज्ज़ानो की ओर से और पूर्ण स्वतंत्रता से काम कर रहे हैं।) |
| Their power is extensive & they will be recognised as allied command. | (उनके अधिकार अपरिमित हैं और वे दोस्तों के अधिकारी के नाते जाने जाएँगे।) |
| Villa San Sebastiano | (विला सान सबास्तिआनो) |
| Taliccosso | (तालिसोसो) |
| Surculla | (सुरकुला) |
| (Signature of the officer) | (अधिकार-पत्र देनेवाले के हस्ताक्षर) |
| 16th June, 1944. | (१६ जून १९४४) |

इस अधिकार-पत्र को लेकर और न्यूज़ीलैंडर्स के उस अधिकारी द्वारा दिए गए अधिकार के वस्त्र पहनकर मैं उस सारे गाँव का शासनाधिकारी बन गया। जिस गाँव में मैंने जर्मनों के डर से अपने साथियों के साथ छुक-छिपकर दिन काटे थे, उसी गाँव के अधिकारपद पर मैं चढ़ा—यह जीत दोस्त राष्ट्रों की थी; मेरे जीवट की, मेरे साथियों द्वारा दिखाई गई ईमानदारी की थी; परंतु इन सबसे अधिक जिन्होंने मेरी सुरक्षा के लिए स्वयं अपनी सुरक्षा की परवाह नहीं की उन रोमानो-अदलीना जैसे मेरे उपकार-कर्त्ताओं की यह जीत थी।

# २२

# बिदा

*जून-सितंबर १९४४*
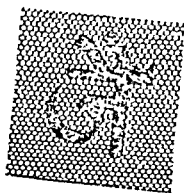
सा कि मेजर साहब कह गए थे, न्यूज़ीलैंडर्स की एक कंपनी मेरी सेवा में भेज दी गई। मैंने कंपनी को छः भागों में बाँटा और मेरे ज़िम्मे रखे गए छः गाँवों में मैंने एक-एक भाग को तैनात कर दिया। यह देखने के लिए कि आसपास कहीं शत्रु की हलचलें तो नहीं हो रही हैं, रोज़ सूरज डूबने से एक घंटा और परेड से एक घंटा पहले गश्त लगाई जाती थी। न्यूज़ीलैंडर्स की इस कंपनी से जैसी अनुशासनबद्ध सहायता मुझे मिली, वह अत्यंत प्रशंसनीय और हमारे छोटे-बड़े सभी देश-भाइयों के लिए अनुकरणीय थी। वे सब गोरे सैनिक थे। उनका साम्राज्य हिंदुस्तान से अभी मिटा नहीं था। इसके बावजूद उन सैनिकों ने यह सोचकर कि मैं एक अश्वेत व्यक्ति हूँ, एक बार भी मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। उन्होंने यह भावना भी कभी व्यक्त नहीं की कि मुझे शत्रुओं ने कैद कर लिया था और मैं उनका कैदी रहा था। परेड के मैदान में कदम रखते ही अधिकारी के नाते मेरे साथ जिस अदब से पेश आना उनके लिए ज़रूरी था, उसी अदब से वे मेरे साथ पेश आते थे। परेड की पूरी तैयारी हो जाने पर गोरा सार्जेंट मेरे सामने आकर फौज़ी सलाम कर बड़े अदब से मुझे परेड

की तैयारी की सूचना देता। यही नहीं, बल्कि ऑर्डर्ली-रूम में तो उनमें से कामचोर जवानों को मुझे सज़ा भी देनी पड़ती। मेरे इस काम में भी उनकी तरफ से कभी कोई बाधा नहीं डाली गई। उनके रोम-रोम में भरा अनुशासन ही उनके सफल जीवन का मर्म है। 'देह रहे या न रहे पर भगवान के प्रति मेरी श्रद्धा अटल बनी रहे' ऐसा कहनेवाले, भगवान के भक्त की [illegible] ईश्वरनिष्ठा और उन सैनिकों की वह अविचल कर्तव्यनिष्ठा, ये दोनों [illegible] मुझे तो बराबरी की ही जान पडती हैं।

इसी कारण मुझे युद्ध-काल के अनुशासन के पालन का एक और उदाहरण याद आता है। घटना उस समय की है जब स्वेज़-नहर की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी हमपर थी। उस पल्टन में एक पचास वर्षीय पिता सार्जेंट-मेजर था और उसीका पच्चीस वर्षीय जवान बेटा कैप्टन था। परेड की तैयारी हो जाने पर पिता अपने लड़के के सामने जाकर फौजी सलाम कर के बड़े अदब से कहता — "Sir, Parade is ready for your inspection." (महोदय आपके अवलोकन के लिए सैनिक तैयार हैं।) मेरे एक जवान ने ही मुझे यह प्रसंग बताया था। उस बूढ़े ने अपने नौजवान नायक का, वह अपना बेटा होते हुए भी, कभी भूलकर भी अपमान नहीं किया। यह कल का छोकरा, इसे क्या आता है, यह प्रश्न भी उसके मन में कभी नहीं उठा। जिन सैनिकों ने अनुशासन के क्षेत्र में बड़े-छोटे, अमीर-गरीब, गोरे-काले का भेद कभी नहीं माना, उन्होंने अनुशासन के महत्त्व को न जाननेवाले हम जैसे अनुशासनहीन लोगों पर यदि हुकूमत की तो इसमें आश्चर्य ही क्या! आज हम स्वतंत्र होकर अनुशासन के पाठ पढ़ रहे हैं, परंतु हमारा अनुशासन यदि [illegible] ही सीमित रहता है तो इससे काम नहीं चलेगा। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे मन में वह भाव पैठ जाए। मौत का [illegible] हर बाधा [illegible] इसी अनुशासन में बन्ध [illegible] हुए ही मौत को हँसते-हँसते हृदय से लगाता है!

जिस दल [illegible] और उसके [illegible] [illegible], नियति का [illegible] गाँव के [illegible] हुआ, जिस गाँव के [illegible] रक्षा की, जिस गाँव के [illegible]

के लिए जगह दी, जिस गाँव के गड़रियों ने भेड़ों का दूध पिलाकर मेरा पोषण किया, जिस भूभाग के प्रांगण में रात-दिन जान हथेली पर रख मैंने अपने अज्ञातवास के दिन काटे, उसी प्रांगण में, मैं सर्वाधिकारी के नाते, बेफिक्र और निःसंकोच होकर, सम्मान से घूमने लगा। यह दृश्य देखकर मेरे प्राणदाताओं रोमानो, अदलीना और सीरिओ, की आँखों से मेरे प्रति सराहना के भाव उमड़कर चूने लगे और प्रेम-भाव से बोझिल हुई उनकी आँखों को देखकर मेरा भी हृदय भर आने लगा।

इस तरह दिन बीत रहे थे कि २० जून के लगभग मेरे पाँच साथियों को हिन्दुस्तान जाने का हुक्म मिला। हिन्दुस्तान जाने से पहले नेपल्स के रिपॅट्रिएशन कैंप में उन्हें कुछ दिनों के लिए भेजा जानेवाला था। मेरे साथियों के गाँव छोड़कर जाने से पहले अनेक ग्रामवासियों ने इसके बावजूद कि उनकी अपनी हालत बहुत शोचनीय थी, उन्हें और मुझे अपने घर दावतें दीं। जब मेरे साथी जाने लगे, उस समय गाँव के बालकों से लेकर बूढ़े तक गाँव की सीमा तक उन्हें पहुँचाने गए। उन्हें ले जाने के लिए फौजी ट्रकें आई थीं। उन्हें विदा देते समय ग्रामवासियों की भावना की अभिव्यक्ति देखकर प्रत्येक का मन उदात्तता से बोझिल हो उठा। रोमानो, सीरिओ और अंतोनेली ने मेरे साथियों को कसकर गले लगाया, उनसे हाथ मिलाए और यह सब उन्होंने निःस्वार्थ वृत्ति से किया। मेरे पाँचों साथियों ने भी उतनी ही उत्कटता से उसका जवाब दिया। उनकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े थे, गला रुँध गया था। उनका और हमारा देश अलग, भाषा अलग, वेष अलग! फिर भी भावना का वह उबाल केवल 'इंसान वे भी, इंसान हम भी,' इसी भावना से आया हुआ था। 'विश्व ही मेरा घर' कहनेवाले ज्ञानेश्वर महाराज ने भावनात्मक एकता का जो महामंत्र इन तीन शब्दों में व्यक्त किया है, वह उनकी नस-नस में बह रहा था। हमें उस महामंत्र का अन्वय करना है, उसका अर्थ समझ लेना है।

मेरे साथी चल दिए। हममें से उस गाँव में अब मैं अकेला ही रह गया। अब अन्य न्यूज़ीलेंडर अधिकारियों की तरह मैं भी उनकी बराबरी का उन्हीं में से एक अधिकारी हो गया था। अवज़्ज़ानो में—वहाँ की उसी बैरक में हमारा फौजी हेडक्वार्टर था जहाँ जर्मनों ने हमें कैद कर रखा था और जहाँ से हम उनकी कैद से भाग निकले थे। जहाँ हमारा जेल था वहीं

अब हमारा कार्यालय हो गया था। हर शनिवार और रविवार को सब सैनिक अधिकारी जो प्रत्यक्ष लड़ाई पर नहीं थे, अवज़्ज़ानो में इकट्ठा होते थे। वहाँ उनका खाना-पीना, नाच-गाना आदि मनोरंजक कार्य-क्रम हुआ करते। विला सान सवास्तिआनो से अवज़्ज़ानो १५-२० मील दूर था। वहाँ इकट्ठा होनेवाले अधिकारी हर शनिवार और रविवार को जीप भेजकर मुझे बड़े आग्रह से अवज़्ज़ानो ले जाते। बड़ा आग्रह करते कि मैं उनके साथ खाऊँ-पिऊँ और उनके हर मनोरंजन के कार्य-क्रम में भाग लूँ। मैं शराब नहीं पीता था इसलिए पीने के कार्य-क्रम को छोड़कर, मैं उनके सभी कार्य-क्रमों में बिलकुल उनमें घुल-मिलकर, भाग लिया करता। मैं एक अश्वेत हिंदुस्तानी अफसर हूँ और वे सब गौरवर्णीय हैं, यह भेद उन्होंने कभी भूलकर भी नहीं दिखाया; उल्टे हिंदुस्तान के बारे में वे बड़ी उत्सुकता से जानकारी पूछा करते और अपने देश की जानकारी दिया करते।

अब हिंदुस्तान के रिश्तेदारों से मेरा पत्र-व्यवहार शुरू हुआ; पर पत्रों के उत्तर नहीं आ पाते थे क्योंकि हमारा मुकाम अनिश्चित था। इस तरह दो-तीन महीने गुज़र गए और एक दिन अवज़्ज़ानो जाकर मैं जनरल से मिला और अपने भारत जाने के बारे में मैंने उनसे पूछा। मैंने उनसे कहा कि यदि मुझे भारत जाने को न मिले तो कम-से-कम मोर्चे पर मुझे अपनी सेना में ही भेज दिया जाए। परंतु जनरल ने मुझे समझाया कि अधिकारियों की कमी के कारण मेरा वहीं रहना अत्यंत आवश्यक था पर उन्होंने आश्वासन दिया कि तुम्हें जल्द-से-जल्द हिन्दुस्तान भेजने का प्रबंध कर दूँगा।

इसके अनुसार जुलाई के अंत में मुझे खबर मिली कि मुझे सौंपी गई ज़िम्मेदारी से मुक्त किया जा रहा है और जहाज़ का प्रबंध होते ही मैं हिन्दुस्तान जा सकूँगा। करीब-करीब तीन महीने मैं विला सान सबास्तिआनो में रहा था। गाँव के सब लोगों को मालूम हो गया कि अब मैं गाँव छोड़कर जा रहा हूँ। सबको बड़ा दुख हुआ। जाने से पहले मुझे विदा देने के लिए गाँव के लोगों ने एक सभा की। हमारे यहाँ के गाँवों की सभा की तरह ही एक जगह पर यह सभा हुई। गाँव के प्रायः सभी घरों के स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। जहाँ स्थान मिला वहाँ लोग बैठ गए थे। मायस्त्रो इस सभा का सभापति था। गाँव में इतने बड़े पढ़े-लिखे प्रतिष्ठित धनी और सुशिक्षित लोगों के होते हुए मायस्त्रो को ही सभापति क्यों बनाया गया इसकी मैंने जब पूछताछ की तो जो उत्तर मुझे दिया गया वह

आज तक याद है। मुझसे कहा गया—"मायस्त्रो एक शिक्षक है। हमारे गाँव के समाज-जीवन की नैतिकता का वह शिल्पकार है। वह विद्या-देवी का प्रतिनिधि है। अज्ञान के अँधेरे से निकालकर वह हमें प्रकाश की ओर ले जाता है।" शिक्षक के प्रति यह आदर-भावना मुझे सचमुच बड़ी आदर्श लगी। सारा गाँव मेरे प्रति क्या सोच रहा है यह बताने की ज़िम्मेदारी मायस्त्रो पर ही डाल दी गई थी। सभा में सिर्फ़ उसीका भाषण हुआ। रोमानो, सीरिओ, उसकी माँ, अदलीना और उसकी माँ, अंतोनेली, पापा पेत्रीनो ये सब लोग मेरे सामने बैठे हुए थे। पर उनकी आँखें क्या नहीं बोल रही थीं? उन आँखों की भाषा को शब्दांकित करने की शक्ति मुझमें नहीं। आसमान तक को बौना बना देनेवाली वह उदात्त भावना उनकी आँखों से पानी की बूँद बनकर चू रही थी, टपक रही थी।

मायस्त्रो बोला—"मित्रो, आज हम सालवी को, अपने एक प्रिय मित्र को विदा देने के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं। पिछले तीन महीने के हमारे ये शासनाधिकारी इस गाँव में किस स्थिति में आए और किस स्थिति में इस गाँव में रहे, ये सारी बातें हमारी स्मृति में बिलकुल ताज़ा हैं। आज हम अपने इन मित्र के प्रति आत्मीयता और अपनापन अभिव्यक्त करने तथा उनका शुभचिंतन करने के लिए यहाँ आए हैं। हम सबकी, अपने इस गाँव की स्मृति के रूप में मैं ये दो चीज़ें इन्हें भेंट करता हूँ। यह है हमारे गाँव का झंडा। यह झंडा हमारे गाँव पर बड़ी शान से फहरा रहा था। एक वक्त ऐसा भी आ गया कि हमें डर लग रहा था कि यह झंडा नीचे तो नहीं उतार दिया जाएगा। परंतु हमारे इन मित्र ने हमारे इस झंडे की शान रखी। पिछले करीब एक वर्ष तक हमारे ये मित्र इस गाँव में इस तरह रहे जैसे यह उनका अपना ही गाँव हो। यह सारा गाँव सच्चे अर्थ से इनका हो गया और ये हमारे इस गाँव के हो गए। इसलिए यह झंडा मैं उन्हें भेंट करता हूँ। इस झंडे के साथ अपने गाँव के पाँच सौ निवासियों के हृदय मैं इनके हाथ में दे रहा हूँ। अपनी स्मृति के रूप में यह खंजर भी जिसकी मूठ पर हमारे गाँव का मान-चित्र अंकित है, मैं अपने इस बहादुर दोस्त को दे रहा हूँ। मित्र, मेरी यही प्रार्थना है कि आप कहीं भी रहें पर हमें याद रखें। हम आपको कभी नहीं भूलेंगे। आप भी हमें कभी मत भूलें। ईश्वर आपकी सदैव रक्षा करे।"

अब मुझे भी उत्तर देना आवश्यक था। मैं खड़ा होकर अपनी इटालियन

भाषा में बोला। मुझे यह भाषा सिखानेवाले मेरे गुरु रोमानो और अदलीना, दोनों मेरे सामने ही बैठे थे। मैंने कहा—"मैं आप सब लोगों का अत्यंत ऋणी हूँ। मायस्त्रो, रोमानो, सीरीओ, सीरीओ की माताजी, अंतोनेली, अदलीना की माताजी और स्वयं अदलीना—आप सब लोग मेरे सच्चे प्राणदाता हैं। आप लोगों के मन में एक दिन भगवान आ बसा उसके कारण ही आज मैं आप लोगों के सामने खड़ा हूँ। आप सबने मिलकर आज मेरा जो सम्मान किया और मेरे प्रति जो सद्भावनाएँ व्यक्त कीं उनका उत्तर देने की और आपके उपकारों से उऋण होने की शक्ति मुझमें नहीं। क्या बोलूँ यह भी मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। मुझे याद है कि लड़ाई पर आने से पहले मेरे पिताजी ने एक स्वप्न देखा था। उस स्वप्न का हाल बताते समय उन्होंने मुझसे कहा था कि हमारे कुलदेव लक्ष्मी-केशव तुम्हारी रक्षा करेंगे। अपनी इस कठिन परीक्षा से पार होने के बाद अब मुझे लगता है कि अदलीना, रोमानो और आप सब लोग मेरे लिए लक्ष्मी केशव बने और आपने मुझे पुनर्जीवन दिया। मेरी रक्षा करनेवाले अपने उन कुलदेवता से मैं सदैव यह प्रार्थना करूँगा कि भगवन्, इस गाँव पर कभी कोई संकट न आए। इस गाँव की रक्षा कीजिए, इस गाँव का पोषण कीजिए, इस गाँव को हमेशा खुश रखिए। मैं आप लोगों को कभी नहीं भूलूँगा और आजन्म आपका ऋणी रहूँगा, आपका रहूँगा।"

भाषण समाप्त करते समय मेरा गला रुँध गया था। आँखों से आँसू बहने लगे थे। जाते वक्त जितनी भी मेरी अपनी चीज़ें थीं, वे सब मैंने अदलीना को दे दीं। मेरी रिस्ट वॉच, ग्रेट कोट, कम्बल, मेरे अन्य कपड़े, पाँच सौ लिरा। यह सब कुछ मैंने उसे दे दिया। अपने लिए मैंने सिर्फ एक हाफ पैंट और एक शर्ट रखा जो मैं पहने हुए था। मेरे द्वारा उसे दी गई ये चीज़ें कोई बहुत कीमती नहीं थीं पर उस वक्त मेरे पास की अपनी कुल पूँजी वही थी। मैं जो दे सकता था, वह यही था। इन चीज़ों को देकर उसके उपकारों से उऋण होने का विचार मेरे मन में बिलकुल नहीं आया। और ऐसा करना संभव भी नहीं था। ये चीज़ें बहुत दिनों तक उसके पास रही भी न होंगी पर एक बात उसके दिल में हमेशा रही होगी कि वापिस जाते समय सालनी अपने साथ सिर्फ एक हाफ-पैंट और शर्ट जो वह पहने हुए था, लेकर गया और बाकी का सब उसने दे डाला। अदलीना भी मुझे देने के लिए भेंट लाई थी। वह एक मामूली तौलिया था। उस बेचारी के पास देने लायक वही एक चीज़

बिदा।

थी। पर मेरे लिए वह अनमोल थी। वह उसके और उसकी माँ के हाथ से काते गए सूत की बनी थी और उसमें अद्लीना का नाम बुना हुआ था।

मैं जीप की ओर बढ़ा। मुझे जो झंडा दिया गया था उसको मैं तह करने लगा। इसी समय मायस्त्रो आगे बढ़ा और मुझसे बोला—"ठहरिए, यह झंडा यों तह करके ले जाने को नहीं दिया है। यह आपके गाँव का और आपका भी विजयी झंडा है।" सीरिओ और रोमानो झट-से आगे बढ़े और उन्होंने झंडे को जीप के बॉनेट पर फैलाकर बाँध दिया और मुझसे जीप में खड़े रहने को कहा। आज यह झंडा मेरी सप्रेम भेंट के नाते पूना में मराठा पैदल सेना के मेरे अपने दल की ऑफीसर्स मेस में रखा हुआ है। बॉनेट पर उस

मैं उन लोगों की ओर मुँह करके जीप में खड़ा था।

झंडे को फहराती हुई मेरी जीप स्टार्ट हुई। मैं उन लोगों की ओर मुँह करके जीप में खड़ा था। रोमानो, सीरिओ, अंतोनेली, पापा पेत्रीनो, ये सब लोग सामने खड़े हुए आँखें पोंछ रहे थे। जीप की रफ्तार बढ़ी और मेरे कानों में पड़ी हृदय फाड़ देनेवाली अदलीना की सिसकी! मेरी आँखें छलाछला उठीं।

अपने सारे प्राणदाताओं से विदा लेकर अपने देश लौटते समय जिस जहाज़ से मैंने सफर किया वह भी इटालियन ही रहे, यह भी एक संयोग ही था। लंबी जल-यात्रा के बाद सितंबर के प्रथम सप्ताह में मुझे भारत का किनारा दिखने लगा और घर के लोगों की याद ज़ोर पकड़ने लगी। मैं अपने घर के लोगों के पास जा रहा था, पर उधर अपने घर के लोगों को छोड़कर आया था। आज या कल मैं अपने देश के किनारे पर कदम रखूँगा। मेरा रोज़ का जीवन-क्रम शुरू हो जाएगा। सब कुछ सुचारु रूप से चलेगा। पर क्षण-क्षण मैं खोया-खोया महसूस करूँगा। मुझे याद आएगी रोमानो, सीरिओ और अदलीना की, देवपुरुषों की। आज बाईस वर्ष के बाद भी उनकी स्मृतियाँ बिलकुल ताज़ा हैं। उन नौ महीनों में जो घटित हुआ वह सब लगता है, जैसे अभी कल की बात हो। मानवता के प्रति विश्वास दृढ़मूल करनेवाले, संसार के उज्ज्वल भविष्य की साक्षी देनेवाले देवपुरुषो, रोमानो, अदलीना—तुम्हें शत-शत प्रणाम, कोटि-कोटि प्रणाम!

विला, ७-१-६१

प्रिय सालवी,

कितने ही दिनों से तुम्हारा एक भी पत्र न आने के कारण मेरे मन में तुम्हारे लिए बड़ी चिंता हो रही थी। परंतु जब तुम्हारे पत्र से तुम्हारा कुशल समाचार मिला तो मन की सारी चिंता का स्थान आनंद ने ले लिया।

तुम सब यहाँ थे, उसके बाद कितने ही वर्ष बीत गए। कैसे दिन थे वे? डर और खतरे से भरे हुए, किंतु फिर भी अभिमान और आनंद से भरे हुए। तुम सहज ही कल्पना कर सकते हो कि उसके बाद की इस लंबी अवधि में कितनी ही घटनाएँ घटी हैं—कितनी ही बातें बदल गई हैं।

उन दिनों जिन लोगों ने तुम्हारी चिंता की थी, उन लोगों को सुख के वे अनुभव अभी तक याद आते हैं। आज वे लोग सुख और संतोष का जीवन बिता रहे हैं। हमारा रोमानो वेरार्दी अब अवज्ज़ानो में रहता है। एतेलों अंतोनेली रोम में स्थायी रूप से रहने लगा है। भगवान की दया से दोनों की आर्थिक स्थिति अब अच्छी है। मायस्त्रो कोंती और मेरी वृद्ध माता, दोनों इस संसार से विदा हो गए हैं। पापा पेत्रीनो अब बहुत ही बूढ़ा हो गया है और अपनी पत्नी के साथ जीवन का अंतिम समय शान्ति से व्यतीत कर रहा है।

यदि मेरे बारे में जानना चाहते हो तो बड़े दुख से कहना पड़ता है कि मैं अब पहले की अदलीना नहीं रही। उन दिनों की कड़ी मेहनत, कड़ाके की ठंड, घोर चिंता, निद्राविहीन रातें, ये सारे कष्ट मैंने उसी ईश्वरीय प्रेरणा से सहे जो निराशा से ग्रस्त लोगों के जीवन में आशा की किरण जगाने के लिए प्राणों को निछावर कर देती है। मैं यह सब कर सकी अपने द्वार पर आए मनुष्य को मानवता की भावना से मदद करने की इच्छा से ही। परंतु उन सारे कष्टों की मेरे मन और स्वास्थ्य पर ऐसी छाप उभर आई है जो अब

कभी न पुँछ सकेगी। मैं अब इतनी कमज़ोर हो गई हूँ कि तुम कल्पना भी नहीं कर पाओगे। अब मुझसे अधिक कष्ट उठाते नहीं बनता। मेरे पति भी अधिक मदद नहीं कर सकते। उनका हाल ही में पेट का ऑपरेशन हुआ है। इस गहन अंधकार में आशा की सिर्फ एक ही ज्योति है; वह है मेरी चौदह साल की बेटी। उसके इर्दगिर्द ही अब मेरा जीवन मँड़रा रहा है।

इस सारी अवधि मैं तुम्हें खूब याद करती रही। बाट जोहती रही कि कभी तो तुम्हारे पत्र की चार सतरें मुझे पढ़ने को मिलेंगी, तुम्हारा कोई समाचार प्राप्त होगा। पर एक-एक दिन बीतता गया और मैं धीरे-धीरे निराश होती गई। जीवन में हमेशा ही ऐसा होता है। इस निराशावाद के कारण हम कुछ गलत भी समझ बैठते हैं। ठीक है न? इसी तरह मुझे भी गलतफहमी हो गई थी। सच बताऊँ सालवी, मैं यही मान बैठी थी कि तुम अब इस दुनिया में नहीं हो। इस विचार के कारण मुझे अत्यंत दुख हुआ। अफसोस हुआ सोचकर कि मैंने तुम्हारे लिए जो कुछ किया उसने तुम्हारी मृत्यु को कुछ और आगे धकेल दिया, बस! मेरा ख्याल है कि इससे तुम मेरी मनस्थिति ठीक-ठीक समझ जाओगे। यदि मुझे यह लगता कि जीवित रहते हुए भी तुम मुझे बिल्कुल भूल गए हो, तो मुझे और भी अधिक दुख होता। जब केवल संयोग से मुझे पता चला कि हमारे म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन में तुम्हारा पत्र आया है तो तुरंत ही मैंने उनसे तुम्हारा पता पूछ लिया और तुम्हें पत्र भेजने की बड़ी तीव्र इच्छा मन में जाग उठी। सच पूछा जाए तो क्या तुम यह नहीं सोचते कि इससे बहुत पहले ही तुम्हें पत्र भेजना चाहिए था? मेरे इन विचारों के कारण, आशा है, तुम बुरा नहीं मानोगे और मेरा ख्याल है कि तुम भी उन दिनों के बाद के अपने जीवन का सब हाल लिखोगे। पिछले ही वर्ष अपना अली यहाँ आकर मुझसे मिला था, उस समय मुझे कितनी खुशी हुई थी। क्या तुम भी एक बार फिर इटली आने की कोशिश नहीं करोगे?

मेरा ख्याल है मैंने काफी लंबा पत्र लिखा है। पत्र के अंत में तुम्हारे भावी जीवन के लिए मैं अपनी शुभकामनाएँ भेजती हूँ और तुम जो पुस्तक लिख रहे हो उसमें तुम्हें पूरी सफलता मिले यह कामना करती हूँ।

तुम्हारी,

—

गुलशन महल,
औरंगाबाद।
२६ सितंबर १९६२

प्रिय श्रीमती अदलीना,

करीब १४-१५ वर्ष बाद, ता. ७ सितंबर ६२ का लिखा तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बड़ी खुशी हुई। मेरी पत्नी और मेरे बच्चे तो उस पत्र को पढ़कर खुशी से उछलने लगे और मुझे दोष देने लगे कि मैंने अभी तक तुम्हें पत्र क्यों नहीं लिखा। सच पूछा जाए तो पिछले महायुद्ध के बाद भारत लौटने पर इतने वर्षों तक तुम्हें पत्र न लिखने के लिए मैं भी स्वयं अपने को दोषी मानता हूँ। अदलीना, मुझपर विश्वास रखो, मैंने तुम्हें पत्र नहीं लिखा तो इसका मतलब यह नहीं था कि मैं तुम सब लोगों को भूल गया था। जैसे जैसे दिन गुज़रते गए वैसे-वैसे मुझ जैसे एक नौजवान सैनिक के जीवन में परिवर्तन होता गया और बढ़ती हुई पारिवारिक और शासकीय ज़िम्मेदारियों के कारण पत्र लिखने को अवकाश ही नहीं मिल पाया। तुम्हारे स्नेहशील स्वभाव से भली भाँति परिचित होने के कारण मुझे विश्वास है कि मेरी ओर से पत्र लिखने में जो इतना अक्षम्य विलंब हुआ, उसके लिए तुम मुझे माफ कर दोगी। अपनी मातृभूमि में लौटने के बाद शुरू-शुरू में ही तुम्हें लिखे कुछ पत्र यदि छोड़ दिए जाएँ तो सचमुच ही इतने वर्षों में मैंने एक भी पत्र तुम्हें नहीं लिखा, इसलिए मैं स्वयं एक अपराध-भाव से भर उठा हूँ। पर जैसे-जैसे दिन बीतते गए मैं अपने घर की ज़िम्मेदारियों में अधिकाधिक मग्न होने लगा। मुझे विश्वास है कि तुम इस विलंब के लिए मुझे उदार हृदय से क्षमा कर दोगी और जिस एक मित्र ने तुम्हारे घर का सहारा लिया था और जर्मनों के शिकंजे से जिसके प्राण बचाने के लिए तुमने निरंतर सहायता की थी, अपने उसी मित्र के प्रति अपने मन में वही प्रेम और स्नेह की भावना बनाए रहोगी। मैं यदि तुम्हें नियम से पत्र लिखता रहता तो शायद इटालियन भाषा भी नहीं भूलता और तुम्हारे पत्र को इटालियन से अंग्रेज़ी में अनुवाद कराने का द्राविड़ी प्राणायाम भी मुझे न करना पड़ता। मैं अपना यह पत्र भी बंबई के अपने एक इटालियन मित्र से इटालियन में अनुवाद कराने के बाद ही तुम्हें भेज रहा हूँ। तुम्हारे पत्र का मज़मून पढ़ने के लिए उसका भी मुझे अंग्रेज़ी अनुवाद करा लेना पड़ा। खैर। अब एक-दूसरे को दोष देना अथवा समय पर अँगुली उठाना बेकार है। अच्छा तो

यही है कि जब हमने एक बार पत्राचार शुरू कर दिया है तो अपने जीवन के अंत तक इसी तरह हम एक-दूसरे को लिखते रहें।

तुमने पत्र में लिखा है कि भय और खतरे से भरे हुए, मगर फिर भी अभिमान और आनंद से परिपूर्ण वे दिन तुम्हें आज भी याद आते हैं। मैं भी जब शाम को आरामकुर्सी पर विचारों में खोया बैठा रहता हूँ तब मुझे भी वे दिन याद आते हैं और मैं अपनी पत्नी और बच्चों को उन दिनों की स्मृतियाँ सुनाता हूँ। तुम्हारी वीरता, तुम्हारी दयालुता, तुम्हारी हिम्मत और इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, जाति, धर्म और देश का तनिक भी ख्याल न कर, मानव के साथ मानवता की भावना से वर्ताव करने की तुम्हारी वृत्ति—तुम्हारे इन सारे सद्‌गुणों के बारे में भी मैं अपने बच्चों और देशभाइयों को बड़े अभिमान से बताया करता हूँ। इसी तरह रोमानो, सीरिओ, अंतोनेली, पापा पेत्रीनो और सीरिओ की माँ, इन सबकी याद भी मैं बड़े अभिमान से किया करता हूँ। तुम्हारी बूढ़ी माताजी की याद भी मेरे मन में आज तक ताज़ा है और ताज़ा है वह आदर भाव जो उसके प्रति मेरे मन में था। तुम जिस समय मेरी सहायता करती थीं, उस समय तुम्हारी माँ तुम्हारी स्फूर्ति और हिम्मत की गंगोत्री ही थीं। मैं परमेश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि उनकी आत्मा को शांति दे, सद्‌गति दे। तुम्हारे पति से मेरी प्रत्यक्ष मुलाकात भले ही न हुई हो, फिर भी जिसकी सहायता के अभाव में मेरी जीवन की कहानी इटली में ही समाप्त हो जाती, उस शक्तिशालिनी, वीर, दयालु और स्नेहपूर्ण नारी के पति के प्रति मेरे मन में हमेशा ही कृतज्ञता की भावना बसती आई है। मेरी उस दयामय प्रभु से प्रार्थना है कि वह तुम्हारे पति को सुख और शांति भरा दीर्घ जीवन प्रदान करे।

उन दिनों की चिन्ताएँ, घोर कष्ट, कड़ाके की सर्दी और निद्राविहीन रातें, इन सबके कारण तुम कमज़ोर हो गई हो यह पढ़कर मुझे, मेरी पत्नी और मेरे बच्चों को भी दुख हुआ। एक मानवीय जीवन को मृत्यु के कराल मुख से बचाने के लिए, वक्त पड़ने पर, स्वयं अपने प्राणों की बाज़ी लगा देने के लिए जिस ईश्वरीय प्रेरणा से तुम तैयार हो गई थीं, वही ईश्वरीय प्रेरणा, हमें विश्वास है कि तुम्हें इस समय भी शक्ति, धैर्य और सुख-शांति का जीवन देगी। तुम कमज़ोर हो गई होगी इसकी तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता; क्योंकि मेरी नज़रों में अभी तक अपने बच्चों को मौत से बचाने के लिए मौत से लड़नेवाली एक माँ की तरह जी-जान से संकटों का सामना करनेवाली उस तेजस्विनी इटालियन स्त्री अदलीना की ही मूर्ति घूम रही है। चौदह

साल की बेटी इसाबेला के इर्दगिर्द ही अब तुम्हारा जीवन मँड़रा रहा है. यह पढ़कर बहुत ही खुशी हुई। उसका फ़ोटो पत्र के साथ तुमने भेजा इसके, लिए तो मैं सचमुच ही तुम्हारा बहुत, बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

जिस प्रकार तुम्हें मेरी याद आती थी उसी प्रकार सचमुच मुझे भी तुम्हारी हमेशा याद आती थी और मैं हमेशा प्रार्थना भी करता रहता था कि तुम्हारा जीवन सुख और आनन्द से परिपूर्ण बनाने में भगवान तुम्हारी सहायता करे। बीच की लंबी अवधि में मेरे पत्र न लिखने के कारण जो मृत्युवत् सन्नाटा रहा, उसके कारण सहज ही मेरे मृत हो जाने की तुमने कल्पना कर ली होगी इस अवास्तविक विचार के कारण भी तुम्हारे मन को कितना दुख हुआ होगा, यह भी मैं समझ सकता हूँ। इससे स्पष्ट दीख पड़ता है कि मेरे प्रति तुम्हारी भावनाएँ कितनी उत्कट और यथार्थ थीं; और आज भी हैं। अदलीना, तुम्हारे उपकारों को मैं सचमुच आजन्म नहीं भूल सकूँगा। हज़ारों मील दूर रहकर भी मेरी रात-दिन चिन्ता करनेवाली, मुझे हमेशा याद करनेवाली और मेरे उत्कर्ष और सुख की कामना रखनेवाली एक दूसरी स्नेहमयी माँ ही तुम्हारे रूप में मुझे मिली है ऐसा मुझे लगता है। इस स्थिति में एक-दूसरे से हज़ारों मील दूर रहनेवाले हम दोनों को एकत्र लानेवाले परमेश्वर की लीला सचमुच ही अगाध है।

पिछले महायुद्ध के अपने अनुभवों पर एक पुस्तक लिखने का विचार कई दिनों से मेरे मन में आ रहा था। विला सान सबास्तिआनो में बिताए दिनों की स्मृतियों को अंत में आज बीस वर्षों के बाद पुस्तक के रूप में मैंने एकत्र किया है। इस पुस्तक को पूरा करने के लिए रोमानो, सीरिओ, सीरिओ की माँ, पापा पेत्रीनो के और अपने गाँव के ऐसे ही कुछ अन्य फ़ोटोग्राफों की मुझे ज़रूरत है। इसीलिए मैंने भारत में स्थित इटालियन राजदूत को पत्र लिखा था और इस काम के लिए ही उन्होंने मेरा वह पत्र इटली भेजा होगा। अभी तक मुझे इटालियन राजदूत से कोई उत्तर नहीं मिला है। परंतु उसने तुम्हारे म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन से इस सिलसिले में जो पत्राचार किया उसके कारण तुम्हारा पत्र मुझे आया; यह देख मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और उससे भी अधिक आनंद हुआ। रोमानो, सीरिओ और अपने गाँव के अन्य फ़ोटोग्राफों को मैं अपनी पुस्तक में देना चाहता हूँ। इसलिए यदि तुम्हें तकलीफ न हो तो क्या तुम्हीं इन फोटोग्राफों को प्राप्त कर भेज सकोगी? जब हम सब साथ रहते थे उन दिनों के तुम्हारे फोटोग्राफों की मुझे ज़रूरत है। उनके साथ ही यदि तुम्हारे आज के फोटोग्राफ भी मिल सकते हों तब तो और भी अच्छा होगा। तुम्हारी गाय और खच्चर जिस गोठ

में बँधते हैं उसका फोटोग्राफ भी भेजना। मैं उसे भी अपनी पुस्तक में देना चाहता हूँ। विश्वास है कि इतनी मदद तुम ज़रूर करोगी। तुम्हारे पत्र में तुम्हारी माँ और मायस्त्रो के स्वर्गवासी होने का दुखद समाचार पढ़कर बहुत अफ़सोस हुआ।

सीरिओ ने मुझे अपने विवाह का निमंत्रण-पत्र भेजा है। खेद है कि उसे पत्र लिखना मेरे लिए अभी तक संभव नहीं हो सका। कृपा कर उससे कह देना कि मैंने उसे और उसकी नई दुल्हन को केवल से शुभ कामनाएँ भेजी हैं कि उनका वैवाहिक जीवन सुख, शांति और संतोष से बीते। उसके प्रति मेरे स्नेहभाव के एक छोटे-से प्रतीक के रूप में मैं उसे और उसकी पत्नी को एक विवाहोपहार भी भेज रहा हूँ।

अब कुछ मेरे बारे में। सन ४७ में मैंने सेना की नौकरी से इस्तीफा दे दिया और नागरिक प्रशासन में ज़िला अधिकारी के पद पर नियुक्त हुआ। अब मैं औरंगाबाद में एक विभाग का कमिश्नर हूँ। युद्ध से लौटने के बाद सन ४६ की ७ दिसंबर को मेरा विवाह हुआ और अब मेरे चार बच्चे हैं। तीन लड़कियाँ और एक लड़का। इस पत्र के साथ मैं सबके फोटोग्राफ तुम्हें भेज रहा हूँ। मन करता है कि तुम्हारे घर जाकर रहें। पिछले महायुद्ध में मैं जिस तरह मौत के साये से लुकता-छिपता और जान बचाने के लिए जगहें बदलता रहा उस तरह नहीं, बल्कि तुम्हारे राष्ट्र के एक स्वतंत्र नागरिक की हैसियत से। अली वहाँ किस लिए आया था, मैं नहीं जान पाया। उस समय के मेरे साथियों में से किसीका भी कोई समाचार मुझे नहीं मिला। लेफ्टिनेंट डिसूज़ा अलबत्ता कर्नल के ओहदे तक पहुँचा और अब सेना से अवकाश ग्रहण कर बंबई में बांद्रा में रहता है। मैंने काफी लंबा पत्र लिख डाला है। मुझे आशा है इसके मज़मून से तुम ऊबोगी नहीं। रोमानो और सीरिओ से कृपा कर कह देना कि वे भी मुझे पत्र लिखकर अपना समाचार दें। अपने गाँव विला सान सवास्तिआनो के लोगों को सुख और संतोष का दीर्घ जीवन देने के लिए मैं सदैव ईश्वर से प्रार्थना करता रहता हूँ। कृपाकर रोमानो का पता लिख भेजना।

अपने पति से मेरा प्रणाम कहना। इसावेला को मेरा प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देना। जब भी समय मिले, पत्र लिखकर अपने कुशल-मंगल का समाचार मुझे देती रहना।

तुम्हारा,
रामचंद्र सालवी

## पुनरागमनायच....

मार्च १९४२...

परीक्षा बहुत पास आ पहुँची है। किताबों-पर-किताबें और ढेर सारे नोट्स सामने बिखरे हैं। मनोयोग से पढ़ने का निश्चय कर मैं बैठ जाती हूँ।

एक वाक्य...दो वाक्य...तीन...एक अनुच्छेद...एक पृष्ठ...

क्या पढ़ा ? क्या ध्यान में रहा ?

सामने खिड़की है, खुली है। दूर तक मैदान पड़ा है। एकाध पेड़। हवा का झोंका लगते ही सिहर उठता है।

मैं किताब की ओर देखती हूँ...घड़ी टिकटिका रही है...सुबह का सूरज दोपहर के शिखर तक पहुँच चुका है...

क्या पढ़ा ? क्या ध्यान में रहा ?

जी नहीं लगता। मन भीतर-ही-भीतर काँप-काँप उठता है। दृष्टि में रीतापन आ समाया है, एक अजीब-सी मुर्दनी कि आँख हर चीज़ के पास पहुँचकर भी उसे छू नहीं पाती, पारा हाथ में आकर भी जैसे खिसल पड़ता है।

जिसकी महत्त्वाकांक्षा के सपने सजाने को हाथ बढ़ाया था, उसके सपनों की सुबह है और मेरे मन में खलबली मची हुई है।

मैंने व्रत-उपवास का मज़ाक उड़ाया था...मैं 'श्रीराम जयराम जयजयराम'

लिखकर कॉपियाँ क्यों भर रही हूँ? सात रंगों के इन्द्रधनुषी झूले पर झूलने की उम्र...'मुझे सिर्फ सफेद रंग ही भाता है!'

मैंने प्रार्थनाएँ की हैं। मिन्नतें माँगी हैं। पूनम की चन्दनिया चाँदनी को दरवाज़े से भगा दिया है।

मुझे नहीं मालूम, मैं क्या कर रही हूँ, मैं क्यों कर रही हूँ, मैं कौन हूँ...

धरती से, जिसपर हम हैं, वह आसमान जहाँ ईश्वर रहता है, कितने दूर के फ़ासले पर है...प्रार्थना अपने लिए की जाती है या किसी और के लिए करुणा जगाने को की जाती है?...किससे की जाती है?...उसे इतनी फ़ुरसत है कि...

जुलाई १९६५...

दोपहर। घर के काम से निबटकर मैं लेटना ही चाहती हूँ कि फोन की घण्टी घनघना उठती है। फोन पर वे हैं। कह रहे हैं कि हम लोग विदेश जा सकते हैं। अभी-अभी इज़ाज़त आई है। अर्से से शिकायत थी अस्वास्थ्य की। शंकाएँ थीं मन की। चिन्ताएँ थीं भविष्य की। डाक्टरी जाँच के लिए विदेश जाना पड़ रहा था। मन को सन्तोष होता है...और फिर भय... अनिश्चितता और अनिर्णय भी वरदान हैं!

इटली! ..अवज़्ज़ानो!...अच्छा है कि मैं बीमार हूँ! अच्छा है कि मुझे विदेश जाना पड़ रहा है। मैं जाऊँगी, इंग्लॅण्ड, इटली, रोम, अवज़्ज़ानो... रोमानो और...और अदलीना...

शुभलक्ष्मी और मोहिनी को उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था, "तुम जब बड़ी हो जाओगी और तुमपर जब किसीकी मदद करने का ऐसा ही प्रसंग आएगा तो तुम भी अदलीना जैसा ही वर्ताव करोगी। तब तुम्हें अपने सवाल का जवाब मिल जाएगा।"

अगस्त १९६६

हम आकाश में हैं। सूरज की तिरछी किरणें बम्बई नगरी को सोने से नहला रही हैं। बुँदकियों जैसा प्रिय जनों का मानव-समूह नीचे दिखाई दे रहा है। इनमें गौरी भी है—छुटकी बिटिया। उसने मुझसे पूछा था, "माँ, तुम जाओगी न मिलने?" मैं होती कौन हूँ जो मना कर दूँ!

कैरो...

पिरामिडों के परिसर में। इनका उत्साह उफान पर है। बार-बार कह रहे हैं, "यहीं—यहीं खेमा गाड़ा था, ऐसी कतारें थीं..."

मुझे 'मीना कॅम्प' की याद आती है और याद आते हैं कर्नल लैंकेस्टर... "तुम लड़ाई के मैदान में लड़ने आए हो न? 'मराठा पेग' पिए बगैर कैसे लड़ोगे?" "मैं अपने अनुभव से जानता हूँ कि..."

सब पुँछ-सा गया है। मैदान हैं जहाँ सब्ज़ियों-फलों के विस्तीर्ण बागीचे हैं। यही अच्छा है।

'मीना होटल' उसी शान से खड़ा है।

पुष्पित-पल्लवित होना धर्म है धरती का।

रोम...

रोम की धरती पर कदम रक्खा है। यह अपनी धरती लगती है। काले-चिकने बाल, काली आँखें, औसत लम्बाई, सतेज गोरा वर्ण, 'बोन जोर्नो' (गुड् मॉर्निंग) 'बोना सेरा' (गुड् इवनिंग) कहकर अपनानेवाला हर इतालवी भारतीय से भिन्न नहीं होता।

मैं सबकी आँख से बचकर, झुककर चुटकी भर मिट्टी उठा लेना चाहती हूँ, माथे पर लगाना चाहती हूँ!

शुक्रवार, ८ अक्तूबर १९६६

हम लोग अवज़्ज़ानो जा रहे हैं। रेलगाड़ी से। इनके युद्धकालीन (और अब चिरकालीन) मित्रों को भेंट देने के लिए एक सन्दूक भर उपहार लिए जा रहे हैं।

रोमानो को हमारे पहुँचने के बारे में तार दे चुके हैं; अदलीना और सीरिओ को विला सान सवास्तिआनो के पते पर पत्र लिख चुके हैं।

गाड़ी चली जा रही है और वे मौन हैं। मैं कभी खिड़की के बाहर के दृश्यों को और कभी उनको देख लेती हूँ। देखती हूँ कि वे मन-ही-मन मुस्करा रहे हैं और होंठ बहुत धीरे हिल रहे हैं, इतने धीरे कि लगातार देखने, ध्यान देने पर ही हिलते दिखें और आँखों में एक अजीब चमक आ गई है। सन्तोष होता मन का है, दिखता मुख पर है, उत्सुकता की तरह।

गाड़ी बहुत धीरे जा रही है, वे अवज़्ज़ानो पहुँच चुके हैं। मैं कितनी अकेली हूँ यहाँ, उनके साथ।

स्मृतियों का चित्रपट नहीं होता कि हम देखें दूर बैठकर; वे हममें और हम उनमें जीते हैं। वह एक अनोखा विश्व है इसीलिए हर मनुष्य विश्वामित्र है।

मैंने उनको रेल के किनारे एक गाँव दिखाया है। गिरजाघर था, ध्वस्त। ऊँची-ऊँची मीनारें छिन्न-विच्छिन्न-सी खड़ी हैं। मकानों की दीवारें, टूटी—अधटूटी। एक कालौंच-सी फैली हुई है सब ओर। यह सब देखकर पेट में जाने कैसा तो होने लगता है। व्यथा की कहानी देश-विदेश में एक जैसी, इक-रंगी, होती है। वह सिसकियों से बुनी होती है।

वे मुड़ते हैं। कहते हैं, "हम लोगों ने इसी रेल के किनारे-किनारे छिप-छिपकर रोम पहुँचने की कोशिश की थी। ध्वस्त गाँव-बस्तियों के नज़दीक, उनसे सटकर ही, अब नये मकान, नयी बस्तियाँ उग आई हैं।

"देख रही हो वह पहाड़ियों की कतार-की-कतार? आगे चलकर यही विला सान सवास्तिआनो की पहाड़ी में जाकर मिल जाती है। वहीं छिपकर रहे थे हम लोग। इसी पहाड़ी की ओट में लुक-छिपकर रोम तक पहुँचने की कोशिश की थी हम लोगों ने एक बार। वे भी क्या दिन थे..." और वे सहसा मौन हो जाते हैं, आगे बढ़ जाते हैं। मैं कानों से सुनती हूँ और चौबीस वर्ष पूर्व बने पदचिह्नों को खोजकर आगे बढ़ने की कोशिश करती हूँ। और फिर अपनत्व की लहर परायापन धो देती है। हम इतालवी बन जाते हैं।

सामनेवाली बर्थ पर एक इतालवी महिला बैठी है। काफी देर से मेरी ओर देखती रही है। जब उससे रहा नहीं जाता है तो अंग्रेज़ी में पूछती है। हम बतलाते हैं तो बहुत खुश हो जाती है, बहुत तृप्त। ज़रा देर विचलित-सी होती है और बैग खोलकर मुट्ठी-मुट्ठी भर चॉकलेट्स और पेपरमिण्ट की गोलियाँ हमें खिलाती है। वह भी युद्ध की आँच में झुलस चुकी है। पति को खो चुकी है।

मुझे जाने क्यों गौरी की याद हो आती है।

सौ किलोमीटर की यात्रा समाप्त होने को है। अवज्ज़ानो दिखाई पड़ने लगा है। महिला से 'बोन जोर्नो', 'अरि विदेर्चि' (गुड् मॉर्निंग, गुड् बाई) कहकर हम दरवाज़े पर खड़े हो जाते हैं।

मैंने चट् से कॅमेरा तैयार कर लिया है। रोमानो स्टेशन पर आएगा, हमें विश्वास है। मुझे इन दोनों के पुनर्मिलाप का क्षण कैद कर लेना है।

मगर ये लोग एक-दूसरे को पहचान भी पाएँगे? कि वे खिड़की में से झाँककर एकाएक 'रोमानो, रोमानो' कहकर ज़ोर से पुकारने लगे हैं, छोटे बच्चों की तरह।

गाड़ी रुकी नहीं है, रेंग रही है। वे फुरती से कूद पड़ते हैं। पुस्तक में छपी तस्वीरवाले रोमानो को मेरी आँखें खोजने लगती हैं। देखती हूँ कि उन्हींकी उम्र का, लम्बाई का, नीली आँखोंवाला, गोरा-चिट्टा, उम्दा व्यक्ति जिसके सिर के बाल धीरे-धीरे झड़ चले हैं, दौड़कर सामने आ पहुँचा है।

अरे, तो रोमानो पच्चीस वर्ष का युवक नहीं है!

दोनों अतीत और वर्तमान के बीच झूल रहे हैं। नज़दीक पहुँचते ही एक-दूसरे से लिपट जाते हैं। चूमते हैं। भेंट का यह आवेग-आवेश मेरा देखा हुआ नहीं है। मैं स्तम्भित, निश्चल खड़ी-की-खड़ी रह जाती हूँ। मुझे स्टेशन नहीं दिखाई पड़ता, गाड़ी नहीं दिखाई पड़ती, मुसाफिर नहीं दिखाई पड़ते, मुझे दिखाई पड़ते हैं वे दोनों, एक-दूसरे को अपने सीने से लगाए हुए, परवश, अधीर, अतृप्त, तृप्त, मौन, मुखर...

मैं चित्रकूट में हूँ, मैंने श्रीराम और भरत की भेंट देखी है...

'कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई। कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥'

मेरा कॅमेरा क्लिक नहीं कर पाता। मैं खाली डिब्बा लेकर खड़ी रह जाती हूँ। अक्स मेरे मन के परदे पर उभर आया है।

रोमानो के साथ उसकी पत्नी है: 'नीलदे'—गोरी-सुनहली, काले केश-सम्भारवाली। अपने रिवाज़ के अनुसार वह मुझे चूमती है।

वे रोमानो की कमर में हाथ डाले चले जा रहे हैं आगे-आगे। पीछे हम दोनों हैं। मैं उत्फुल्ल हूँ, नीलदे प्रसन्न। हमारे स्पर्श से भाव खिल आए हैं, भाषा के अपरिचय की धरती फोड़कर!

हम लोग पैदल चले जा रहे हैं रोमानो की कन्फेक्शनरी की तरफ़। वह स्टेशन के पास ही है। शुक्ल और कृष्णवर्णी व्यक्तियों का यह सम्मिलन तमाशाइयों के कुतूहल का विषय है। मेरी साड़ी और भी।

रोमानो (सम्भवतः!) अपने परिवार के विषय में बतला रहा है। हम लोग सामने रखी गरमागरम कॉफी और केक खाने का नाटक कर रहे हैं। मैं उनसे बार-बार पूछ रही हूँ, "क्या कह रहा है रोमानो?" वे उससे इतालवी भाषा में धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। कभी बता देते हैं, कभी अनसुना कर देते हैं; नहीं, अनसुना हो जाता है।

मैं कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकती हूँ—नीलदे भी!

और वह उठता है। भीतर जाता है। सेफ़ में से एक चीज़ लाता है। मुट्ठी हमारे सामने खोलता है। एक रिस्टवाच है, काला डायल, काँटे टूटे हुए, रोल्ड-गोल्ड की, पुरानी। भेंट में दी हुई; उनकी। लौटते समय स्मृति के रूप में रोमानो की कलाई में बाँध दी थी। वह टूटी-पुरानी घड़ी रोमानो ऐसे देख रहा है जैसे बिल्कुल पहली बार देख रहा हो, उसपर फूल जैसे हल्केपन से हाथ फेर रहा है...

हमने 'स्वाधीन या भाग्याधीन' पुस्तक रोमानो को नज़र की। वह पन्ने उलट-पुलटकर देख रहा है। पढ़ नहीं पाता है, इसलिए उद्विग्न है—और अपना चित्र देखकर मुस्करा पड़ता है। होटल में अच्छी-खासी भीड़ इकट्ठा हो गई है और पुस्तक हाथोंहाथ घूमती है। रोमानो अपना चित्र उत्साह से सबको दिखा रहा है।

और जैसे कुछ याद हो आया हो, वह एप्रन पहनकर देखते-देखते पाँच-मंज़िला 'वेडिंग-केक' तैयार कर देता है। उसकी पत्नी, बहन बिक्री से लेकर होटल धोने तक के तमाम काम करती हैं और जल्दी-जल्दी हाथ चलाती हैं। मैं उनसे कहती हूँ, "मुझे भी कोई काम बतलाइए।" वे मीठे-मीठे मुस्कराकर

उत्तर देती हैं, "काम न? ज़रूर। ऐसा करो कि इस कुर्सी पर बैठ जाओ और हमसे गप्पें लड़ाओ!" दोपहर के बारह बजे हैं। रोमानो का बारह वर्ष का इकलौता बेटा 'फेब्रिचियो' स्कूल से आया है। बड़ा हुशियार दिखता है। अंग्रेज़ी भी पढ़ने लगा है, किताबें दिखला रहा है।

अवज़्ज़ानो के एक आलीशान होटल में रोमानो सपरिवार रहता है। हमारी तजवीज भी वहीं की गई है। इतालवी ढंग का भोजन है। मिनिस्त्रोने सूप, स्पॅगेती, मटन और पुडिंग। स्पॅगेती मेरे लिए महान समस्या है। मैंने गाढ़ा सूप पसन्द किया है जिसमें सब्ज़ियां और मटन के टुकड़े छोड़े गए हैं। मेज़ पर चीज़ का पाउडर भी है; वह हर पदार्थ पर छिड़कना ही होता है।

मैं देख रही हूँ, रोमानो और वे भी स्पॅगेती खाने में माहिर हैं। चम्मच की मदद से स्पॅगेती काँटे पर डालकर सफ़ाई से लपेटते हैं और बिना टपकाए मुँह में रख लेते हैं। स्पॅगेती खाना एक कला है; ऐरे-गैरे हार मान चुके हैं।

दोपहर की बीच की छुट्टी में कन्फेक्शनरी में पास के स्कूल के बच्चे खानेपीने आए हुए हैं। केक-बिस्कुट से कहीं ज्यादा मेरी ओर देखते हैं, आपस में धीरे-धीरे बात करते हैं, दुबारा मेरी ओर देखते हैं। मैं कौतूहल का अर्थ जानती हूँ। उनके बीच बैठ जाती हूँ। समझाने की कोशिश करती हूँ कि हम लोग यहाँ क्यों आए हैं। पर न मुझे और न उन्हें ही सन्तोष होता है। आखिरकार रोमानो मेरी मदद करता है।

'स्वाधीन या दैवाधीन' गोरे-गदबदे हाथों में घूमने लगती है। यशवन्तरावजी चव्हाण का चित्र सामने आता है तो एक ढीठ लड़का उसकी तरफ इशारा कर पूछता है, "सिनिओर शास्त्री?' मेरा आश्चर्य असीम हो उठता है। इटली का एक मामूली-सा गाँव और वहाँ के छोटे-छोटे बच्चे तक हमारे प्रधानमन्त्री को जानते हैं, यह विचार अत्यन्त सुखकर है। मैंने बतलाया, कि नहीं, ये हमारे रक्षा-मन्त्री हैं। फौरन दूसरा सवाल आता है, "भारत और पाकिस्तान में लड़ाई चल रही है न?"

दुनिया, सच, बहुत छोटी हो गई है। बच्चे बहुत बड़े हो गए हैं। फिर सुनाई देती है घण्टी, स्कूल की और होटल खाली हो गया। डाल छोड़ गौरैया के

बच्चे फुर्र से उड़ गए और हिलती डाल की तरह मैं अपने में ही डोल रही हूँ, मगन हूँ।

शाम के चार बजे हैं। हम विला सान सबास्तिआनो की तरफ चल पड़े हैं। रास्ते में वे बैरकें दिखाई देती हैं जहाँ उन्हें युद्धकैदी बनाकर रक्खा गया था। सिर्फ एक बहुत बड़ा दरवाज़ा बाकी है और बाकी हैं चबूतरे-से जिनपर कभी दीवारें खड़ी थीं।

हर ऐंठनेवाली रस्सी का भविष्य यही है।

आध घण्टे में हम विला पहुँच जाते हैं। गाँव बिल्कुल वैसा दिखाई पड़ता है जैसा पुस्तक में दिए गए चित्र में है। पहले एक बस्ती है छोटी-छोटी बँगलियों की, सम्पन्न लोगों की। इसे 'नोवा (नया) विला' कहते हैं। इन्हींमेंसे एक बँगली के सामने मोटर रुक जाती है। यह सीरिओ का मकान है। सीरिओ बाहर गया हुआ है। उसके वृद्ध माता-पिता, बहनें और पत्नी, सब लोग घर में हैं। सीरिओ की माँ को सब घटनाएँ याद हैं, बिल्कुल ताज़ा हैं। उसके झुर्रियों भरे हाथ मेरे गाल, कन्धे, पीठ छू रहे हैं, लगातार मुझे सहला रहे हैं। मेरी दो माँएँ हैं।

अदलीना के मकान के सामने मोटर ज्यों ही खड़ी होती है, त्यों ही वह और 'इज़ाबेला' दौड़कर आती हैं। हम सब एकदम मौन हो जाते हैं। समय सिमटकर क्षण बन जाता है—आँसुओं जैसा तरल और निश्चल।

मेरे आँसू सबसे अलग हैं...

अदलीना हमें एक तौलिया दिखाती है; कितने स्नेह से उसने अब तक सँभाल रक्खा है उनका तौलिया जो उन्होंने चौबीस वर्ष पूर्व लौटते समय अदलीना को दिया था। वह हमें दिखाती है और पूछती है, "रेकार्दो?"

मैं उसे अपने पासवाले उसके बुने तौलिए को दिखाकर पूछती हूँ, "रेकार्दो?"

'रेकार्दो?"—'क्या याद है?'

अदलीना, इन्हें सब याद है। हमें सब याद है।

और हम लोग—वे, मैं, अदर्लीना, इज़ाबेला, एक युद्धकैदी ...

वेनिनिओ—उन सब स्थानों की तीर्थ-यात्रा कर रहे हैं, जहाँ वे छिपकर रहे थे : घास के बड़े-बड़े ढेर, जीर्ण-शीर्ण गिरे-ढहे मकान, अदलीना का पुराना मकान और वह गोसार भी जिसमें गाय, खच्चर और सूअर बँधे थे।

मैं जानती हूँ कि ये सब अन्ततः जड़ वस्तुएँ हैं, इनका विशेष महत्त्व नहीं है, महत्त्व केवल प्रसंग का है, प्रसंगोपात्त उलझे मनुष्य का है, उसकी जीवनी शक्ति का है—पर, यदि यही सच है तो मन्दिर क्यों हैं? मूर्तियाँ क्यों हैं? चारों धामों की यात्राएँ क्यों हैं? पुनःप्रत्यय क्यों है? हम क्यों हैं?

जहाँ-जहाँ हम जाते हैं, वहाँ-वहाँ एक छोटा-सा हजूम इकट्ठा हो जाता है; फिर जुलूस बन जाता है। परिचित, अल्प परिचित, अपरिचित स्त्री-पुरुष मेरी तरफ देखते हैं और उँगली अपने गाल पर रखकर गोल-गोल घुमाते हुए कहते हैं, "मोल्ताब्वेल्ला!" (बहुत सुन्दर!) और उनकी ओर देखकर मुस्कराते हैं।

यह भी मुझे इटली में ही सुनना था!

रास्ते में तीस-पैंतीस के दो युवकों से भेंट होती है। हमारा परिचय पाकर एक पूछता है, "रेकार्दो? मैं आपको दूध लाकर देता था!" फिर एक और मिला, "रेकार्दो? मैं आपको डबलरोटी खिलाया करता था।"

हम आज अदलीना के मेहमान हैं। वह और उसकी बेटी भीतर खाना पका रही हैं।

रोमानो को नेपल्स में एक विवाह में शरीक होना है।

उसे जाना पड़ रहा है और वह खुश नहीं है। आग्रह कर रहा है कि हम दो-चार रोज़ और रहें, पर यह सम्भव नहीं है क्योंकि हमारी सीटें बुक हो चुकी हैं। वह उन्हें कसकर सीने से लगा लेता है। मेरे सामने दोनों हथेलियाँ फैलाकर कहता है, "अरि विदेर्ची!" और उसकी नीली पुतलियाँ लहर पर तैरती मछलियाँ बन जाती हैं।

अदलीना बाहर आती है। उनका हाथ पकड़कर भीतर ले जाती है और पानी का नल खोलकर कहती है, "देखो सालवी, मेरे घर में अब नल है। रेकार्दो? उस वक्त मुझे बाहर से पानी लाना पड़ता था।"

मुझे याद आया। अदलीना पानी भरने गई हुई थी। गाँव में जर्मन सैनिकों ने एकाएक आतंक फैला दिया था, और उनको खतरे में जानकर वह बर्तन फेंककर

दौड़ी-दौड़ी घर आई थी—और अदलीना की वृद्धा माता गिरजाघर में थी, एक अपूर्व विश्वास धारण किए हँसती-मुस्कराती धीरे-धीरे घर लौटी थी। आज वह वृद्धा नहीं है। किन्तु लगता है कि किसी भी क्षण पोपले मुँह से निर्व्याज हँसी बिखेरती वह इस या उस कमरे से निकलकर हमारे बीच आ सकती है।

अदलीना ने यह नया मकान अपनी मौसी से पाया है। पहलेवाले मकान से यह ज़्यादा आधुनिक, ज्यादा आरामदेह है। यों, है तो किसी भी भारतीय किसान के मकान जैसा परन्तु इसमें नल है, गॅस है, आधुनिक सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण है। किफायतशारी के खयाल से रसोई 'फायरप्लेस' पर तैयार की जाती है। हम लोग नयी-पुरानी बातों में उलझे हुए हैं और वे जैसे आदतन कोने में रखी लकड़ियाँ फायर-प्लेस में जमा देते हैं। अदलीना मुस्कराकर कहती है, "देखो-देखो, भूला नहीं है। उस वक्त भी ऐसे ही अँगीठी जलाया करता था।"

दोपहर में हम लोग उसके खेतों की तरफ निकल गए हैं। प्यारी-प्यारी सर्दी है। अपने गाँव पहुँच गए हैं जैसे। उसकी ज़मीन में से नहर गई हुई है—सरकारी नहर। उसके कई पेड़ काट दिए गए और अब तक मुआवज़े की रकम नहीं मिली है। वह कमर पर हाथ रखकर अपनी धरती देखती है, नहर देखती है, शिकायत करती है।

सरकारी रथ कहीं तो, कभी तो जल्दी चलना सीखे!

रात हो गई है। फायर-प्लेस के इर्द-गिर्द हम लोग गप्पें लड़ा रहे हैं। नयी-पुरानी बातें उठ रही हैं, यादें इठला-इठलाकर सामने आ रही हैं। अतीत वर्तमान बन चुका है, हम डूब रहे हैं, उतरा रहे हैं। 'इज़ाबेला' उस महिला का नाम है जिसने परदेश में अदलीना के पति—उन्हें भी युद्ध में कैदी बनना पड़ा है—की रक्षा की है। इसीलिए इलिज्जिओ और अदलीना की पुत्री का नाम है: 'इज़ाबेला'।

अचानक अदलीना पूछती है, "साल्वी, तुम्हें क्या वेतन मिलता है?" आम तौर पर न पूछा जानेवाला यह प्रश्न हम लोगों के बीच रहे-सहे फासले को सदा के लिए दूर कर देता है। जैसे नानी पूछ रही हो, "हंसा, तेरे आदमी को कित्ता रुपया मिलता है री?"

प्रश्न में न अवांछित कुतूहल है, न ईर्ष्या भरी तुलना, और लोभ का तो कण भी नहीं है। वहाँ ओहदे से बात नहीं खुलती इसलिए मात्र उत्सुकता है। हम उनसे क्या कहें? सात रुपये बराबर हैं एक हजार लिरा के, इसलिए इतने-इतने रुपये बराबर हैं इतने-इतने लिरा के—यह आर्थिक हिसाब हमें समझाना है उन्हें, जो महान और निर्मल हृदय की सम्पत्ति के स्वामी हैं। हम उत्तर देंगे तो उन्हें कदाचित आश्चर्य होगा, हम बड़े आदमी हैं, अच्छी-खासी हालत है हमारी यह भी वे जान पाएँगे—शायद...नहीं, सब गड्डमगड्ड हो गया है, कुछ समझ नहीं पड़ रहा है। और उत्तर तो देना ही है।

अदलीना का मुख निर्विकार है; यदि महीन-सी झाँई है तो अपनत्व की है, आदिम कुतूहल की है। हम कुछ नहीं छिपाएँगे...और हम बतला ही तो देते हैं।

"मम्मामिओऽऽ!" (बाप रे बाप!) अदलीना अनजाने कह उठती है और उसकी भावपूर्ण आँखों से हर्ष छलकने लगता है और अभिमान भी कि ये लोग हमसे बँधे हुए हैं, इतनी दूर से आए हैं, महज़ मिलने! लेकिन उसकी स्त्रियोचित शिकायत का अर्थ मैं जानती हूँ, सिर्फ मैं, "देखो हंसा, मैंने तुम्हारे आदमी से उन दिनों हज़ारों बार पूछा था कि क्या वेतन है। कौनसा ओहदा है। पर इसका एक ही जवाब इसके पास था: 'सेम्प्रे जित्तो'—चुप्पी साध लेना! पूछा करती, 'कैसा आदमी है तू! तेरे माँ-बाप बीवी-बच्चे, कोई तो होगा। तू बतलाता क्यों नहीं? मगर ऊँ-हुँः! सेम्प्रे जित्तो!—कभी कुछ नहीं बतलाया इसने। बहुँत घुन्ना निकला।"

आज युद्ध का नाम भी नहीं है, चोरी-बरजोरी नहीं है, क्षण-क्षण प्राणों का संकट नहीं है, सिपाही की वह दक्षता नहीं है—सामने मन्द-मन्द अँगीठी जल रही है, स्नेह की गर्माहट है। वह खुद-बखुद सब उगलवा लेती है। इसपर अदलीना की इतनी ही टिप्पणी है, "कैसे अच्छे-बड़े आदमी का बेटा और कैसा बनवास भुगतना पड़ा। महलों में पला लाड़ला और यहाँ गोसार के गोबर के बीच छिप-छिपकर दिन बिताया किया! भूखा, प्यासा..."

अदलीना की दृष्टि हमें सहलाती है, हम खिलते हैं, खुलते हैं।

दूसरे दिन अलः सुबह। वे जल्दी सोकर उठते हैं, मुझे जग हैं, खुली छत पर ले जाते हैं। अचानक गिरजाघर के घण्टे बज उठते हैं वही निनाद

जो चौवीस वर्ष पूर्व कैदखाने से बच निकले एक हताश सिपाही ने ऐसी ही एक सुबह सुना था—गम्भीर और पावन निनाद, बुलाता हुआ, अभय का आश्वासन देता हुआ निनाद!

छत से गाँव का पूरा दृश्य दिखाई पड़ता है। 'वो गली-सी, इसीमेंसे मैं छिप-छिपकर आया था। वहाँ, ठीक वहाँ रोमानो से पहली बार मुलाकात हुई थी। सीरिओ का वो रहा पुराना मकान और वो अदलीना का।' अतीत की रोमांचकता से छुड़ाती हैं हमें अदलीना और इज़ावेला की पुकारें, "हंसा! हंसाऽऽ!"

आज इतवार है। लोग नये कपड़ों में हैं। अदलीना पूछ रही है, "आज क्या खाना बने?"

यह नित्य, परिचित और कठिन प्रश्न है। पर वे उत्तर देते हैं: 'न्योक्की!'

इज़ावेला ने कमरा खूब सजाया है। खाने की मेज़ पर अपने हाथ का बुना मेज़पोश बिछाया है। साफ धुले-धुलाए नॅपकिन रखे हैं। एक दीवार पर रोमिओ-जुलिएट का चित्र है और दूसरी तरफ खूबसूरती के लिहाज से सेब लगा रखे हैं। मुझे अच्छा लगा—हमारे यहाँ भी लकड़ी के रंगीन पॉलिशदार फलों के खिलौने बनाए जाते हैं, यह भी वही चीज़ है। मैं कुतूहल से देखने लग जाती हूँ। इतने में इज़ावेला पूछती है, "खाएँगी? अभी काटकर देती हूँ।" वे खिलौने नहीं थे, असली सेब थे। हमारे यहाँ 'सजावट' शब्द में ही कृत्रिमता का बोध होता है।

माँ-बेटी खद्दर के कपड़े पहने हैं। ये इन्होंने पिछले बड़े दिन के वक्त उपहारस्वरूप भेजे थे।

इज़ावेला रह-रहकर हमसे रहने का आग्रह करती है। यों, वह ग्रामीण बाला है—षोड़षी। अधिक शिक्षा नहीं पाई है उसने। घर में माता की सहायता करती है पर बुनाई-कढ़ाई और सिलाई की तालीम पा चुकी है और माहिर भी है।

अब उसका प्रश्न मजबूरन बदल चुका है, "अब कब आएँगे आप लोग?"

मेरे पास उत्तर है, "तुम्हारे व्याह के वक्त!" व्याह का ज़िक्र अखिल नारी जाति के गालों को गुलाबी बना जाता है।

मुझे घड़ी क्यों दिखाई देती है ? मैं नहीं देखना चाहती, मुझे उसकी टिकटिक बिल्कुल नहीं भाती ।

अन्तोनेली से भेंट नहीं हो पाई । वह रोम में रहता है, वहीं काम करता है । अदलीना ने उसके फोन का नंबर दिया है । उससे फोन पर बात करके ही सन्तोष मानना होगा ।

हम अपनी बॅग बन्द कर चुके हैं । हम लोगों के शब्द जैसे चुक गए हैं; एक-दूसरे से जैसे मुँह चुराते हैं । दृष्टि भिड़ जाते ही मुस्कराते हैं—फीकी-सी मुस्कराहट । एक अजीब-सा रुआँसापन छा गया है ।

और दो दिन आकाशपरी के खुशियों के पंख लगाकर उड़नेवाली इज़ाबेला आखिर मेरे कन्धों पर सिर रखकर फफक-फफककर रो पड़ती है । मैं उससे क्या कहूँ ? उसे कैसे समझाऊँ ? कितनी बार अपनी आँखें पोंछूँ ?

सीरिओ की मोटर हमें स्टेशन पर ले आई है । गाड़ी आ गई है । हम सवार हो गए हैं । सीरिओ का मुँह उतर आया है; वह हमसे बार-बार कह रहा है, "मैं आऊँगा एक बार भारत ! बिल्कुल पक्की बात ! आकर ही रहूँगा !"

गाड़ी चल दी है । धीरे-धीरे हर चीज़ पीछे छूटती जा रही है : सीरिओ, इज़ाबेला, अदलीना, विला, अवज़्ज़ानो, रोमानो...

हम तृप्त भी हैं और अतृप्त भी । सारा उत्साह चुक गया है ।

हम कृतज्ञता के भाव से देवालय गए थे, पुष्प-पत्र ले गए थे, लौट रहे हैं तो कन्धों पर पुण्य की गठरी रखकर और हमसे चला नहीं जा रहा है ।

हम अपने घर लौट रहे हैं । हम अपना घर छोड़कर आ रहे हैं । हम अपने लोगों के पास पहुँच रहे हैं । हम अपने लोगों से दूर जा रहे हैं । गौरी की याद आ रही है । कह रही होगी, "माँ आ रही है ।"

इज़ाबेला और अदलीना ने कहा था, "जल्दी ही आइए, जल्दी ही..."

**सौ. हंसा साळवी**